भूमिका

मानव-चरित्र राजनीति की आधारशिला है और चरित्रहीनता राजनीति में अवतरित होकर देश और राष्ट्र के ह्रास में कारण होती है। चरित्रहीनता को राजनीति में अवतरित होने में समय लगता है। यही कारण है कि राज्य में उच्छृंखलता अथवा भूल तुरन्त प्रभाव उत्पन्न नहीं करती।

इसको पाप का घड़ा भरना कहते हैं। यह माना जाता है कि घड़ा भर कर ही उछलता है। यही बात अशोक को नीति के विषय में कही जा सकती है। अशोक ने राजनीति में एक सम्प्रदाय का विशेष समर्थन किया था और वह सम्प्रदाय संन्यास धर्म को मानने वाला था, जो राज्यधर्म कदापि नहीं हो सकता।

पंचशील का राज्य-कार्य में चलन अव्यवहारिक है। जहाँ तक किसी एक राज्य का, अपने देश के कार्य से सम्बन्ध है, पंचशील का एक सीमा तक, प्रयोग किया जा सकता है; परन्तु अन्य राज्यों, विशेष रूप से अन्य राष्ट्रों से व्यवहार के समय तो पंचशील सदा असफल रहा है।

मौर्यवंशीय अशोक ने बौद्ध पंचशील का प्रयोग अन्य राष्ट्रों के साथ भी किया। जब तक तो चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार के काल का तथा अशोक के अपने जीवन के पूर्व काल का दबदबा बना रहा, राज्य में शान्ति बनी रही। ज्यों-ज्यों वह दबदबा पुराना और प्रभावहीन होता गया, पहिले देश के भीतर विद्रोह हुआ और पश्चात् विदेशीय आक्रमण होने आरम्भ हो गये।

जब-जब अशोक के उत्तराधिकारी यह अनुभव करते रहे कि उनकी पंचशील की नीति राज्य और राष्ट्र के ह्रास में कारण हो रही है, तब-तब बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवक्ता उनको प्रेरणा देकर शान्ति और आत्मोन्नति के वाग्जाल में फँसा कर अकर्मण्यता में रत करते रहे।

परिणाम यह हुआ कि अशोक के साम्राज्य का विघटन, जो उसके जीवन-काल में ही आरम्भ हो गया था, उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

मौर्यवंश के अन्तिम अधिकारी के राज्यकाल में तो मौर्य साम्राज्य सुकड़कर एक छोटा-सा राज्य ही रह गया था। इस समय विदेशीय आक्रमणकारी भी बढ़ते-बढ़ते साकेत तक पहुँच गये थे, परन्तु राज्य की ओर से उनको रोकने का उपाय तक नहीं किया गया।

तब मौर्यवंश को समाप्त किया गया और उसके स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार जिसका नाम शुंग था, राज्यगद्दी पर आया। शुंग परिवार की स्थापना करने वाला पुष्यमित्र था।

इतिहास में पुष्यमित्र के विषय में बहुत कम लिखा मिलता है। इस पर भी जो कुछ मिलता है, वह इस प्रकार है।

हर्षचरित में मौर्य वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ की हत्या के विषय में लिखा है—

"पुष्यमित्रस्तु सेनानीः समुद्धृत्य बृहद्रथम्।' सेना का निरीक्षण करते समय राजा का वध कर डाला।

"सम्भवतः बृहद्रथ अत्यन्त दुर्बल राजा था (प्रज्ञा दुर्बल) और पुष्यमित्र को सारी सेना की पूरी सहायता उपलब्ध थी।

"शुंग, वर्ण के ब्राह्मण थे। विख्यात वैय्याकरण पाणिनी इनका सम्बन्ध भारद्वाज गोत्र से स्थापित करता है और आश्वलायन श्रौत सूत्र में उनको आचार्य कहा गया है।"

आगे चलकर इतिहासकार लिखता है,

'हमें ठीक ज्ञात नहीं कि (आक्रमणकारी) यवन सेनापति कौन था। कुछ विद्वान् उसको डोमैट्रियस और अन्य उसको मिनेण्डर मानते हैं।

"अश्वमेध का अनुष्ठान पुष्यमित्र के राज्यकाल की एक महत्वपूर्ण घटना थी ''' '' पंतजलि स्वयं इस यज्ञ में ऋत्विज बने।''''' '''

"यदि हम दिव्यावदान और तिब्बती इतिहासकार तारानाथ का प्रमाण मानें तो यह स्पष्ट है कि पुष्यमित्र का अधिकार पंजाब में जालन्धर और स्यालकोट तक था''''''और मालविकाग्निमित्र के अनुसार पुष्यमित्र के साम्राज्य में विदिशा और नर्मदा तक के दक्षिण प्रान्त भी सम्मिलित थे।"

यह उद्धरण डाक्टर रमाशंकर त्रिपाठी के 'प्राचीन भारत का इतिहास' में से लिया गया है।

वास्तव में इतिहास अपने को दुहराता है। जब-जब भी पचशील जैसे सिद्धान्त का असीम प्रयोग राजनीति में हुआ है, तब-तब ही देश विदेशीय तथा अराष्ट्रवादियों से बलात्त हुआ है।

आज भी भारत में एक ऐसा ही परीक्षण हो रहा है। महात्मा गांधी ने इस बौद्ध पंचशील का रूपान्तर अहिंसात्मक व्यवहार तथा आन्दोलन का प्रचलन देश में किया। इस प्रचलन से पूर्व भी स्वराज्य आन्दोलन देश में चल रहा था और उसका प्रभाव भी हो रहा था। यदि रॉलेट कमेटी की रिपोर्ट पढ़ी जाय तो ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि १९०१ से आरम्भ हिंसात्मक आन्दोलन का प्रभाव अंग्रेजी मस्तिष्क पर अहिंसात्मक के प्रभाव से अधिक हुआ था। अंग्रेज भयभीत थे और राज्य में हिन्दुस्तानियों को अधिक-और-अधिक सुविधाएँ देते जाते थे। यह कहना असंगत प्रतीत नहीं होता कि यदि वह दबाव जो क्रान्तिकारी एक ओर से और नरम दल वाले, विधानात्मक आन्दोलन द्वारा, दूसरी ओर से डाल रहे थे, जारी रहता, तो स्वराज्य १९३५ तक मिल जाता। यह स्वराज्य देश-विभाजन के बिना होता और देश में देश-प्रेम और देशीय संस्कृति और परम्पराओं में निष्ठा की स्थापना रहती। परन्तु महात्मा गांधी ने अहिंसात्मक आन्दोलन से एक वर्ष में स्वराज्य ले देने का वचन देकर ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न की कि सी० आर० दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू जैसे बुद्धिमान वकीलों से लेकर गाँव के भंगी, चमार तक महात्मा गांधी के पीछे लग गये। सबने

महात्माजी के नेतृत्व में न्यूनाधिक त्याग और प्रयत्न किया।

गाँधीजी के आन्दोलन का यह चमत्कारक विस्तार वैसा ही हुआ, जैसा महात्मा बुद्ध के काल में बड़े-बड़े महाराजा, राजकुमार और राजकुमारियाँ अपना घर-बाहर छोड़कर, शिर मुँडा, पीत-वस्त्र धारण कर महात्मा के पीछे चल पड़े थे। महात्मा बुद्ध ने एक ही जन्म में और बिना ज्ञान प्राप्त किये तथा बिना भले कर्म किये मोक्ष-प्राप्ति का आश्वासन दिया था। महात्मा गाँधी ने एक वर्ष में ही एक करोड़ रुपया और एक करोड़ स्वयं-सेवक एकत्रित कर स्वराज्य प्राप्ति का विश्वास दिलाया था।

दोनों का आश्वासन मिथ्या था, परन्तु कौन है जो अनायास खीर पा जाने के लोभ को छोड़ सकता है ? सफलता और असफलता का विचार छोड़ भी दिया जाय तो भी मिथ्यावाद के प्रचार से मानव-चरित्र में पतन अवश्यम्भावी है। जो कुछ देश में सदैव तथा सर्वत्र पंचशील के सिद्धान्त ने उत्पन्न किया, वह ही महात्मा गाँधी के सर्वत्र और सर्वदा अहिंसा के आचरण ने किया। दोनों ने अन्यायाचरण, असत्य भाषण, कुटिलता और क्रूरता करने वालों का विरोध भी छोड़ दिया।

देश विभाजन हुआ। इसका विरोध नहीं हो सका। प्रत्युत देश विभा-जन की मांग करने वालों को सिर पर उठाकर मान और आदर का पात्र माना गया। इतना ही नहीं, कि जो देश-विभाजन की माँग तलवार की नोक पर करते थे, उनको सहन किया गया, प्रत्युत उनके अत्याचार के शिकार हिन्दुओं को दुष्ट, देशद्रोही और भीरु कहकर सम्बोधित भी किया गया।

सदा और सर्वत्र अहिंसा का सिद्धान्त मानने वालों का यह व्यवहार रहा है कि कलकत्ता में डायरेक्ट ऐक्शन कराने वाले मिस्टर जिन्ना को कायदेआजम मानते थे और देश के लिए सर्वस्व निछावर करने वाले सावरकर और भाई परमानन्द इत्यादि व्यक्तियों को गद्दार कहकर सम्बोधित करते थे।

अहिंसावादी सर्वदा और सर्वत्र हिंसा को मानने वाले प्रबल विपक्षियों

से मित्रता का व्यवहार करते जाते हैं। विरोधियों के जूते खाते हुए भी उनके सामने जो-जो कहते नहीं थकते, परन्तु अपने हितैषियों की निन्दा किया करते हैं। यही बौद्ध करते थे और यही गांधीवादी करते आये हैं।

यहां स्थान नहीं कि १९२१ से लेकर आज तक की गांधीवादी नीति की बौद्ध मीमांसा से समानता प्रकट करने के लिए उदाहरण दिये जाएँ। किंचित् गम्भीरता से इस काल के इतिहास और उसके परिणामों का अध्ययन किया जाय तो यह स्वर्णसम चमचमाता, पंचशील का सिद्धान्त वास्तव में पीतलसम प्रतीत होगा

इस सिद्धान्त का एक आश्चर्यकारक परिणाम यह हुआ है कि गांधीजी का मानस पुत्र पण्डित जवाहरलाल हुआ है और पण्डित जवाहरलाल का मानस पुत्र कोई भारतीय स्टालिन होने वाला प्रतीत हो रहा है।

गांधीजी का अहिंसात्मक सिद्धान्त का रूपान्तर पण्डित जवाहरलाल का पंचशील है। पंचशील के प्रभाव में ही पण्डितजी रूस और चीन को तो पंचशील के अनुयायी मानते हैं और देश तथा विदेश की डेमोक्रेटिक सत्ताओं को, जो मुख से पंचशील का स्वयं घोषण नहीं करते, शान्ति के शत्रु मानते हैं।

इति। इस विचार को प्रकट करने के लिये पुष्यमित्र तथा तत्कालीन परिस्थितियों को आधार बनाकर यह उपन्यास 'पुष्यमित्र' लिखा गया है।

इसमें इतिहास कम और कल्पना अधिक है ही। इस पर भी कल्पना में आधार है। सिद्धान्तों और विचारों में संघर्ष तो वास्तविक ही है। पंचशील का विकल्प है, 'यथायोग्य व्यवहार।"

इसके अतिरिक्त यह उपन्यास है। इससे किसी से द्वेष अथवा किसी के मान-अपमान करने का आशय नहीं।

—गुरुदत्त

प्रथम परिच्छेद

पाटलिपुत्र में राजपथ से एक ओर हटकर, एक वीथिका के एक विशाल गृह के प्रांगण में यज्ञवेदी बनी हुई थी। उस वेदी पर पुरोहित के स्थान पर एक ब्राह्मण कौशेय वस्त्र धारण किए बैठा मंत्र उच्चारण कर रहा था।

वह बोल रहा था, "ओ शं नो वातः ऊँ शं नस्तपतु सूर्यः शंन. कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽभिवर्षतु। ओ स्वाहा।"

इस प्रकार अग्नि में घी, सामग्री, समिधा होम की जा रही थी। इस यज्ञ में यजमान था अरुणदत्त ज्ञानाचार्य, राजपुरोहित। आज अरुणदत्त के एकमात्र पुत्र पुष्यमित्र का उपनयन संस्कार हो रहा था। पुष्यमित्र दस वर्ष का मेधावी सुन्दर बालक था। वह अपने पिता से संस्कृत भाषा, गणित इत्यादि पढ़कर पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुका था।

यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए सम्बन्धी तथा मित्रगण एक भारी संख्या में उपस्थित थे। पूर्ण प्रागण अभ्यागतों से खचाखच भर रहा था।

अरुणदत्त के वाम आसन पर उसकी धर्मपत्नी भगवती बैठी प्रेमभरी दृष्टि से अपने पुत्र के ओजस्वी मुख को देख आनन्द से पुलकित हो रही थी।

यज्ञ समाप्त हुआ। आचार्य ने दोनों हाथों में यज्ञोपवीत का सूत्र खोल तथा फैला मंत्र उच्चारित किया, 'ओ यज्ञोपवीत परमं पवित्र प्रजापतेर्यत्सहज पुरस्तात्, आयुष्यमग्रय प्रतिमु च शुभ्रं यज्ञोपवीत बलमस्तु तेजः। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।'

तत्पश्चात् सूत्र बायें कंधे के ऊपर और दाहिने बाजू के नीचे कर बालक पुष्यमित्र को पहना दिया।

अब ब्रह्मचारी से यज्ञ कराया गया। जब संस्कार समाप्त हुआ तो

प्रथम परिच्छेद

पाटलिपुत्र मे राजपथ से एक ओर [illegible]
गृह के प्रांगण में यज्ञवेदी बनी हुई थी। उस [illegible]
पर एक ब्राह्मण कौशेय वस्त्र धारण किए बैठा [illegible]

वह बोल रहा था, "ओं [illegible]
कदहँव. पर्जन्योऽभिवर्षतु । ओं स्वाहा ।'

इस प्रकार अग्नि में घी, सामग्री [illegible] रहा थी
इस यज्ञ मे यजमान था अरुणदत्त [illegible] राजपुरोहित। आज अरुण
दत्त के एकमात्र पुत्र पुष्यमित्र का उपनयन संस्कार हो रहा था। पुष्यमित्र
दस वर्ष का मेधावी सुन्दर बालक था। वह अपने पिता से संस्कृत भाषा,
गणित इत्यादि पढ़कर पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुका था।

यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए सम्बन्धी तथा मित्रगण [illegible]
संख्या में उपस्थित थे। पूर्ण प्रांगण [illegible] भर रहा था।

अरुणदत्त के वाम आसन पर उसकी धर्मपत्नी भगवती बैठी प्रेमभरी
दृष्टि से अपने पुत्र के ओजस्वी मुख को देख आनन्द से पुलकित हो रही थी।

यज्ञ समाप्त हुआ। आचार्य ने दोनों हाथों में यज्ञोपवीत का सूत्र
खोल तथा फैला मंत्र उच्चारित किया, 'ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्, आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु
तेज । यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।'

तत्पश्चात् सूत्र बायें कंधे से ऊपर और दाहिने बाजू से नीचे कर
बालक पुष्यमित्र को पहना दिया।

अब ब्रह्मचारी से यज्ञ कराया गया। जब संस्कार सम

सब आये हुए अभ्यागतों ने बालक को आशीर्वाद दे, बालक के माता-पिता को बधाइयाँ दीं। इस पर अरुणदत्त ने उठकर, हाथ जोड़ सबका धन्यवाद कर दिया।

मिष्ठान्न वितरित हुआ और सब लोग पलाश के पत्तों से बने डूनों में मिठाई ले-लेकर विदा हो गए। पुष्यमित्र भी अपने गुरु के साथ विदा होने लगा तो भगवती की आँखों में अश्रु भर आये।

आचार्य श्वेताश्वर ने देवी भगवती की आँखों को भरते देखा तो कहा, "देवी ! तुम्हारा बालक महायशस्वी, तेजोमय और प्रतापी होने वाला है। इस तेजस्वी बालक से संसार का कल्याण हो, ऐसा हमें यत्न करना है।

"यह यहाँ माता-पिता के लाड़-प्यार में होना सम्भव नहीं। बारह वर्ष तक यह मेरे संरक्षण में रहेगा और पश्चात् लौटकर माँ के वात्सल्यपूर्ण हृदय को शान्ति प्रदान करेगा।

"देवी ! समाज के इस विधान को धैर्य और शान्ति से स्वीकार करो।"

भगवती अपनी दुर्बलता पर लज्जा अनुभव करने लगी। उसने आँचल से अपने चक्षु पोंछे और अपने पुत्र के शिर पर हाथ फेर आशीर्वाद दिया। तदनन्तर आचार्य श्वेताश्वर बालक पुष्यमित्र को लेकर अरुणदत्त के गृह से विदा हो गया।

इस समय पाटलिपुत्र में मौर्यवंशज देववर्मन् का पुत्र शतधन्वन् राज्यगद्दी पर विराजमान था। जो कुछ राज्यकार्य में बौद्ध प्रभाव का ह्रास महाराज सम्प्रति के काल में हुआ था, वह बौद्धों को पुनः प्राप्त होता जा रहा था। सम्प्रति के काल में ब्राह्मणों और शैव मतावलम्बियों को जो मान प्राप्त हुआ था, वह धीरे-धीरे विलुप्त होता जा रहा था।

इस पर भी सम्प्रति के काल से राज्य-परिवार का एक पुरोहित होता था जो राज्य-परिषद् का सदस्य माना जाता था।

बौद्धों का प्रभाव इतना था कि राज्य-परिषद् के सात सदस्यों में तीन बौद्ध थे। अन्य चार में से एक महाराज स्वयं थे, एक अरुणदत्त था। महामात्य भी एक ब्राह्मण था और सेनापति क्षत्रिय।

महाराज अशोक के नाम की महिमा गानकर बौद्ध सदैव महाराज शतधन्वन् को महाराज अशोक के पद-चिह्नों पर चलने की प्रेरणा देते रहते थे। मगध-साम्राज्य की आय उतनी नहीं रही थी, जितनी अशोक के काल में थी। इस पर भी बौद्ध-विहारों को दान-दक्षिणा उसी स्तर पर दिखाई जाती थी।

२

पुष्यमित्र अभी सात-आठ वर्ष का बालक ही था और उसका अभी उपनयन-संस्कार भी नहीं हुआ था कि एक दिन वह माँ के कहने पर कोपीनों के लिए वस्त्र क्रय करने पिता के एक परिचित वस्त्र-विक्रेता के यहाँ गया। जाते हुए वीथिका में ही एक स्त्री मैले, चिथड़े हुए वस्त्रों में, नंगे पाँव, एक बालिका को अँगुली पकड़ाए, बहुत थके हुए पगों से चलती हुई आती दिखाई दी। पुष्यमित्र ने समझा कोई भिखारिन होगी। इस कारण उसकी ओर ध्यान दिए बिना वह उसके समीप से निकल कर आगे बढ़ा। परन्तु उस स्त्री ने अन्य कोई पुरुष वीथिका में न देख उसको पुकार लिया। उसने कहा, "बालक!"

पुष्यमित्र खड़ा हो उस स्त्री का मुख देखने लगा तो उसने पूछा, "राज-पुरोहित का गृह कौन सा है?"

"क्या कार्य है उनसे?" पुष्यमित्र ने आश्चर्य से पूछा।

स्त्री ने तनिक डाँट के भाव में कहा, "राजपुरोहित तुम हो क्या?"

"नहीं, वे मेरे पिता हैं।"

"कार्य तुम्हारी माँ से है, तुमसे नहीं।"

इस डाँट से नम्र हो पुष्यमित्र ने अपना गृह बता दिया। वह स्त्री उस ओर चल पड़ी।

पुष्यमित्र राजमार्ग पर वस्त्र-विक्रेता की दुकान पर पहुँचा। इस समय श्रावकों की एक मण्डली राजपथ पर से होती हुई उस ओर आती दिखाई दी। इस मण्डली में पाँच सौ के लगभग श्रावक थे। वे पीत-वसनधारी, पाँव से नंगे, सिर मुँडे हुए और बौद्ध संघ मंत्र—'बुद्धं शरणं

"पर क्यों नहीं कर रहा ?"

"इस कारण की राज्य के संचालक यह विश्वास रखते हैं कि दुष्ट को सुधारने का उपाय उसको दण्ड देना नहीं, प्रत्युत उसको समझाना है। अतः जब कोई व्यक्ति चोरी करता है, तो दो मास के लिये किसी विहार में ध्यान, तपस्या और बौद्ध मन्त्र का जाप करने के लिये भेज दिया जाता है।"

"तो इससे उनका सुधार नहीं होता क्या ?"

"कुछ सुधरते भी होंगे, परन्तु अधिक संख्या में तो चोरी करने के लिए अधिक उत्साहित होकर आते हैं।"

"परन्तु पिताजी ! आप भी तो राज्य परिषद् में हैं। आप ऐसा क्यों होने देते हैं ?"

"बेटा ! यह तुम अभी नहीं समझ सकोगे। कुछ बड़े हो जाओ और पढ़ लिखकर विद्वान् बन जाओ तो मेरी विवशता को समझ सकोगे।"

"परन्तु आप इन दुष्ट प्रमादी लोगों को श्राप देकर भस्म क्यों नहीं कर देते ?"

पिता हँस पड़ा। हँसकर उसने कहा, "मेरी तपस्या में अभी कमी है।"

"तपस्या कैसे होती है पिताजी ! मैं तपस्या करूँगा।"

"पहिले तुम्हारा उपनयन होगा। तत्पश्चात् तुम विद्याध्ययन करोगे। तदनन्तर तपस्या कर तुम जान सकोगे कि देश तथा राष्ट्र का कल्याण किस बात में है और वह कैसे सम्पन्न हो सकता है।"

यह काल था जब कि पूर्ण देश यह अनुभव कर रहा था कि देश तथा समाज में ह्रास हो रहा है। इस पर भी कोई नहीं जानता था कि इस ह्रास को किस प्रकार रोका जाये। बात ठीक थी। देश को तपस्वी, मेधावी तथा कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों की आवश्यकता थी।

: ३ :

पुष्यमित्र माँ को वस्त्र देने गया तो उस स्त्री को, जिसको चीथड़ों में उसने वीथिका में देखा था, माँ के पास बैठे देखा। वह स्त्री आँखों से अश्रु बहा रही थी। माँ ने उसको नए वस्त्र पहिनने के लिए दिए थे

ग्रौर रजत उसके सम्मुख रखे हुए थे।

पुष्यमित्र ने माँ को वस्त्र दिया तो माँ ने वह उस स्त्री को देते हुए कहा, "इस लड़की के लिए कपड़े बनवा लेना। ग्रौर मैं चाहती हूँ कि तुम कुछ दिन यहाँ ठहरकर विश्राम करो। भीतर एक ग्रागार रिक्त पड़ा है, उसमें ठहर सकती हो।"

"नहीं भगवती! मैं जिस उद्देश्य से यहाँ ग्राई थी, वह जब पूर्ण नहीं हो सकता तो मैं जाती हूँ। इसके पिता की इच्छा थी कि इसकी शिक्षा वहीं, महर्षि जी के ग्राश्रम में हो। सो इसको वहाँ पहुँचा दूँ। पश्चात् ही निश्चिन्त होऊँगी।

"तुमने मुझको पहिचान लिया ग्रौर मेरी सहायता की है, मैं तुम्हारी ऋणी हूँ।"

इतना कह वह स्त्री बालिका की ग्रंगुली पकड़ ग्रौर वस्त्र तथा रजत उठा, हाथ जोड़ नमस्कार कर गृह से बाहर निकल गई। पुष्यमित्र उस स्त्री को जाते हुए देखता रह गया। जब वह चली गई तो उसने ग्रपनी माँ से पूछा, "माँ! यह कौन थी?"

"बेटा, मेरी एक सखी है। हम दोनों एक ही ग्राश्रम में पढ़ती थीं। इसका विवाह स्थानेश्वर के प्रकाण्ड विद्वान् श्री निखिलेश्वर जी से हुग्रा था। यह बच्ची उन्हीं पंडित जी की लड़की है।

"स्थानेश्वर पर यवनों का ग्रधिकार हो गया ग्रौर इसके पति उस झगड़े में मारे गये हैं। इनके घर को ग्राग लगा दी गई। यह बेचारी ज्यों-त्यों कर ग्रपनी ग्रौर इस बच्ची की जान बचाती हुई यहाँ ग्रा पहुँची है।

"ग्रब यह महर्षि पतंजलि के ग्राश्रम में ग्रपनी लड़की को छोड़ने जा रही है।"

"परन्तु माँ! एक ब्राह्मण को यवनों ने क्यों मारा है? उसके घर को ग्राग क्यों लगा दी है?"

"इसके पति ने यवनों को स्थानेश्वर से निकाल देने के लिए षड्यंत्र किया था। वह षड्यंत्र सफल नहीं हुग्रा। पंडित निखिलेश्वर [illegible]

सूली पर चढ़ा दिये गये और यह भाग आई है।"

"परन्तु माँ ! एक ब्राह्मण ने राजा के विरुद्ध षड्यंत्र क्यों किय था ? यह तो राजद्रोह के तुल्य हो गया न।"

"बेटा ! वह यवनाधिपति जिसके विरुद्ध पंडित निखिलेश्वर ने षड्-यंत्र किया था, वहाँ का राजा नहीं था। वहाँ का सम्राट तो शतधन्वन् है। यवनाधिपति तो अनधिकारी आक्रमणकर्ता है। अतएव ब्राह्मण ने कोई अनुचित बात नहीं की थी। वास्तविक सम्राट शतधन्वन् ने उसकी सहायता नहीं की।"

"सम्राट ने क्यों सहायता नहीं की ?"

"वह भीरु है। वह मूर्ख है और....।" वह कहती कहती रुक गई।

पुष्यमित्र पिता के वचन सुनकर आ रहा था। उस पर माँ के कथन ने रंग चढ़ा दिया। वह उत्कट इच्छा करने लगा कि शीघ्र ही उसका उप-नयन हो, वह वेदाध्ययन करे, तपस्या करे और इस प्रकार पूर्ण ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर देश में से भीरुता तथा अज्ञानता का नाश करे।

समय पर पुष्यमित्र का उपनयन संस्कार हुआ और वह आचार्य श्वेताश्वर के साथ विद्याध्यन के लिए उनके आश्रम में चला गया।

पुष्यमित्र की शिक्षा होने लगी। समय पाकर वह वेद, शास्त्र और इतिहास का ज्ञाता हो गया। शिक्षा के पूर्ण काल में वह अपने मन से, न तो वस्त्र-विक्रेता के कथन को कि 'सच्चे ब्राह्मण नहीं रहे, इसी कारण राज्य में अब्राह्मणों की पूजा होती है,' और न ही माँ के कथन को कि 'राजा भीरु है, मूर्ख है,' निकाल सका। वह यत्न करता रहा था कि देश तथा जाति की विडम्बना को समझे और इसकी चिकित्सा करे।

उसने भारत-युद्ध की कथा पढ़ी थी। इसमें उसने कृष्ण का अर्जुन को उपदेश भी पढ़ा था। उसके पढ़ने से उसके मन में प्रकाश होने लगा था।

अर्जुन निरुत्साही हो युद्ध करने से पीछे हट रहा था। कृष्ण ने उसको कहा था, 'यह क्लीवता तुम्हारे अन्दर कैसे आ गई ? तुम क्षत्रिय हो। युद्ध करना तुम्हारा धर्म है। इन मरने वालों को मरते देख तुम भयभीत

हो गए हो क्या ? तुम भीरु हो क्या ? यह व्यवहार तुमको घोर नरक में ले जाने वाला सिद्ध होगा।'

इस मीमांसा को पढ़ पुष्यमित्र के मन में मार्ग स्पष्ट हो रहा था। कृष्ण ने अर्जुन के हाथ में धनुष-बाण पकड़ा दिया था। उसको युद्ध में प्रवृत्त कर दुष्टों को दमन किया था।

पाण्डवों के भाई दुर्योधन इत्यादि महादुष्ट थे। उनको मारकर पृथ्वी का भार हलका करना था। कृष्ण ने भाइयों से युद्ध कराकर यह कार्य स्वयं सम्पन्न किया था।

परन्तु, पुष्यमित्र विचार करता था, अर्जुन और युधिष्ठिर के पास सात अक्षौहिणी सेना थी। साथ ही कृष्ण-जैसा नीतिज्ञ योगी उनका मार्ग-द्रष्टा था। इस कारण ही तो वे युद्ध में सफलता प्राप्त कर सके थे।

अर्जुन भयभीत था और कृष्ण ने उनकी आत्मा में जीवन का संचार किया था। कृष्ण ने अर्जुन को समझाया था कि वह राज्य के लिए युद्ध नहीं कर रहा, प्रत्युत वह तो 'विनाशाय दुष्कृताम्' अर्थात् दुष्टों के विनाश के लिए युद्ध कर रहा है। दुष्टों का विनाश तो होना ही चाहिए।

पुष्यमित्र को तात्कालिक परिस्थिति के अध्ययन से यह पता चला था कि भारत में वही क्लीवता आ गई है, जो किसी समय अर्जुन में उत्पन्न हुई थी।

शिक्षा समाप्त हुई और पुष्यमित्र घर लौटा। माता-पिता उससे घर-गृहस्थी में लग जाने की आशा करते थे, परन्तु पुष्यमित्र अपने विचारों में लीन इधर-उधर भटकता दिखाई दे रहा था।

: ४ :

एक दिन पुष्यमित्र अपने पिता के सम्मुख उपस्थित हो कहने लगा, "पिता जी! मैं अपने देश तथा जाति के उद्धार के लिए एक विपुल प्रयत्न करना चाहता हूँ। इसके लिए मैं अपने मन में एक योजना बना चुका हूँ। आप मुझको आशीर्वाद दें, जिससे मैं अपनी योजना में सफल हो सकूँ।"

पंडित अरुणदत्त अपने पुत्र की इस बात को सुन अवाक् बैठा रह

गया। वह इसका अर्थ नहीं समझ सका। वह यह तो जानता था कि पुष्यमित्र पढ़-लिखकर योग्य हो गया है और उसके मुख पर ब्रह्मचर्य का तेज देदीप्यमान हो रहा है। वह यह भी समझता था कि देश और राष्ट्र घोर पतित अवस्था में है और इसके उद्धार की आवश्यकता है। पुत्र के कथन से वह अब विचार करने लगा कि क्या उद्धार का यह कठिन काम वह कर सकेगा ?

उसको विदित था कि धर्म तथा जाति में ह्रास का कारण राज्य-परिवार की दुर्बल तथा दूषित मनोवृत्ति है। क्या पुष्यमित्र राज्य परिवार की इस मनोवृत्ति को सुधार सकेगा ? उसके मन में तो कई बार आ चुका था कि मौर्य वंश की, अशोक के काल से चली आ रही परम्परा को निकालने के लिए इस वंश को ही शून्य करना पड़ेगा। परन्तु यह कैसे होगा, वह नहीं जानता था।

इस पर भी वह पुत्र को इस शुभ कार्य से मना करना नहीं चाहता था। इस कारण बहुत ही विचारोपरान्त उसने पुष्यमित्र को मौर्य परिवार में घटी एक घटना सुना दी। उसने कहा, "देखो बेटा ! मैं इसी परिवार में घटित एक घटना का वर्णन करता हूँ। कदाचित् इससे तुम्हारा मार्ग-दर्शन हो सके।

"सम्राट अशोक का नाम तुमने सुना ही होगा। उसका एक पुत्र कुणाल था, जो अशोक की सबसे छोटी रानी के कुचक्र से चक्षु-विहीन कर दिया गया था।

"अशोक अभी जीवित था और राज्यगद्दी पर विराजमान था कि कुणाल प्रौढ़ हो गया और उसका पुत्र सम्प्रति युवा हो गया। अशोक स्वयं वयोवृद्ध हो चुका था।

"इस समय तक अशोक ने बौद्धों तथा विहारों को दान दे-देकर राज्यकोष रिक्त कर दिया था। साथ ही अहिंसामार्ग का मिथ्यारूप ग्रहण कर राज्य अरक्षित एवं अव्यवस्थित था। परिणाम यह हुआ कि राज्य के दूर-दूर प्रान्तों में विद्रोह होने आरम्भ हो गये। उस समय ऐसा अनु-

अब विचार जाने लगा कि अशोक वृद्ध हो गया है और किसी युवा पुरुष को राजगद्दी पर बैठना चाहिए। सबकी दृष्टि सम्प्रति पर थी। वह सुन्दर, मेधावी युवक था। कुणाल चक्षुविहीन होने से उचित अधिकारी नहीं समझा गया। अशोक भी चाहता था कि सम्प्रति ही गद्दी पर बैठे।

"परन्तु बौद्ध भिक्षु कुणाल का पक्ष लेते थे। कुणाल बौद्ध मतावलम्बी था और सम्प्रति शैव था। अतः विवाद खड़ा हो गया। कुणाल के पक्ष में पूर्ण बौद्ध सम्प्रदाय था। सम्प्रति अशोक के समर्थन पर भी निस्सहाय था।

"सम्प्रति की सहायतार्थ एक तेजस्वी ब्राह्मण वज्रबाहु खड़ा हो गया। उसने सम्प्रति को बौद्धों के कुचक्र से निकाल कर एक स्वतन्त्र स्थान पर खड़ा कर दिया और दोनों एक सेना निर्माण कर पाटलिपुत्र पर अधिकार करने चल पड़े।

"इस बीच अशोक राज्यच्युत कर कहीं अन्यत्र भेजा जा चुका था और कुणाल राज्याधिकारी माना जा चुका था। इस पर भी राज्य में सम्प्रति की सेना का विरोध करने की क्षमता नहीं थी। अतः पिता-पुत्र में सन्धि हो गई और कुणाल नाम मात्र का राजा रह गया। राज्य का वास्तविक कार-भार सम्प्रति के हाथ में आ गया।

"इस पर भी पुत्र के मन में पिता के प्रति श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो गई और इसके परिणामस्वरूप राज्य को बौद्धों के दुष्प्रभाव से रिक्त नहीं किया जा सका। अतः राज्य में वह दुर्बलता, जो अशोक के काल में उत्पन्न होने लगी थी, बढ़ती गई। वह राज्य जो गांधार तथा कपिश से लेकर कामरूप देश तक और हिमालय से लेकर कावेरी तक विस्तृत था, टूटने लगा। दूर-दूर के प्रदेश स्वतन्त्र राज्य बनने लगे। यहाँ तक कि अशोक के सम्बन्धी भी जहाँ-जहाँ पर थे, स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर बैठे।

"अब सम्प्रति का पर-पौत्र बृहद्रथ राज्य कर रहा है। महाराज शतधन्वन् के काल से तो विदेशियों के भी आक्रमण होने आरम्भ हो गये हैं।"

पुष्यमित्र इस कथा को सुनकर एक परिणाम पर पहुँचा कि देश में क्षत्रिय-वर्ग का अभाव वर्तमान दुर्दशा का परिणाम है। वज्रबाहु ने

क्षत्रिय-वर्ग की सृष्टि तो की थी, परन्तु उसमें कुछ दोष रह गया था; अन्यथा सम्प्रति कुमार को अन्तिम ध्येय तक ले जा सकता था। वह त्रुटि क्या थी, इसका विचार कर पुष्यमित्र अपनी योजना में से, उसे दूर रखने के लिए प्रयत्न करना चाहता था।

एक बात उनको समझ आ रही थी। वह थी क्षत्रिय-वर्ग के अभाव के साथ-साथ ब्राह्मणों के नेतृत्व में त्रुटि। अतः गम्भीर भाव धारण कर, अपने पिता से आशीर्वाद ले, वह अपने आगार में अपनी योजना के परिमार्जन के लिए चला गया।

: ५ :

महाराज बृहद्रथ को राजगद्दी पर बैठे तीन वर्ष हो चुके थे। इन तीन वर्षों में उसने तीन विवाह किये थे। बृहद्रथ की तीनों रानियाँ अपने-अपने सम्बन्धियों के लिए धन, भूमि अथवा राज्य में पदवी की माँग करती रहती थीं। सबसे बड़ी रानी विदिशा का भाई लक्ष्मणपुर में आयुक्तक था। उसका पत्र आया था कि उसको दो लक्ष स्वर्ण की अत्यन्त आवश्यकता है।

एक दिन महाराज के पास तीनों रानियाँ बैठी थीं कि विदिशा ने अपने भाई के पत्र का उल्लेख करते हुए कहा, "महाराज! लक्ष्मणपुर से भाई का पत्र आया है कि सेना के अभाव में कृषकों ने तथा दुकानदारों ने कर देने से इन्कार कर दिया है। पूर्व के आयुक्तक ने धन को बचाने के लिए सेना का विघटन कर दिया था और अब कर प्राप्त करने के लिए सैनिकों की आवश्यकता है। नवीन सेना-निर्माण के लिए दो लक्ष स्वर्ण की अत्यन्त आवश्यकता है।"

विदिशा की इस माँग को सुनकर महाराज ने कहा, "यह माँग सर्वथा युक्तियुक्त है। हम राज्य-परिषद् में इतना धन स्वीकार करवा कर भेज देंगे।"

"परन्तु महाराज!" विदिशा ने कह दिया, "इतना धन तो राज्य-कोष में है नहीं।"

"तो फिर हम क्या कर सकते हैं ? धन कहाँ से दिया जाय ?"

"पद्मा विहार पर प्रतिवर्ष दो लक्ष से ऊपर व्यय किया जाता है। इस वर्ष उसको धन न दिया जाय।"

"यह बहुत कठिन है।"

"क्यों ?"

"तुम नहीं जानती विदिशा ! जैसे मैं अपनी प्रिय रानियों का व्यय बन्द नहीं कर सकता, उसी प्रकार विहार का व्यय बन्द नहीं किया जा सकता।"

इस पर महाराज की दूसरी रानी सौम्या कुछ उद्विग्न भाव में कहने लगी, "महाराज ! आप हमारी तुलना इन सिर मुंडों से कर हमारा अपमान कर रहे हैं। देखिये, मैं एक उपाय बताती हूँ। मेरे पिता लक्ष्मणपुर में आयुक्तक बना दिये जायें। मुझे विश्वास है कि वे आपसे बिना एक भी स्वर्ण लिए, वहाँ नवीन सेना का निर्माण कर सकेंगे और कर प्राप्त कर आपको भेज सकेंगे।"

महारानी सौम्या के पिता का नाम वीरभद्र था और वह सेना में सेनानायक था। अपनी लड़की का विवाह बृहद्रथ से कर आज तक उसने किसी भी सुविधा की माँग नहीं की थी। इस कारण महाराज ने योजना को स्वीकार करते हुए कहा, 'यह ठीक है। हम महारानी विदिशा के भाई को किसी अन्य स्थान का आयुक्तक बना देंगे।"

परन्तु विदिशा को इसमें अपना और अपने भाई का अपमान प्रतीत हुआ। उसने कहा, "महाराज ! ऐसा नहीं होगा। मुझे विश्वास है कि पिता जी भी, लक्ष्मणपुर में जाकर, कुछ कर नहीं सकेंगे और उनको धन की आवश्यकता पड़ेगी।"

"महाराज ! परीक्षा कर देखना चाहिए।"

वाद-विवाद अभी आगे चलता, परन्तु इसी समय प्रतिहारिन ने सूचना दी कि महामात्य चन्द्रभानु किसी अत्यावश्यक कार्य से मिलना चाहते हैं।

महारानियाँ अन्तःपुर के भीतरी आगारों में चली गईं तो महामात्य ने आगार में प्रवेश कर नमस्कार की और अपने आने का आशय बता दिया। उसने कहा, "महाराज ! अभी-अभी कौशाम्बी से एक गुप्तचर यह समाचार लाया है कि गान्धार सैनिकों ने आक्रमण कर कौशाम्बी पर अधिकार कर लिया है और आस-पास के गाँव में लूटमार मचा दी है।"

"ओह! तो गान्धार भारतवर्ष में इतना अन्दर प्रवेश कर चुके हैं?"

"हाँ महाराज! पिछले बीस वर्षों से ये एक-एक गाँव पर अधिकार कर अपने राज्य की वृद्धि करते चले आ रहे हैं। इनसे पहिले समाचार आया था कि उन्होंने हस्तिनापुर पर अधिकार जमा लिया है।"

"परन्तु तब हमने अपना विरोध पत्र उनको भेजा था। उसका क्या परिणाम हुआ?"

"महाराज! हम अपने धर्म से बँधे हुए सबके कल्याण का चिन्तन करते हैं। हम निर्वाण-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं और पथ विचलित होने के भय से अहिंसा करने में संकोच करते हैं। परन्तु ये गांधार हमारी भावना का आदर नहीं करते। महाराज! गांधार मानव नहीं, पशु हैं। मानवों के साथ मानवता का सा व्यवहार तो ठीक है, परन्तु पशुओं के साथ मानवता का व्यवहार अयुक्ति-संगत है।"

"महामात्य! यदि ऐसा है तो भगवान तथागत ने यज्ञों में पशु बलि का विरोध क्यों किया था?"

"महाराज! पशुओं के स्वभाव वाला मनुष्य पशुओं से भी भयंकर होता है।"

"अच्छा ऐसा करें। आज सायंकाल राज्य परिषद् की बैठक बुला लें। राज्य परिषद् में इस समस्या पर विचार किया जायगा।"

महामात्य इससे प्रसन्न नहीं था। वह जानता था कि बौद्धों के हठ के कारण राज्य-परिषद् में पुनः वही निर्णय होगा, जो पिछली बार हस्तिनापुर पर गांधारों के आक्रमण के समाचार पर हुआ था। इस पर भी वह महाराज की आज्ञा सुन चुपचाप उठ, नमस्कार कर चला गया।

: ६ :

वीरभद्र बृहद्रथ का श्वसुर था। उसकी महाराज का श्वसुर बनने की किंचित् मात्र भी इच्छा नहीं थी, परन्तु जब महाराज ने सौम्या को देखा तो उस पर मोहित हो गये और फिर वीरभद्र उसका महाराज से विवाह करने के लिए विवश हो गया।

विवाह हुआ तो वीरभद्र ने प्रयत्न किया कि महाराज क्षत्रियों का सा व्यवहार करें और राज्य की रक्षा का प्रबन्ध करें। इसी प्रयत्न में उसने एक दिन, महाराज से कह दिया, "महाराज! यदि आपका व्यवहार क्षत्रियों जैसा होता, तो ये यवन इतनी दूर तक न चले आते।"

'वीरभद्रजी! जब राज्य-परिषद् मुझको युद्ध की सम्मति नहीं देती तो मेरा दोष कैसे हो गया?"

"परन्तु महाराज! यह राज्य-परिषद् भी तो आपने ही निर्माण की है। जब राज्य-परिषद् में आपने शूद्र भर रखे हैं तो वे आपको क्षत्रियों के योग्य सम्मति कैसे दे सकेंगे?

"कौन शूद्र है हमारी परिषद् में?"

"बौद्ध वर्ण-व्यवस्था को नहीं मानते। अतः वे शूद्रों से भी नीच अर्थात् वर्ण-संकर हैं।"

इस पर तो महाराज को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने कह दिया, "वीरभद्रजी! आप सौम्या के पिता हैं, इसलिए हम आपको क्षमा करते हैं। अन्यथा राज्य-परिषद् के इस अपमान पर आपको प्राण-दण्ड मिलना चाहिए था। अब आप जा सकते हैं।"

वीरभद्र वहाँ से चला आया। वह पुनः कभी महाराज से मिलने नहीं गया और राज्य-परिषद् में उसकी उन्नति पर विरोध होता रहा।

वीरभद्र की पत्नी का एक भाई शीलभद्र था। वह गुप्तचर विभाग में कार्य करता था। महामात्य ने उसकी नियुक्ति कौशाम्बी में की हुई थी। शीलभद्र ही कौशाम्बी से यवनों के आक्रमण का समाचार लेकर आया था।

महामात्य को समाचार देकर जब वह वीरभद्र तथा अपनी बहिन से

मिलने आया तो उन्होंने भी समाचार जानने की उत्सुकता प्रकट की। शीलभद्र ने बताया, "मुझको कौशाम्बी तब भेजा गया था, जब यवन हस्तिनापुर पर अधिकार कर चुके थे। वहाँ, पिछले वर्ष ही, यह चर्चा चल पड़ी थी कि यवन कौशाम्बी पर शीघ्र ही आक्रमण करेंगे। मैंने यह समाचार सविस्तार लिखकर पाटलिपुत्र भेज दिया था।

"मैंने अपना सन्देह वहाँ के आयुक्तक सोमप्रभ को भी बताया। सोमप्रभ बौद्ध उपासक था। मेरे इस समाचार का आधार यह था कि एकाएक कौशाम्बी में यवनों की संख्या बढ़ने लग गई थी।

"सोमप्रभ ने भी पाटलिपुत्र सूचना भेजी, परन्तु न तो उसे और न ही मुझे कोई आदेश मिला कि क्या करना चाहिए।

"परिणाम यह हुआ कि दो मास पूर्व एकाएक दो लक्ष गान्धार सैनिक कौशाम्बी को घेरा डाल बैठ गये। वहाँ के सेनानायक ने युद्ध की योजना बना ली, परन्तु सोमप्रभ ने समझौता करना उचित समझा। उसने एक शान्ति आयोग यवन सेनापति के पास भेजा और सन्धि कर ली। सन्धि की शर्तों में यह निश्चय हुआ कि बिना रक्तपात कौशाम्बी यवनों को दे दी जाय और इसके प्रतिकार में यवन लोग कौशाम्बी की प्रजा के धन, सम्पद् तथा मान की रक्षा करें।

"इस सन्धि के अनुसार कौशाम्बी यवनों के हाथ में दे दी गई। यवनाधिपति डोमैट्रियस कुछ दिन पश्चात् वहाँ पहुँच गया। इस समय तक यवनों का नगर पर पूर्ण रूप से अधिकार हो चुका था। यवन अच्छे-अच्छे भवन, सुन्दर वस्तुएँ और युवा स्त्रियाँ अपने लिए लेने लगे। कुछ डरा-धमका कर, कुछ छल कपट से तथा कुछ बलपूर्वक।

"इस पर सोमप्रभ ने डोमैट्रियस के सम्मुख उपस्थित होकर सन्धि के नियमों का स्मरण कराया। डोमैट्रियस ने पूछ लिया, 'तुम कौन हो ?'

"सोमप्रभ ने कहा, 'मैं यहाँ का आयुक्तक हूँ। मैंने ही आपके सेनापति से सन्धि की थी।' इस पर डोमैट्रियस ने हँसकर कहा, 'वह सन्धि अमान्य है। तुम पराजित हो, हम विजयी हैं और पराजित की विजयी

के साथ सन्धि नहीं होती।'

'महाराज !' सोमप्रभ ने कहा, 'सन्धि तो एक प्रकार का वचन-पत्र होता है। श्रीमान् जैसे शक्तिमान और माननीय व्यक्ति के लिये वचन-भंग शोभा की बात नहीं है।'

"डेमेट्रियस को इस पर रोष चढ़ आया। उसने कहा, 'तुम हमारा अपमान कर रहे हो।'

'नहीं श्रीमान् ! मैं आपके प्रतिनिधि द्वारा दिये गये वचन आपको स्मरण करा रहा हूँ।'

'तुम मूर्ख हो ! हम तुमको प्राणदंड की आज्ञा देते हैं।'

"सोमप्रभ तो वहीं उसी समय मार डाला गया। उसकी सम्पत्ति राज्याधिकार में ले ली गई और उसकी स्त्री तथा कन्याओं को लूट लिया गया। इस पर तो नगर-भर में धाँधली मच गई। जो जिसके हाथ में आया और जिस स्त्री पर, जिसकी दृष्टि पड़ी, वह उसने अपने खड्ग के बल पर हथिया ली।"

इस कथा को सुन कर वीरभद्र की आँखों से खून उतरने लगा। उसकी पत्नी पद्मा के अश्रु बहने लगे। इस पर भी वे कुछ नहीं कर सकते थे।

: ७ :

शीलभद्र गुप्तचर विभाग में भेजे जाने से पूर्व सेना में था। सेना में उसके कई मित्र तथा परिचित थे। वह सेना-शिविर में उनसे मिलने गया तो उसने देखा कि एक ब्राह्मणकुमार को घेर कर कई नायक बैठे हैं। उस मंडली में उसके भी मित्र थे। मित्रों ने जब उसे पहिचाना तो उठकर उससे गले मिलने लगे। शीलभद्र ने बताया कि वह कौशाम्बी पर यवनों के आक्रमण तथा वहाँ के रक्तपात की सूचना लेकर आया है। उस ब्राह्मणकुमार ने उससे विस्तार में कौशाम्बी का समाचार पूछ लिया और शीलभद्र ने सविस्तार वर्णन कर दिया।

सैनिक तो महाराज और राज्य-परिषद् के सदस्यों को गाली देने लगे। यह परिस्थिति उनकी ही बनाई हुई थी। ब्राह्मणकुमार ने उनको

मिलने आया तो उन्होंने भी समाचार जानने की उत्सुकता प्रकट की। शीलभद्र ने बताया, "मुझको कौशाम्बी तब भेजा गया था, जब यवन हस्तिनापुर पर अधिकार कर चुके थे। वहाँ, पिछले वर्ष ही, यह चर्चा चल पड़ी थी कि यवन कौशाम्बी पर शीघ्र ही आक्रमण करेंगे। मैंने यह समाचार सविस्तार लिखकर पाटलिपुत्र भेज दिया था।

"मैंने अपना सन्देह वहाँ के आयुक्तक सोमप्रभ को भी बताया। सोमप्रभ बौद्ध उपासक था। मेरे इस समाचार का आधार यह था कि एकाएक कौशाम्बी में यवनों की संख्या बढ़ने लग गई थी।

"सोमप्रभ ने भी पाटलिपुत्र सूचना भेजी, परन्तु न तो उसे और न ही मुझे कोई आदेश मिला कि क्या करना चाहिए।

"परिणाम यह हुआ कि दो मास पूर्व एकाएक दो लक्ष गान्धार सैनिक कौशाम्बी को घेरा डाल बैठ गये। वहाँ के सेनानायक ने युद्ध की योजना बना ली, परन्तु सोमप्रभ ने समझौता करना उचित समझा। उसने एक शान्ति आयोग यवन सेनापति के पास भेजा और सन्धि कर ली। सन्धि की शर्तों में यह निश्चय हुआ कि विना रक्तपात कौशाम्बी यवनों को दे दी जाय और इसके प्रतिकार में यवन लोग कौशाम्बी की प्रजा के धन, सम्पद् तथा मान की रक्षा करें।

"इस सन्धि के अनुसार कौशाम्बी यवनों के हाथ में दे दी गई। यवनाधिपति डोमैट्रियस कुछ दिन पश्चात् वहाँ पहुँच गया। इस समय तक यवनों का नगर पर पूर्ण रूप से अधिकार हो चुका था। यवन अच्छे-अच्छे भवन, सुन्दर वस्तुएँ और युवा स्त्रियाँ अपने लिए लेने लगे। कुछ डरा-धमका कर, कुछ छल कपट से तथा कुछ बलपूर्वक।

"इस पर सोमप्रभ ने डोमैट्रियस के सम्मुख उपस्थित होकर सन्धि के नियमों का स्मरण कराया। डोमैट्रियस ने पूछ लिया, 'तुम कौन हो?'

"सोमप्रभ ने कहा, 'मैं यहाँ का आयुक्तक हूँ। मैंने ही आपके सेनापति से सन्धि की थी।' इस पर डोमैट्रियस ने हँसकर कहा, 'वह सन्धि अमान्य है। तुम पराजित हो, हम विजयी हैं और पराजित की विजयी

के साथ सन्धि नहीं होती।'

'महाराज!' सोमप्रभ ने कहा, 'सन्धि तो एक प्रकार का वचन पत्र होता है। श्रीमान् जैसे शक्तिमान और माननीय व्यक्ति के लिये वचन-भंग शोभा की बात नहीं है।'

"डोमेट्रियस को इस पर क्रोध चढ़ आया। उसने कहा, 'तुम हमारा अपमान कर रहे हो।'

'नहीं श्रीमान्! मैं आपके प्रतिनिधि द्वारा दिये गये वचन आपको स्मरण करा रहा हूँ।'

'तुम मूर्ख हो! हम तुमको प्राणदंड की आज्ञा देते हैं।'

"सोमप्रभ तो वहीं उसी समय मार डाला गया। उसकी सम्पत्ति राज्याधिकार में ले ली गई और उसकी स्त्री तथा कन्याओं को लूट लिया गया। इस पर तो नगर-भर में धाँधली मच गई। जो जिसके हाथ में आया और जिस स्त्री पर, जिसकी दृष्टि पड़ी, वह उसने अपने खड्ग के बल पर हथिया ली।"

इस कथा को सुन कर वीरभद्र की आँखों से खून उतरने लगा। उसकी पत्नी पद्मा के अश्रु बहने लगे। इस पर भी वे कुछ नहीं कर सकते थे।

: ७ :

शीलभद्र गुप्तचर विभाग में भेजे जाने से पूर्व सेना में था। सेना में उसके कई मित्र तथा परिचित थे। वह सेना-शिविर में उनसे मिलने गया तो उसने देखा कि एक ब्राह्मणकुमार को घेर कर कई नायक बैठे हैं। उस मंडली में उसके भी मित्र थे। मित्रों ने जब उसे पहिचाना तो उठकर उससे गले मिलने लगे। शीलभद्र ने बताया कि वह कौशाम्बी पर यवनों के आक्रमण तथा वहाँ के रक्तपात की सूचना लेकर आया है। उस ब्राह्मणकुमार ने उससे विस्तार से कौशाम्बी का समाचार पूछ लिया और शीलभद्र ने सविस्तार वर्णन कर दिया।

सैनिक तो महाराज और राज्य-परिषद् के सदस्यों को गाली देने लगे। यह परिस्थिति उनकी ही बनाई हुई थी। ब्राह्मणकुमार ने उनको

धैर्य से परिस्थिति पर विचार करने का आग्रह करते हुए कहा, "इसमें महाराज का इतना दोष नहीं। यह तो उस वातावरण का दोष है, जो बौद्ध जीवन मीमांसा ने पिछले छः-सात सौ वर्ष से इस देश में बनाया है। मैं तो इसका यही उपाय समझता हूँ, जो मैंने आपको बताया है।"

यह ब्राह्मणकुमार पुष्यमित्र ही था। पुष्यमित्र ने सबसे पूर्व सेनापति से बातचीत कर उसको अपने पक्ष में किया था। सेनापति ने अपनी असमर्थता बताई कि इस पुरानी सेना से उद्धार-कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। इस पर पुष्यमित्र ने अपनी योजना उसके सम्मुख रख दी। यही योजना वह सेनानायकों को समझा रहा था, जब शीलभद्र कौशाम्बी का समाचार लेकर वहाँ आया। पुष्यमित्र की योजना थी कि सेनानायक, जो सैनिक शिक्षा दे सकते हैं, सेना से अवकाश लेकर गाँव-गाँव में फैल जायँ और वहाँ के युवकों को एकत्रित कर, उनको समझा कर सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार करें। इस प्रकार एक वर्ष में ही दो लक्ष सैनिक शिक्षा प्राप्त कर, बीस सहस्र पुरानी सेना के साथ महाराज के सम्मुख उपस्थित हो यह मांग उपस्थित करें कि यवनों को देश से निकालने के लिए युद्ध की घोषणा कर दी जाय।

पुष्यमित्र ने यह समझाया कि यह कार्य अवैतनिक किया जाना चाहिए, परन्तु नवीन सेना के लिए शस्त्रास्त्र तथा गणवेश बनवाने के लिए धन एकत्रित किया जायगा। यह धन सेट्ठियों से प्राप्त होगा।

उसने पाटलिपुत्र के प्रमुख सेट्ठी धनसुखराज से भी अपनी योजना पर बातचीत की थी। यह धनसुखराज वही सेट्ठी था, जिसकी दुकान पर सात वर्ष की आयु का बालक पुष्यमित्र वस्त्र क्रय करने गया था। पुष्य-मित्र अपनी शिक्षा प्राप्त कर जब से लौटा था, इस सेट्ठी से मिलता रहता था और अपनी योजना पर उससे विचार-विनिमय करता रहता था।

धनसुखराज पुष्यमित्र की योजना से पूर्णतया सहमत था, परन्तु वह कुछ भयभीत भी था। वह समझता था कि यदि राजा को इसका ज्ञान हो गया तो यह देशद्रोह माना जायगा और उनको शूली पर चढ़ाया जा

सकता है। इस पर भी अब पानी नाक तक चढ़ चुका था। पूर्ण नगर में कौशाम्बी की लूटमार तथा अत्याचार के समाचार फैल चुके थे और लोगों में, मुख्यतया धनी वर्ग में, यही कुछ निकट भविष्य में पाटलिपुत्र में होने की आशंका घर कर चुकी थी। इसी कारण पुष्यमित्र की योजना भययुक्त होते हुए भी, वह इसमें सहायक होना चाहता था।

सेनानायकों को अपनी योजना भली-भांति समझाकर पुष्यमित्र सेठ धनसुखराज के पास जा पहुँचा। उसने सेठ से कहा, "धर्ममूर्ति! मैं अपनी योजना का श्रीगणेश कर आया हूँ। अब मैं चाहता हूँ कि आप लोग मिल कर धन एकत्रित करें, जिससे नवीन सेना के लिए गणवेश तथा शस्त्र इत्यादि निर्माण करने का कार्य आरम्भ किया जा सके।"

धनसुखराज ने पुष्यमित्र के मुख पर ध्यान से देखते हुए कहा, 'कल मैं शिव मन्दिर में पूजा करा रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम पुरोहित बन पूजा कार्य सम्पन्न करो। नगर भर के परिचित सेठी वहां एकत्रित होंगे। तुम उनके सम्मुख अपनी योजना रखना। आवश्यकता हुई तो मैं तुम्हारी बात का समर्थन कर दूंगा।

अगले दिन पुष्यमित्र पूजा के समय मन्दिर में जा पहुँचा। धनसुख ने उसको पुरोहित के आसन पर बैठाया और स्वयं यजमान बन बैठ पूजा करने लगा। इस पूजा में धनसुखराज के बहुत से सम्बन्धी, मित्र इत्यादि उपस्थित थे। प्रायः सभी व्यापारी थे और करोड़पति से लेकर साधारण आय वाले, सभी श्रेणी के लोग थे।

पूजन हुआ और पूजा के पश्चात् धनसुखराज ने सब उपस्थित जनों को सबोधित कर कहा, "आज की पूजा में पुरोहित के आसन पर राजपुरोहित पं० अरुणदत्त के सुपुत्र प० पुष्यमित्र विराजमान हैं। अब ये आपसे एक विशेष निवेदन करना चाहते हैं। मुझे आशा है कि आप इनकी बात को ध्यानपूर्वक सुनेंगे और उस पर गंभीरता पूर्वक मनन करेंगे।"

इस परिचय के पश्चात् पुष्यमित्र ने कहना आरम्भ कर दिया। उसने अपनी बात महाभारत युद्ध के कारणों को बताते हुए आ-

एक सेठ्ठी लक्ष्मीचन्द्र था। सबसे पहिले उसने ही शंका उपस्थित की। उसने पूछा, "यह राज्य-कार्य है। इसको हम अपने हाथ में कैसे ले सकते हैं?"

"यह राज्य-कार्य हम अपने हाथ में नहीं ले रहे। इस कार्य को सेनानायक इत्यादि ही करेंगे और वे इसको करने के योग्य हैं। आपने तो केवल वही कार्य करना है, जो अब तक करते आ रहे हैं। अर्थात् राज्य कार्य चलाने के लिये धन देना। राज्य को धन हम खड्ग की नोक पर विवश होकर देते हैं। यहाँ तो एक ब्राह्मण देश और समाज के कल्याण के लिए भिक्षा माँग रहा है। यदि आप समझते हैं कि मैं दान पाने का पात्र हूँ और कार्य कल्याणमय है तो धन तो आप ही देंगे।"

दूसरा प्रश्न था, "एक राज्य में दो सेनाएँ कैसे हो सकती हैं?"

पुष्यमित्र का कहना था, "यह नवीन सेना प्रथम सेना का अंग ही होगी। केवल इसका कार्य आक्रमणकारियों से युद्ध करना होगा, जो पहली सेना करने के योग्य नहीं है।"

"यह देश-द्रोह नहीं होगा क्या?"

"नहीं, यह देश की विधर्मियों से रक्षा के निमित्त होगा। जो कार्य देश की रक्षा के निमित्त किया जाय, वह देश-द्रोह कैसे हो सकता है?"

"यदि महाराज किसी प्रकार भी युद्ध करने की आज्ञा न दें तो?"

"तब प्रजा यह युद्ध बिना राजा की अनुमति के चलायगी।"

"यह कैसे पता चले कि जन-साधारण युद्ध चाहता है?"

"देहातों में नव सेना निर्माण का कार्य होगा। यदि प्रजा नहीं चाहेगी तो सेना में भरती नहीं होगी। यदि आप लोग धन नहीं देंगे तो यह समझा जायगा कि आप युद्ध नहीं चाहते।"

इस प्रकार चिरकाल तक प्रश्नोत्तर होते रहे। अन्त में धनसुखराज ने कहा, "स्थानेश्वर, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर और कौशाम्बी में यवन सेना ने अधिकार कर लिया है। यह बात निश्चित ही है कि यदि उनको रोका न गया तो वे एक दिन पाटलिपुत्र पर भी अधिकार करने के लिए आक्रमण कर देंगे। तब पाटलिपुत्र में वही कुछ होगा, जो अन्य स्थानों

पर हुआ है। वहाँ पर धन-सम्पद् लूट लिया गया है। युवकों की हत्या कर दी गई है और स्त्रियों से बलात्कार किया गया है।

"हम ऐसा नही चाहते। इस कारण सेना तो निर्माण करनी ही पड़ेगी। महाराज उस सेना का प्रयोग करते हैं तो ठीक है, अन्यथा जाति के क्षत्रिय-वर्ग इसका प्रयोग करेंगे। हम जो धनीवर्ग मे से हैं, धन देंगे तो क्षत्रिय जाति के लोग पूर्ण जाति की रक्षा के लिये युद्ध करेंगे।"

इस प्रकार बात निश्चित हो गई। एक अर्थसमिति बना दी गई और धन एकत्रित होने लगा। पहले पाटलिपुत्र के राजपथ पर, पश्चात् अन्य भागों में और तदनन्तर मगध राज्य के अन्य स्थानों पर मगध संरक्षण समितियाँ बनाई गई। धन आने लगा और सेना के लिए शस्त्र, अस्त्र तथा गणवेश बनाए जाने लगे।

: ८ :

राज्य-परिषद् की बैठक मे कौशाम्बी पर हुए यवन आक्रमण के समाचार पर विचार-विनिमय हो रहा था। परिषद् में महामात्य चन्द्रभानु, सेनापति विद्रुम, राजपुरोहित अरुणदत्त, सेठ नीलमणि कोषाध्यक्ष, सेठ महाकान्त प्रमुख न्यायाधीश, महाप्रभु बादरायण और श्रावक सुनन्द सदस्य थे और सभी इस बैठक मे उपस्थित थे।

महाराज के पधारने पर महामात्य ने कौशाम्बी से आये गुप्तचर का समाचार सुनाया। पश्चात् महाराज ने कुछ उत्तेजना के स्वर मे कहा, "मौर्य-राज्य सिन्धु नदी तक फैला हुआ था। वह घटता-घटता कौशाम्बी तक रह गया है। साथ ही हमारी प्रजा पर जो घोर अत्याचार हुआ है, वह हम सहन नही कर सकते। मैं चाहता हूँ कि मंत्री-मंडल इस आँधी को रोकने का कोई उपाय करे।"

"परन्तु महाराज!" राजपुरोहित का प्रश्न था, "अभी तक इसके विरोध के लिए कुछ उपाय किया गया है अथवा नहीं?"

उत्तर महामात्य ने दिया। उनका कथन था, "हमारे देश तथा धर्म की नीति यह रही है कि बातचीत कर समस्या का सुभाव ढूँढा जाय।

सके लिए हम कई बार प्रयत्न कर चुके हैं; परन्तु ऐसा प्रतीत होता है
कि इस का यवनों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा। हमने लिखा था कि
म मानव-समाज को एक मानते हैं। हम गान्धार तथा भारतीयों में कोई
न्तर नहीं मानते। यदि गान्धार इस देश में प्रभुता प्राप्त कर रहे हैं,
तो हमारा उनसे वैमनस्य नहीं। हम यह चाहते हैं कि वे भी मानव
के आत्म-सम्मान की रक्षा करें। इस सब कुछ लिखने का कोई उत्तर
नहीं आया और यवनों का व्यवहार बिगड़ता ही जा रहा है।"

अरुणध्वज ने कहा, "महाराज! यवनों से युद्ध की घोषणा कर दी जाय। जो समझाने से नहीं समझते, उनको अपनी शक्ति का परिचय देना ही होगा।"

इस पर नीलमणि कोषाध्यक्ष ने कह दिया, "पहिले शक्ति एकत्रित की जाय तब ही तो शक्ति का परिचय दिया जा सकता है।"

"तो हमारा इतना बड़ा साम्राज्य क्या शक्ति-विहीन है?"

"हाँ पुरोहित जी! शक्ति का स्रोत धन है और हमारे कोष में कुछ सहस्र स्वर्ण से अधिक कुछ नहीं।"

"इस वर्ष की आय किधर गई?"

"इस वर्ष आय बहुत कम रही है। साकेत से कर नहीं आया। विदर्भ ने भी कर देने से इन्कार कर दिया है। लक्ष्मणपुर के आयुक्तक ने लिखा है कि बिना सैनिकों की सहायता के कर प्राप्त नहीं हो सकता। सेना है नहीं। स्थानेश्वर, इन्द्रप्रस्थ और कौशाम्बी से भी कर नहीं आ रहा।"

इस पर महाराज ने कह दिया, "कर बढ़ा दिए जायें।"

राजपुरोहित का कहना था, "राज्य व्यय कम कर दिया जाय।"

"इसके लिए स्थान नहीं। सबसे अधिक व्यय विहारों में होता है। यदि उसमें कमी की गई तो भिक्षु लोग भूखे मरने लगेंगे।"

"हमारे पास कितनी सेना है?"

"इस समय बीस सहस्र है। परन्तु वेतन मिले कई-कई मास हो चुके हैं।" सेनापति विद्रुम ने कह दिया।

इस पर महामात्य ने कहा, "कर-वृद्धि की आज्ञा दे दी जाय और जितना अधिक धन प्राप्त हो, सेनावृद्धि में व्यय किया जाय।"

इस पर महाप्रभु बादरायण कहने लगे, "प्रायः सेठ्ठी लोग उपासक हैं और वे अपने कर का प्रयोग सेना के विस्तार पर पसन्द नहीं करेंगे।"

"यह आप कैसे कहते हैं ?" महामात्य का प्रश्न था।

"युद्ध उनके धर्म के विपरीत है।"

"तो क्या अपना धन-जन अरक्षित रखना उनके धर्म के अनुसार है?"

"यह बात नहीं महामात्य ! यदि प्रजा नवीन राज्य के अधीन रहना स्वीकार कर ले तो फिर कौन राजा होगा, जो अपनी प्रजा को व्यर्थ में तंग करेगा ? जहाँ-जहाँ पर भी अत्याचार हुए हैं, वहाँ प्रजा के विद्रोह करने पर ही हुए हैं। इन्द्रप्रस्थ के नागरिकों ने यवन-राज्य स्वीकार कर लिया था। इस कारण वहाँ किसी प्रकार का अत्याचार नहीं हुआ। कौशाम्बी के गोमत्रम ने डेमिट्रियस से झगड़ा किया तो वहाँ हत्याकाण्ड मच गया।"

अब सेनापति ने कहा, "हत्याएँ हुई हैं अथवा नहीं हुई हैं, धन लूटा गया है अथवा नहीं, प्रश्न यह नहीं। समस्या यह है कि महाराज के राज्य का एक भाग डेमिट्रियस ने अधिकार में कर लिया है। यह उसका अधिकार नहीं। हमको अपने राज्य का वह भाग वापिस लेना चाहिए।"

"हमारा और पराया तो मूर्खों की बात है। कोई राज्य का अंश हमारा कैसे हो गया ? प्रजा वहीं रहती ही है। हम वहाँ प्रबन्धक के रूप में रहें, चाहे डेमिट्रियस रहे, इसमें क्या अन्तर है ?"

"तब तो ठीक है," न्यायाधीश का कहना था, "हमारा विचार है कि यदि महाप्रभु का कथन मान लिया जाय तो महाराज एक पत्र डेमिट्रियस को लिख दें जिसमें उसको धन्यवाद दें कि उसने महाराज के स्थान पर प्रबन्ध-कार्य करना आरम्भ कर दिया है और इससे महाराज के कन्धों पर बोझा हल्का हो गया है।"

"मैं समझता हूँ कि," महाप्रभु का कहना था, "मेरे कथन का मिथ्या

अर्थ लगाया जा रहा है। मैं राज्य छोड़ने के लिये नहीं कहता। मैं तो यह कह रहा था कि जहाँ तक प्रजा का सम्बन्ध है, उसने तो किसी-न-किसी के अधीन रहना ही है। उसको विद्रोह करने में कोई कारण नहीं है। रहा हमारा अर्थात् महाराज का आक्रमणकारी के साथ सम्बन्ध, वह परस्पर समझौते से निश्चित होना चाहिए।"

"समझौता कैसे किया जाय और फिर यदि दूसरा समझौता तोड़ दे तो उसका पालन कैसे कराया जाय ?"

"मैं चाहता हूँ कि हमारे राज्य का कोई अधिकारी डेमिट्रियस से स्वयं जाकर मिले और उनसे मिलकर उनकी इच्छा जाने। तत्पश्चात् हम समझ सकते हैं कि युद्ध के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय है अथवा नहीं।"

"तो ठीक है," महाराज का कहना था, "हम समझते हैं कि महामात्य दूत बन कर जायें और डेमिट्रियस से मिलकर उसकी इच्छा जानने का यत्न करें।"

" मैं समझता हूँ," राजपुरोहित का कहना था, "राज्य को सबल बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया जाये। शत्रु मानेगा नहीं। अन्त में उससे युद्ध करना ही पड़ेगा। अतः सेना के विस्तार और सुदृढ़ करने का कार्य अभी से आरम्भ कर दिया जाय।"

"ऐसा करने से तो," महाप्रभु का कहना था,' शत्रु भड़क उठेगा। हमारी ओर से युद्ध की तैयारी देखकर समझौते की सम्भावना क्षीण हो जायेगी।"

"जब वह स्वयं एक बलशाली सेना रखता है, तो हमको सेना बढ़ाते देख उसको रोष क्यों होगा ?"

"हम तो शान्ति से वार्तालाप कर सन्धि करना चाहते हैं न ? इस कारण हमको अपना व्यवहार भी ऐसा बनना चाहिये, जिससे हम मन, वचन और कर्म से एक रस प्रतीत हों।"

अब सेनापति ने पूछ लिया, "मान लीजिये कि डेमिट्रियस कोई ऐसी बात नहीं मानता है, जो हमारे हित में हो, तब हम क्या करेंगे ?"

"मुझको मनुष्य प्रकृति पर विश्वास है। इसके सद्गुणों पर भरोसा कर

ही तो भगवान तथागत ने अपनी अहिंसा की मीमांसा निकाली थी।"

अब महाराज ने अपना निर्णय दे दिया, "हम समझते हैं कि आज का विचार समाप्त हुआ। जो कुछ हमने निश्चय किया है, उसको कार्यान्वित किया जाय। अभी महामात्य को जाने की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिये और वहाँ जाकर शत्रु की इच्छा की जानकारी हमें देनी चाहिये।"

महाप्रभु ने कहा, "हमारा राजदूत पूर्ण रूप से शान्ति का दूत बनकर जाना चाहिये। अतः वे अपने साथ पचास श्रावक ले जायें तो बहुत अच्छा रहेगा। साथ ही,यदि भगवान् तथागत के किसी प्रवचन की व्याख्या की आवश्यकता पड़ी तो वह भी हो सकेगी।"

राजपुरोहित का कहना था, "इसमें क्या आपत्ति हो सकती है? परन्तु मुझको विश्वास है कि महामात्य अपने कार्य में सफल नहीं होंगे। अतएव मैं तो यह चाहता हूँ कि युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी जाय अन्यथा आग लगने पर कुआँ खोदने से आग बुझ नहीं सकेगी।"

इस पर महाराज उठ खड़े हुए और राज्य-परिषद की बैठक समाप्त हुई।

: ६ :

राज्य-परिषद् के सब सदस्यों में से सबसे अधिक निराशा राजपुरोहित प० श्रवणदत्त को हुई थी। सेनापति के मुख पर पूर्ण कार्रवाई से असन्तोष विराजमान था। महामात्य चिन्ता अनुभव कर रहा था। वह नहीं जानता था कि बिना राज्य में शक्ति रखे कैसे शत्रु से बात कर सकेगा?

कोषाध्यक्ष युद्ध का निर्णय न हो सकने से प्रसन्न था। वह जानता था कि युद्ध का व्यय राज्य सहन नहीं कर सकता।

जब महाराज चले गये तो सेनापति ने राजपुरोहित से पूछा, "पण्डित जी! कैसी रही आज की बैठक?"

"मुझको तो कोई मार्ग सूझ नहीं रहा।"

"मेरे लिए मार्ग स्पष्ट होता जा रहा है।"

"किस प्रकार?"

"देखिये पण्डितजी! महामात्य सर्वथा अयोग्य व्यक्ति हैं। मैंने उनसे कहा

था कि हमको राज्य की वागडोर अपने अधिकार में कर लेनी चाहिये। यदि महाराज युद्ध के लिये तैयार न हो सकें तो महाराज को वन्दी बना लिया जाय और उनके नाम पर हम राज्य चलायें। सेना तैयार करें और कौशाम्बी पर आक्रमण कर दें। परन्तु महामात्य कहने लगे, 'यह तो राज्य-द्रोह हो जायगा। ऐसा वह नहीं कर सकता।' इस पर मैं हँस पड़ा और मैंने कह दिया कि मैं तो हँसी कर रहा था।"

"आपने ठीक किया है। ऐसी वात मन में भी नहीं लानी चाहिये।"

न्यायाधीश चुपचाप इनकी वातें सुनता हुआ इनके साथ-साथ चल रहा था। अव उसने कह दिया, "पण्डित जी ! वृहद्रथ राज्य है क्या ?"

"वह राज्य का प्रतीक है।"

"किस वेद-शास्त्र में लिखा कि वृहद्रथ, जो महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य के परपौत्र का परपौत्र होगा, वही मगध राज्य का प्रतीक होगा।"

"तो राज्य का प्रतीक कौन हो सकता है ?"

"राज्य-परिपद्।"

"राज्य-परिपद् तो इस विषय में एकमत नहीं है।"

"एकमत की जा सकती है।"

"कैसे ?"

"प्रजा-परिपद की वैठक बुलाकर।"

"प्रजा-परिपद् में कौन-कौन वुलाया जायगा ?"

"प्रत्येक एक लक्ष प्रजा के पीछे एक व्यक्ति। पूर्ण राज्य भर से इस अनुपात में प्रतिनिधि बुला लिए जायें।"

"यह असम्भव है। यदि परिषद बुला भी ली जाय तो उसका एकमत होना असम्भव है।"

"तो फिर विप्लव हो जायगा, पण्डित जी ! प्रजा यवनों का विरोध चाहती है और हम अपनी अज्ञानता के कारण शान्ति-शान्ति का पाठ पढ़ाकर शत्रु की सहायता कर रहे हैं।"

इस पर सेनापति ने कह दिया, "देखिए पुरोहित जी ! महामात्य के

जाने के पश्चात् आप महामात्य नियुक्त होंगे। अतः मैं चाहता हूँ कि मेरे अथवा सेना के विषय में जो भी सूचना आपको मिले, वह मुझसे पूछे बिना महाराज अथवा राज्य-परिषद् में उपस्थित न करें। मेरा यही समझौता महामात्य चन्द्रभानुजी के साथ था और यही आपके साथ होना चाहिए। अन्यथा मैं सैनिकों को कह कर एक दिन में विप्लव उत्पन्न कर दूँगा। तब उसमें कौन बचेगा और कौन नहीं, कहा नहीं जा सकता।"

इस चुनौती पर पण्डित अरुणदत्त विस्मय में मुख देखता रह गया।

सेनापति अपने भवन में पहुँचा तो पुष्यमित्र उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। पुष्यमित्र यह जानने के लिए आया था कि राज्य-परिषद् ने क्या निर्णय लिया है। सेनापति ने राज्य परिषद् की कार्यवाही बताने के पश्चात् कहा, "जी तो चाहता है कि यहाँ पर सेना का राज्य स्थापित कर दूँ और महाप्रभु इत्यादि सबको मृत्यु के घाट उतार दूँ।"

इस पर पुष्यमित्र ने मुस्कराते हुए कहा, "ऐसा नहीं सेनापति! मैं देश में विप्लव खड़ा करना नहीं चाहता। विप्लव से अव्यवस्था हो जायगी और तब शत्रु को पाटलिपुत्र पर चढ़ आने का अवसर मिल जायगा।

"अभी तो नवसेना निर्माण में द्रुत गति से कार्य करना चाहिए। धन की तो वर्षा होनी आरम्भ हो जायगी। पाटलिपुत्र के प्रायः सभी सेठियों ने जी खोलकर धन देने का निर्णय ले लिया है।

"अब मैं स्वयं भी गाँव-गाँव में भ्रमण कर युवकों को सेना में भरती होने की प्रेरणा देना चाहता हूँ। राज्य-परिषद् को तोड़ने का अवसर तब आयगा, जब नवीन सेना के निर्माण के पश्चात् भी महाराज युद्ध का विरोध करेंगे।"

१०

महामात्य और उनके साथ पचास बौद्ध-भिक्षु यवनाधिपति डेमिट्रियस से विचार-विमर्श करने के लिए पाटलिपुत्र से रवाना हो गये और उन के स्थान पर पंडित अरुणदत्त महामात्य नियुक्त हो गया। अरुणदत्त देख रहा था कि पुष्यमित्र प्रायः घर में अनुपस्थित रहने लगा है। कभी-कभी तो दस

दस बीस-बीस दिन तक उसके दर्शन नहीं होते थे। इसके साथ-साथ पुष्य-मित्र को पूछने के लिए बहुत से लोग आने लग गये थे। इस सब हलचल से अरुणदत्त यह तो समझ रहा था कि पुष्यमित्र कुछ कर रहा है, परन्तु क्या कर रहा है और किस अर्थ कर रहा है, वह नहीं जानता था।

महामात्य को पाटलिपुत्र से गये कई मास व्यतीत हो चुके थे और उनका कोई समाचार नहीं आया था। महामात्य के परिवार के सदस्य समाचार न आने पर बहुत चिन्ता अनुभव करने लगे थे और उनकी पत्नी तो कई बार अरुणदत्त के भवन में आकर उसको आग्रह कर चुकी थी कि उनका पता किया जाय।

अरुणदत्त इसके लिए अपने को निस्सहाय पाता था। राज्य का कोई सूचना-विभाग नहीं था, गुप्तचर-विभाग भी छिन्न-भिन्न हो चुका था, जिन के द्वारा पाटलिपुत्र से सूचना प्राप्त की जा सकती। वह समझता था कि महामात्य चन्द्रभानु के कारण ही सारे प्रबन्ध में गड़बड़ हुई है; परन्तु अब तो वह स्वयं महामात्य के पद पर आसीन था। अतः उसने निश्चय कर लिया कि वह कुछ गुप्तचर कौशाम्बी भेजकर सूचना मंगवाने का प्रयत्न करेगा।

इसी अर्थ उसने कोषाध्यक्ष सेठ नीलमणि को बुला भेजा। जब नीलमणि आया तो उसने पूछ लिया, "सेठ जी! कोष की क्या अवस्था है?"

नीलमणि ने स्थिति वर्णन कर दी। उसने कहा, "महाराज की आज्ञा आई है कि दस सहस्र स्वर्ण महारानी विदिशा को दे दिये जायें। कोष में तो इतना धन भी नहीं है।"

"तो फिर क्या होगा?"

"मैंने महाराज को पूर्ण स्थिति से अवगत कर दिया है। उनकी आज्ञा हुई है कि किसी सेट्ठी से ऋण ले लिया जाय और जब कोष में धन आयेगा तो यह ऋण चुका दिया जायगा।"

"मैं चाहता हूँ कि कुछ गुप्तचर नियुक्त कर उनको कौशाम्बी भेजा जाय, जिससे महामात्य चन्द्रभानु का समाचार मिल सके।"

"कितना धन इस कार्य के लिए चाहिए ?"

"मैं पांच व्यक्ति भेजना चाहता हूं। प्रत्येक गुप्तचर के साथ पांच-पांच अश्वारोही जाने चाहिएं, जो वहाँ का समाचार यहाँ तक पहुँचा सकें। इस प्रकार तीस व्यक्तियों का कम-से-कम दो-दो मास का व्यय मिलना चाहिए। यह लगभग तीन सहस्र स्वर्ण होगा।"

"यह तो बहुत अधिक हो जायगा।"

"जहाँ आप दस सहस्र महारानी जी के लिए प्रबन्ध कर रहे हैं, वहाँ इनका भी प्रबन्ध कर दीजिए।"

"महाराज की आज्ञा के बिना एक टका भी ऋण नहीं लिया जा सकता।"

महाराज बृहद्रथ के पास अनुमति के लिए श्रवणदत्त ने संदेश भेजा तो उन्होंने आज्ञा दे दी कि पन्द्रह सहस्र स्वर्ण का प्रबन्ध कर दिया जाय। सेठ नीलमणि ने धनगुप्तराज के पास ऋण के लिए सन्देश भेज दिया। धनगुप्तराज अपने पास से इतना धन दे तो सकता था, परन्तु वह जानता था कि यह धन वापस मिलने की कोई आशा नहीं। इस कारण उसने यह प्रयत्न किया कि कई सेठ्ठी मिलकर यह प्रबन्ध कर दें, जिससे प्रत्येक पर अधिक बोझा न पड़े। इसमें बात फैल गई कि राजकोष रिक्त हो गया है।

महाराज के लिए ऋण का प्रबन्ध तो हो गया, परन्तु सब अनुभव करने लगे थे कि अब राज्य स्थिर नहीं रह सकता। राज्यकोष की इस स्थिति पर विचार करने के लिए एक सेठ्ठियों की गोष्ठी बुला ली गई। गोष्ठी में सेठ लक्ष्मीपति ने अपने विचार रख दिये, "सौ, दो-दो सौ स्वर्ण एकत्रित कर यह धन हम राज्य को दे रहे हैं, परन्तु इतना निश्चित है कि यह ऋण तब तक वापस मिलने की आशा नहीं, जब तक पुष्यमित्र की योजना फलीभूत नहीं होती।

"प्रायः सारा धन या तो राज्य-परिवार की सुख-सुविधा पर व्यय हो जाता है या बौद्ध विहारों को दान में दे दिया जाता है। अतः हमको चाहिएं कि राज्य संरक्षण समिति को पर्याप्त धन देकर नवीन सेना

निर्माण का कार्य शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण कर दें, जिससे हमारे घरों में रखा धन तथा राज्य को दिया गया ऋण सुरक्षित रह सके।"

परिणाम यह हुआ कि संरक्षण समिति का एक सदस्य, सेठ पूर्णचन्द्र पुष्यमित्र के साथ-साथ घूमने लगा और जहां-जहां, जितने धन की आवश्यकता पड़ती, खुले हाथ से देने लगा। इससे सेना-निर्माण का कार्य पूर्ण गति से चलने लगा। परन्तु इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि इसके समाचार महामात्य तक पहुँचने लगे।

एक दिन राजपुरोहित के एक सम्बन्धी, जो प्रतिष्ठानपुरी में रहते थे, पुरोहित जी से मिलने आये तो बधाई देने लगे। राजपुरोहित के पूछने पर उन्होंने बताया, "राज्य भर में यह विख्यात हो रहा है कि जब से आप महामात्य पद पर नियुक्त हुए हैं, तब से राज्य की सेना में वृद्धि होनी आरम्भ हो गई है। सब बुद्धिमान व्यक्ति समझने लगे हैं कि राज्य ने उचित दिशा में करवट ली है।"

"सेना में वृद्धि ? कहाँ हो रही है ?"

"पूर्ण राज्य भर में। हमारे प्रतिष्ठानपुरी में ही इस समय तीस नये सैनिक शिविर लगे हैं। प्रत्येक शिविर में साठ से अस्सी तक युवक सैनिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और सुना है कि ऐसे शिविर गांव-गांव, नगर-नगर में खुल रहे हैं।'

"उनको सैनिक शिक्षा कौन दे रहा है ?"

"महाराज के सेनानायक।"

अरुणदत्त इसको सेनापति का षड्यंत्र समझता था। सेनापति ने एक बार कहा था कि वह सेना की सहायता से विप्लव खड़ा कर देगा। तो कदाचित् वह ही इसकी तैयारी कर रहा हो।

अपने सम्बन्धी के सामने तो अरुणदत्त ने चुप रहना ही उचित समझा, परन्तु सेनापति को सचेत करने के लिए उसने सबसे पहले उसी से बात करनी चाही।

उसने सेनापति को बुला भेजा और उसके आने पर पूछा, "विद्रुम

जी ! यह सेना का विस्तार कौन कर रहा है ?"

"कौन सी सेना का ?"

"महाराज की सेना का ?"

"तो महाराज कर रहे होंगे। मुझको इस बात का ज्ञान नहीं। मुझको तो यह बताया गया है कि महाराज ने पन्द्रह सहस्र स्वर्ण श्रेष्ठियों से ऋण लिया है। कदाचित् यह धन इसी उद्देश्य से लिया हो।"

"परन्तु मुझको तो सूचना मिली है कि सेनानायक इस विस्तार-कार्य में लगे हुए हैं।"

"सेना को पिछले छः मास से वेतन नहीं मिला। इस कारण बहुत से सेनानायक छुट्टी लेकर अपने-अपने गाँव को चले गये हैं। वे सेना-नायक तथा सैनिक क्या कर रहे हैं, मुझको पता नहीं।"

"सुना है धन भी खुले हाथों बाँटा जा रहा है।"

"मुझको तो अपना वेतन मिले एक वर्ष के लगभग हो चला है और मेरा अपना निर्वाह कठिनाई से हो रहा है। मैं सेना-निर्माण के लिए धन कहाँ से दे सकता हूँ ?"

इन युक्तियों से ब्रहदत्त को विश्वास हो गया कि सेनापति ऐसा कार्य नहीं कर सकता। कदाचित् यह महाराज का कार्य ही हो और बौद्धों से इस बात को छिपा रखने के लिए राज्यपरिषद् के किसी सदस्य को न बताया गया हो।

इस प्रकार अपने मन में निर्णय कर उसने नवीन सेना-निर्माण के समाचारों पर से आँखें मूँद लीं और कान बन्द कर लिए।

द्वितीय परिच्छेद

भगवती की सखी जगदम्बा स्थानेश्वर के एक विद्वान् निखिलेश्वर की पत्नी थी। अरुन्धति उनकी एकमात्र सन्तान थी।

जगदम्बा और भगवती दोनों ने महर्षि पतंजलि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। शिक्षा समाप्त हुई तो एक का विवाह पाटलिपुत्र के राज-पुरोहित के पुत्र अरुणदत्त से हो गया और दूसरी का स्थानेश्वर के विद्वान् पंडित निखिलेश्वर से।

पंडित निखिलेश्वर की स्थानेश्वर में भारी ख्याति थी। वे एक महाविद्यालय के अधिष्ठाता थे, जिसमें वेद, शास्त्र तथा उपनिषदों की ही मुख्यतः शिक्षा दी जाती थी। नगर के प्रायः गणमान्य परिवारों के बालक तथा बालिकाएँ इनके विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते थे और इस प्रकार पंडित निखिलेश्वर नगर के सब शिष्ट परिवारों से मान तथा प्रतिष्ठा पाते थे।

जब यवन-आक्रमण स्थानेश्वर पर हुआ तो वहाँ का आयुक्तक, जो बौद्ध उपासक था, अपने को असहाय समझ भाग खड़ा हुआ। नगर में नाम-मात्र की सेना थी, जो यवन-आक्रमण को रोकने में सर्वथा अशक्त थी।

इन सैनिकों ने नगर के प्राचीन द्वार पर खड़े होकर शत्रु की टिड्डी-दल सेना का विरोध किया और एक-एक कर सबने अपनी आहुति दे दी। पश्चात् यवनों का अधिकार स्थानेश्वर पर हो गया।

निखिलेश्वर को बौद्ध आयुक्तक की भीरुता पर अत्यन्त क्रोध आया। इससे वह देश की प्रवृत्ति को समझ गया। जब यवन-राज्य स्थानेश्वर पर भली-भाँति स्थापित हो गया तो उसने शिष्ट परिवारों में घूम-घूम कर

महर्षि पतंजलि का आश्रम साकेत और पाटलिपुत्र के मध्य एक साधारण सी बस्ती गोनर्द में था। यह आश्रम गोमती नदी के तट पर एक अति रमणीक स्थान पर बना था। आश्रम के दो विभाग थे। एक बालिकाओं की शिक्षा के लिए और दूसरा बालकों के लिए। दोनों पृथक्-पृथक् थे। महिला विभाग का प्रबन्ध महर्षि की धर्मपत्नी [illegible]-सिनी की देख-रेख में था। दोनों की शिक्षा भी पृथक्-पृथक् चलती थी। केवल उच्च शिक्षा बालक-बालिकाएँ एक साथ ग्रहण करती थीं, इस पर भी निवास भिन्न-भिन्न था।

यद्यपि आश्रम सामाजिक भाग-दौड़ से दूर और उससे असम्बद्ध था, इस पर भी संसार में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव आश्रमवासियों पर पड़ता रहता था और जब से पण्डित [illegible] की पत्नी जगदम्बा और लड़की अरुन्धति वहाँ आई थीं, यवन-आक्रमण चर्चा का मुख्य विषय रहता था।

इसके पश्चात् यवनों ने इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार किया और फिर हस्तिनापुर पर उनका राज्य स्थापित हो गया। इससे तो पश्चिम की दिशा से आ रही इन काली घटाओं पर चर्चा और भी अधिक तीव्र होनी आरम्भ हो गई थी। जब-जब भी अरुन्धति इन चर्चाओं में उपस्थित होती थी, वह चर्चा के पश्चात् एक ही प्रश्न किया करती थी कि इस भय के निवारण का कोई उपाय है क्या?

ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया और यवन-सेना समीप और समीप आती गई, अरुन्धति का प्रश्न एक महान् अर्थ रखने वाला होता गया।

अन्त में कौशाम्बी पर यवनों के अधिकार का समाचार पहुँचा। वहाँ के अत्याचार को सुन तो पूर्ण आश्रमवासियों के रोंगटे खड़े हो गए। जब-जब भी वहाँ पर कोई रोमांचकारी समाचार आता, आश्रमवासी परस्पर विचार-विमर्श करते और महर्षि की सेवा में उपस्थित हो, अपने संशयों के निवारण का प्रयत्न करते।

कौशाम्बी में यवनों द्वारा हत्याकांड का समाचार, जिस दिन मिला, उसी सायंकाल पूजा-हवन के उपरान्त पूर्ण आश्रमवासी महर्षि के चारों

रिक्त आपके पास क्या कोई सुझाव नहीं ?"

"देखो अरुन्धति ! अधीर होने से कुछ बनता नहीं। प्रत्येक कार्य के सफल होने में वातावरण में परिपक्वता आनी चाहिए। यह परिपक्वता है जन विचार की। बौद्ध धर्म में बहुत से अच्छे गुण थे, परन्तु उन गुणों की मिथ्या मीमांसा प्रजा में फैल गई और उसके दुष्परिणाम उत्पन्न होने में समय लगा। पश्चात् उन दुष्परिणामों की अनुभूति में समय लगना भी अनिवार्य था। इस अनुभूति में और भी अधिक समय लग रहा है, जाति में ब्राह्मणत्व के निस्तेज हो जाने से।

"पिछले पचास वर्ष में मेरे सहस्रों शिष्य इस आश्रमसे शिक्षा प्राप्त कर निकले हैं, परन्तु उनमें एक भी ऐसा तपस्वी और त्यागी शिष्य नहीं निकला, जो उच्चकोटि का विद्वान् होता और फिर अपनी पूर्ण विद्या तथा अनुभव को देश और समाज पर निछावर करने की क्षमता रखता।

"वास्तविक ब्राह्मण देश में एक भी होता तो देश में क्षत्रिय-वर्ग का निर्माण असम्भव नहीं था। क्षत्रिय-वर्ग उत्पन्न हो जाता तो विदेशीय आक्रमणों को निस्तेज करना कठिन नहीं था।"

"तो महर्षि जी का कहना है कि इस भारत भूमि में ब्राह्मण और क्षत्रिय निःशेष हो गये हैं ?"

"हाँ अरुन्धति ! मैं अपने जीवन भर में एक भी ऐसा ब्राह्मण बनाने में सफल नहीं हो सका। इस पर भी मैं साहस छोड़े बिना सतत इस प्रयत्न में संलग्न हूँ।"

"हम इसमें क्या करें ? हमारा मार्ग दर्शन महर्षि क्या करते हैं ?"

"मेरे आश्रमवासियों को सदैव तैयार रहना चाहिये, उस महापुरुष की सहायता करने के लिए। एक बात तो हम कर ही सकते हैं। वह है प्रजा में उचित दिशा में विचार करने का अभ्यास डालना। बौद्ध धर्म के पंचशील की मिथ्या मीमांसा प्रजा के मन से निकाल दें। इस प्रकार प्रजा में नेता की सहायता के लिए भावना उत्पन्न होगी। दूसरे जब भी कोई नेता इस दिशा में कार्य करने के लिए युद्ध क्षेत्र में प्रवतीर्ण

हां, हमको उसके कार्य में सहायक होना चाहिए।"

२

महर्षि के इस कथन से सन्तोष किसी को भी नहीं हुआ। इस पर भी प्रत्येक आश्रमवासी यह समझने लगा था कि इस भीड़ के समय उसका भी कुछ कर्तव्य है। एक बात सब समझ गये थे कि प्रजा के विचारों में परिवर्तन लाना प्रत्येक ब्राह्मण का कर्तव्य है।

आश्रम में कुछ वृद्धजन भी रहते थे। उनका कार्य आश्रम में एक सहस्र से ऊपर छात्रों के भोजन-वस्त्रादि का प्रबन्ध करना था। वे तो तुरन्त ही आश्रम छोड़, प्रजा में फैल जाना चाहते थे और जन साधारण में देश और समाज के प्रति कर्तव्य की भावना का प्रसार करना चाहते थे, परन्तु महर्षि उनको स्वीकृति नहीं देते थे।

इस पर अरुन्धति का प्रश्न था, "क्या महर्षि हम सब को खड्ग धारण कर अपने देश और समाज की रक्षा करने के लिए तैयार हो जाने को कहते हैं?"

"हां, यह भी एक कार्य है, परन्तु इसके लिए नेतृत्व की आवश्यकता है। जन-विचारों को प्रेरणा देना उससे भी अधिक आवश्यक और प्रथम कार्य है।"

इसके पश्चात् विद्यार्थी गण जब-तब भी उनको अवसर मिलता, परस्पर विचार-विमर्श करते। प्रातः-साय पठन-पाठन-काल से पूर्व तथा पश्चात् अध्यापकों तथा विद्यार्थियों में कार्य की दिशा पर विचार होता रहता था।

जब-जब भी अरुन्धति ऐसी सभाओं में होती, वह उग्र विचारों की पोषक बनी रहती थी। वह कहती थी कि देश के स्वतन्त्र और निर्भय होने में दो बाधाएं हैं। एक बौद्ध मिथ्या जीवन मीमांसा और दूसरा राज्य, जो अपना कर्तव्य पालन नहीं कर रहा। इन दोनों को देश से निर्मूल कर देना चाहिए।'

उसके कथन पर प्रश्न यही उठा करता था कि किस प्रकार उन्मूलन किया जा सकता है और फिर कौन करे?

इसके लिए अवसर आया। एक दिन अरुन्धति अपनी कुटिया के बाहर पुष्प-वाटिका में पौदों को जल से सींच रही थी। उस समय आश्रम के बाहर, कुछ अन्तर पर मैदान में एक जन-समूह का घोर नाद सुनाई दिया।

आश्रम की शान्ति में यह एक विलक्षण विघ्न था। ऐसा पहले कभी सुनाई नहीं दिया था। अतएव यह सब सुनने वालों का ध्यान आकर्षित करने वाला सिद्ध हुआ। अरुन्धति भी जल-सिंचन छोड़, सीधी हो सुनने लगी कि यह कैसा शब्द है। जब यह नाद बार-बार आने लगा तो कलश, जिसमें जल भर कर वह सींच रही थी, एक ओर भूमि पर रख, एक उच्च स्थान पर खड़ी हो, आश्रम की प्राचीर के बाहर उस ओर देखने लगी, जिधर से यह नाद बार-बार उठता सुनाई पड़ रहा था।

उसने देखा कि आश्रम की प्राचीर से कुछ अन्तर पर बहुत से युवक एकत्रित हैं और एक ऊँचे स्थान पर एक युवक खड़ा, दूसरों को कुछ बता रहा है। एकत्रित भीड़ बार-बार किसी की जय बोल रही है। अरुन्धति समझ नहीं सकी। उसके मन में इसका अभिप्राय जानने की इच्छा प्रबल हुई। वह स्वयं बाहर जाकर जानना चाहती थी कि यह क्या है, परन्तु महर्षि की स्वीकृति के बिना यह संभव नहीं था। अतएव वह महिला कक्ष में से निकल महर्षि की कुटिया की ओर चल पड़ी। वहाँ पर पहिले ही कई विद्यार्थी महर्षि को घेरे हुए खड़े थे और सब आश्रम के बाहर उत्सुकता पूर्वक देख रहे थे। महर्षि ने अरुन्धति को उस ओर आते देख कह दिया, "लो, आश्रम की दुर्गा भवानी भी आ गयी है।"

इस पर सब हँसने लगे।

अरुन्धति जानती थी कि महर्षि उसको माँ-दुर्गा कह कर चिढ़ाया करते हैं और आश्रमवासी महर्षि के इस संबोधन पर हँसा करते हैं। वह इस प्रकार के संबोधन किए जाने पर लज्जा से लाल हो जाया करती थी। इस पर भी अपने में गर्व अनुभव करती थी और विचार करती थी कि अपनी शिक्षा से अवकाश पाकर वह महर्षि के इस सम्बोधन को सत्य सिद्ध करके दिखायेगी।

जब वह महर्षि के पास पहुंची तो विद्यार्थीगण उसके लिये मार्ग छोड़ एक ओर हट गये। अरुन्धति महर्षि के सामने जा खड़ी हुई और कहने लगी, "भगवन! इस अभूतपूर्व नाद का कारण जानने की आवश्यकता अनुभव कर आई हूँ।"

"वह हम भी अनुभव कर रहे हैं।"

"तो मैं जाऊँ देखने के लिये? आश्रम से पश्चिम की ओर भारी भीड़ एकत्रित है और एक युवक उनको कुछ सम्बोधन कर रहा है।"

"यह हमने भी देखा है; परन्तु अरुन्धति! वह देखो, शतपाद वहाँ का समाचार ला रहा है।"

एक हृष्ट-पुष्ट युवक लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ आश्रम के बाहर से उस ओर आ रहा था। यह शतपाद था। महर्षि के सम्मुख आकर खड़ा हो, हाथ जोड़ उसने निवेदन किया, "भगवन्! गाँव के लगभग दो-सौ युवक वहाँ एकत्रित हैं और एक ब्राह्मण कुमार ऊँचे स्थान पर खड़ा हो उनको कह रहा है कि वे नव-सेना में भरती हो जायें। उसका कहना है कि महाराज को एक बहुत बड़ी देश-भक्तों की सेना की आवश्यकता है। वे विदेशीय तथा विधर्मियों को, जो आक्रमण कर देश के बहुत बड़े भाग पर अधिकार जमा बैठे हैं, देश से बाहर कर देना चाहते हैं। अतएव यह प्रत्येक युवक का कर्त्तव्य है कि अपने आपको महाराज की सेना में भरती होने के लिये उपस्थित कर दे।

"भगवन्! उस युवक ने यवनों के कौशाम्बी में किये अत्याचारों का भीषण चित्रण किया, जिसको सुनकर युवकों की भृकुटि चढ़ गई और वे महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार कर उठे। अब सब युवक सेना में भरती होने के लिए एक सेना-नायक को अपना-अपना नाम लिखा रहे हैं।"

महर्षि इस सूचना पर कुछ विचार करने लगे। इस समय शतपाद ने पुनः कहना आरम्भ किया, "भगवन्! उस युवक का यह भी कहना है कि महाराज के पास नवीन सेना को वेतन में देने के लिए धन नहीं है, इस कारण इस नवीन सेना को कोई वेतन नहीं मिलेगा। जब तक वे [illegible]

प्राप्त करेंगे, अपना निजी जीविकोपार्जन का कार्य करते हुए करेंगे। जब वे युद्ध-शिविर में जायेंगे, उनको गणवेश तथा भोजन मिलेगा। सब युवक इसको अपने देश तथा धर्म का कार्य समझ, इसमें अपना तन-मन लगा दें।"

अब महर्षि ने पूछ लिया, "कितने युवक भरती हुए हैं ?"

"भगवन् ! प्रायः सभी युवक इसमें सम्मिलित होना चाहते हैं।"

"वह ब्राह्मणकुमार राज्य में क्या पदवी रखता है ?"

"मैंने पूछा था। यह कोई नहीं जानता।"

"शंखपाद ! तुरन्त जाओ और उस ब्राह्मणकुमार को हमारा परिचय देकर हमारी ओर से निमंत्रण दो। वह अवश्य कोई विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति है।"

: ३ :

गाँव के लोगों को एकत्रित किया था एक सेनानायक ने और उनको प्रेरणा देने वाला था पुष्यमित्र। पुष्यमित्र गाँव-गाँव में घूम-घूम कर नव-सेना में भरती होने की प्रेरणा दे रहा था। इसी अर्थ यह गोनर्द में आया था।

गोनर्द के युवक सेना-नायक को अपना नाम आदि लिखा रहे थे कि शंखपाद पुनः उस समूह में जा पहुँचा। इस समय तक एक सौ के लगभग युवक नाम लिखा चुके थे। शेष कार्य पुष्यमित्र, सेना-नायक को सौंप, वहाँ से विदा होने लगा तो शंखपाद ने आगे बढ़कर अपना आशय वर्णन कर दिया। उसने कहा, "ब्राह्मण देवता ! मैं महर्षि पतंजलि के आश्रम से महर्षि जी का सन्देश लेकर आया हूँ। महर्षि जी आपको आश्रम में पधारने का निमन्त्रण दे रहे हैं।"

"महर्षि पतंजलि ! कहाँ है उनका आश्रम ?"

"वह है। आइये, मैं मार्ग दर्शन कराता हूँ।"

पुष्यमित्र महर्षि जी के विषय में जानता था। उसकी माँ भगवती इसी आश्रम में शिक्षा पा चुकी थी। अतएव वह महर्षि जी के दर्शन करने के लिए शंखपाद के साथ चल पड़ा।

आश्रमवासी एक भारी संख्या में महर्षि सहित पुष्यमित्र की प्रतीक्षा कर रहे थे। पुष्यमित्र पहुँचा तो महर्षि जी को देख, वह उनके चरण स्पर्श करने लगा। चरण स्पर्श कर वह हाथ जोड़ खड़ा हो गया।

महर्षि ने पुष्यमित्र को सिर से पाँव तक देखा और उसके ओजस्वी मुख को देखकर बहुत प्रभावित हुए। पश्चात् उन्होंने पूछा, "वत्स ! तुम कौन हो ? मैं अस्सी वर्ष की आयु का हो गया हूँ, परन्तु इस जीवन मे ऐसा चमत्कार करने वाला मैंने कोई व्यक्ति नहीं देखा, जो राज्य की सेना में अवैतनिक सेनानी भरती करा सके।"

"भगवन् ! मैं राजपुरोहित पंडित अरुणदत्त और आपकी शिष्या देवी भगवती का पुत्र पुष्यमित्र हूँ। यह कार्य मैं स्वेच्छा से बिना किसी राजा अथवा राज्याधिकारी की आज्ञा के कर रहा हूँ।

"मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शीघ्र ही मगध राज्य को यवनों से भीषण युद्ध करना पड़ेगा। उस समय राज्य को एक सुदृढ़ सेना की आवश्यकता पड़ेगी। जैसे आग लगने पर कुआँ खोदना मूर्खता है, इसी प्रकार युद्ध आरम्भ होने पर सेना तैयार करना भारी मूर्खता होगी। अतएव मैं यह आयोजन सैनिकों तथा सेट्ठी-वर्ग के लोगों की सहायता से चला रहा हूँ।

"अभी तक हम एक लक्ष के लगभग सैनिक भरती कर चुके हैं। हमारी योजना दो लक्ष सैनिक तैयार करने की है। इनके लिए गणवेश तथा शस्त्रास्त्र बनवाये जा रहे हैं। इस सेना मे शिक्षा देने वाले सैनिक अवैतनिक कार्य कर रहे हैं और भरती हुए युवक बिना वेतन के अपनी सेवाएँ दे रहे हैं।

"जब यह सेना शिक्षित तथा शस्त्रादि से सुसज्जित हो जायगी, हम महाराज वृहद्रथ की सेवा मे अर्पण कर देंगे और उनसे निवेदन करेंगे कि वे देश का विदेशियों से उद्धार करें।"

"तो अभी तक इस सेना के निर्माण के लिये किसी प्रकार की राजाज्ञा नहीं है ?"

प्राप्त करेंगे, अपना निजी जीविकोपार्जन का कार्य करते हुए करेंगे। जब वे युद्ध-शिविर में जायेंगे, उनको गणवेश तथा भोजन मिलेगा। सब युवक इसको अपने देश तथा धर्म का कार्य समझ, इसमें अपना तन-मन लगादें।"

अब महर्षि ने पूछ लिया, "कितने युवक भरती हुए हैं ?"

"भगवन् ! प्रायः सभी युवक इसमें सम्मिलित होना चाहते हैं।"

"वह ब्राह्मणकुमार राज्य में क्या पदवी रखता है ?"

"मैंने पूछा था। यह कोई नहीं जानता।"

"शंखपाद ! तुरन्त जाओ और उस ब्राह्मणकुमार को हमारा परिचय देकर हमारी ओर से निमंत्रण दो। वह अवश्य कोई विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति है।"

: ३ :

गाँव के लोगों को एकत्रित किया था एक सेनानायक ने और उनको प्रेरणा देने वाला था पुष्यमित्र। पुष्यमित्र गाँव-गाँव में घूम-घूम कर नव-सेना में भरती होने की प्रेरणा दे रहा था। इसी अर्थ यह गोनर्द में आया था।

गोनर्द के युवक सेना-नायक को अपना नाम आदि लिखा रहे थे कि शंखपाद पुनः उस समूह में जा पहुँचा। इस समय तक एक सौ के लगभग युवक नाम लिखा चुके थे। शेष कार्य पुष्यमित्र, सेना-नायक को सौंप, वहाँ से विदा होने लगा तो शंखपाद ने आगे बढ़कर अपना आशय वर्णन कर दिया। उसने कहा, "ब्राह्मण देवता ! मैं महर्षि पतंजलि के आश्रम से महर्षि जी का सन्देश लेकर आया हूँ। महर्षि जी आपको आश्रम में पधारने का निमन्त्रण दे रहे हैं।"

"महर्षि पतंजलि ! कहाँ है उनका आश्रम ?"

"वह है। आइये, मैं मार्ग दर्शन कराता हूँ।"

पुष्यमित्र महर्षि जी के विषय में जानता था। उसकी माँ भगवती इसी आश्रम में शिक्षा पा चुकी थी। अतएव वह महर्षि जी के दर्शन करने के लिए शंखपाद के साथ चल पड़ा।

आश्रमवासी एक भारी संख्या में महर्षि सहित पुष्यमित्र की प्रतीक्षा कर रहे थे। पुष्यमित्र पहुँचा तो महर्षि जी को देख, वह उनके चरण स्पर्श करने लगा। चरण स्पर्श कर वह हाथ जोड़ खड़ा हो गया।

महर्षि ने पुष्यमित्र को सिर से पाँव तक देखा और उसके ओजस्वी मुख को देखकर बहुत प्रभावित हुए। पश्चात् उन्होंने पूछा, "वत्स! तुम कौन हो ? मैं अस्सी वर्ष की आयु का हो गया हूँ, परन्तु इस जीवन में ऐसा चमत्कार करने वाला मैंने कोई व्यक्ति नहीं देखा, जो राज्य की सेना मे अवैतनिक सेनानी भरती करा सके।"

"भगवन्! मैं राजपुरोहित पंडित अरुणदत्त और आपकी शिष्या देवी भगवती का पुत्र पुष्यमित्र हूँ। यह कार्य मैं स्वेच्छा से बिना किसी राजा अथवा राज्याधिकारी की आज्ञा के कर रहा हूँ।

"मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शीघ्र ही मगध राज्य को यवनों से भीषण युद्ध करना पड़ेगा। उस समय राज्य को एक सुदृढ़ सेना की आवश्यकता पड़ेगी। जैसे आग लगने पर कुआँ खोदना मूर्खता है, इसी प्रकार युद्ध आरम्भ होने पर सेना तैयार करना भारी मूर्खता होगी। अतएव मैं यह आयोजन सैनिकों तथा सेट्ठी-वर्ग के लोगों की सहायता से चला रहा हूँ।

"अभी तक हम एक लक्ष के लगभग सैनिक भरती कर चुके हैं। हमारी योजना दो लक्ष सैनिक तैयार करने की है। इनके लिए गणवेश तथा शस्त्रास्त्र बनवाये जा रहे हैं। इस सेना मे शिक्षा देने वाले सैनिक अवैतनिक कार्य कर रहे हैं और भरती हुए युवक बिना वेतन के अपनी सेवाएँ दे रहे हैं।

"जब यह सेना शिक्षित तथा शस्त्रादि मे सुसज्जित हो जायगी, हम महाराज बृहद्रथ की सेवा मे अर्पण कर देंगे और उनसे निवेदन करेंगे कि वे देश का विदेशियों से उद्धार करें।"

"तो अभी तक इस सेना के निर्माण के लिये किसी प्रकार की राजाज्ञा नहीं है ?"

"नहीं भगवन् ! इसके प्राप्त होने की न तो आशा है और न आवश्यकता ।"

महर्षि पतंजलि अवाक् पुष्यमित्र का मुख देखने लगे । पश्चात् कुछ विचार कर कहने लगे, "वत्स ! तुम हमारी शिष्या भगवती के सुपुत्र हो । हमारा स्नेह तुम पर उमड़ रहा है । इस कारण जो कुछ तुम कर रहे हो, उसकी अपने मन पर प्रतिक्रिया बता देना हम आवश्यक समझते हैं।

"यह तुमको ज्ञात होना चाहिए कि किसी भी राज्य में राजाज्ञा के बिना सेना निर्माण करना राज्यद्रोह है ।"

"भगवन् ! राज्यद्रोह नहीं, राजद्रोह हो सकता है । साधारण रूप में राजा राज्य का प्रतीक होता है, परन्तु कभी राजा स्वयं राज्यद्रोही हो जाय तो राज्य का पक्ष, राजा का विरोध कर ही लिया जा सकता है ?"

"परन्तु तुम्हारा कार्य राज्य के पक्ष में है, इसका प्रमाण देना होगा ?"

"एक प्रमाण तो यह है ही कि राज्य के एक लक्ष से ऊपर युवक सेना में स्वेच्छा से भरती हो चुके हैं । राज्य का धनी वर्ग अभी तक दस लक्ष-स्वर्ण मुद्रा इस कार्य के लिए एकत्रित कर चुका है । अभी और एकत्रित हो रहा है । क्या यह एक स्पष्ट प्रमाण नहीं कि राज्य का पक्ष यही है जो मैं कर रहा हूं ?"

महर्षि पुष्यमित्र की युक्ति से प्रभावित हुआ । इस पर भी उसने कहा, "तुम युक्ति तो तार्किकों की भांति करते हो । तुम निर्भीकता में ब्राह्मण हो । तुम शौर्यता में क्षत्रिय हो । तुम संगठन करने तथा परिश्रम करने में वैश्य और शूद्र के समान हो । अतएव तुम पूर्ण समाज के प्रतीक हो । मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि तुम अपने में राजा बनने के पूर्ण लक्षण रखते हो । परन्तु राजनीति में एक रहस्य है । वह है सेना और अवसर । देखो, तुमने राज्य का पक्ष लिया है और तुम्हारे कथनानुसार ही राजा राज्य का विरोधी है । इस कारण सेना को राज्य के निमित्त निर्माण करो, राजा के नहीं ।

"यदि जैसा मुझको सूचित किया गया है, तुम महाराज बृहद्रथ की

जय-जयकार करवा रहे हो, तो विरोध के समय यह सेना राजा का पक्ष लेगी और तुम्हारा ही गला काट देगी। सेना को राजभक्त न बना कर राज्यभक्त बनाओ। तब उस विरोध के अवसर पर यह सेना तुमको राज्याधिकारी बना देगी।"

पुष्यमित्र समस्या के इस नवीन पहलू को सुन गम्भीर हो गया। उसने बहुत विचारोपरान्त कहा, "इस समय राजा को छोड़ा नहीं जा सकता। मैं यत्न करूँगा कि परिस्थिति पर हमारा अधिकार बना रहे।"

इस पर महर्षि ने पुष्यमित्र को अपनी कुटिया में प्रवेश करने का निमन्त्रण दिया और उसका फल फूल से सत्कार किया।

विदा लेते समय महर्षि ने उसको आशीर्वाद दिया, "तुम सम्राट के पूर्ण लक्षणों से युक्त हो। भगवान तुम्हारा पथ प्रदर्शन करें और तुमको सुबुद्धि दें।"

पुष्यमित्र वहाँ से विदा हुआ तो आश्रमवासी इस आंदोलन को समझने के लिए महर्षि से प्रश्न पूछने लगे। इनमें सबसे आगे बृहस्पति तथा उसकी माता जगदम्बा थी। जगदम्बा मन में विचार करती थी कि क्या उसके साथ हुए अन्याय का प्रतिकार लेने में यह युवक समर्थ है?

आन्दोलन के विषय में महर्षि ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा, "यह आन्दोलन सर्वथा उचित और प्रभावशाली होगा। परन्तु देश में इस आन्दोलन के विरोधी भी होंगे। उनको इसका ज्ञान हुए बिना नहीं रह सकता। जब तक तो यह आन्दोलन देहातों में फैला हुआ है, इसका विरोध सम्भव नहीं। साथ ही देश भर में फैला हुआ यह आन्दोलन कुछ कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता। क्योंकि यह आन्दोलन सेना का है और सेना जब तक एक स्थान पर एकत्रित न हो, वह कुछ भी प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती।

"सेना के एकत्रित होने पर भी सफलता इस बात पर निर्भर होगी कि यह किसके आदेश पर कार्य करती है। यह भी सम्भव है कि एकत्रित सेना उद्देश्य के विरोधियों को ही अपना नेता मान बैठे और

उद्देश्य की पूर्ति के स्थान उद्देश्य का विरोध करने वाली वन जाय।

"इस कारण मैं समझता हूँ कि इस आन्दोलन को गलत व्यक्तियों के नेतृत्व में न जाने देने का प्रयत्न अभी से होना चाहिए। इसके लिये मैं अपनी एक योजना बनाना चाहता हूँ।

"मैं इस आश्रम के युवकों को कहूँगा कि वे भी सैनिकों के रूप में इस नवीन सेना में भरती हो जायें। सैनिक शिक्षा प्राप्त कर वे दो-दो चार-चार की संख्या में प्रत्येक सैनिक-शिविर में प्रवेश ले लें और उन शिविरों में शिक्षा प्राप्त कर रहे सैनिकों के विचारों को उचित दिशा दें।

"हमारे आश्रम के युवक पढ़े-लिखे विद्वान हैं और वे अपनी योग्यता के कारण अवश्य इस सेना में प्रतिष्ठित स्थान पा जावेंगे और फिर इस आन्दोलन को उचित दिशा का ज्ञान करा सकेंगे।"

: ४ :

पुष्यमित्र को कार्यारम्भ किये एक वर्ष से ऊपर हो चुका था। इस कार्य से पूर्ण राज्य-भर में चहल-पहल उत्पन्न हो गई थी। इस पर भी इस चहल-पहल की स्पष्ट सूचना राज्य-परिषद् को नहीं थी। एक तो राज्य का गुप्तचर विभाग सर्वथा अयोग्य था। दूसरा राज्य का महामात्य अभी तक अरुणदत्त था और जब-जब भी सैनिक-शिविरों की सूचना आती, वह अपने वचन के अनुसार सूचना सेनापति को भेज देता और सेनापति इसको एक साधारण-सी बात कह कर, इसका उल्लेख राज्य परिषद् में करने से मना कर देता।

महामात्य चन्द्रभानु का अभी तक कोई समाचार कौशाम्बी से नहीं मिला था। गुप्तचर, जो उसका समाचार लेने कौशाम्बी गये थे, लौटे नहीं थे। जो अश्वारोही उनके साथ गये थे, मार्ग में सूचना की प्रतीक्षा करते-करते थक कर वापस चले आये थे।

चन्द्रभानु की अनुपस्थिति में अरुणदत्त कोई झगड़े की बात करना नहीं चाहता था और उसके लौट आने की किसी भी दिन आशा कर रहा था।

पुष्यमित्र घर से कई-कई दिन तक अनुपस्थित रहता था। प्रायः जब कभी वह आता तो सायंकाल आकर प्रातः सूर्य निकलने से पहले ही विदा हो जाता। कभी माँ पूछ लेती, "बेटा कहाँ रहते हो आजकल ?"

"माँ !" पुष्यमित्र का उत्तर होता, "धर्म की स्थापना के लिए यत्न कर रहा हूँ।"

"घूम-घूम कर धर्म की स्थापना कैसे करोगे ?"

"अन्न-अनाज तो देहातों में उत्पन्न होता है। मैं उन खेतों में बीज के साथ धर्म का बीज भी डाल रहा हूँ। समय पर फसल के साथ धर्म भी पर्याप्त मात्रा में मिला होगा और जो कोई भी उस अन्न का भोग करेगा, वह धर्ममय होकर धर्म की स्थापना में सहायक हो जावेगा।"

भगवती इस बुझारत का अर्थ समझने में असक्त थी। वह कहती, "माँ को पागल बना रहे हो बेटा ?"

"नहीं माँ ! भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है, जैसा अन्न खाया जाता है वैसा ही मन बनता है और उसके अनुकूल मनुष्य के कर्म हो जाते हैं। इसीलिए देहात के खेतों में धर्म का बीज रोपने जाया करता हूँ।"

एक दिन वह बहुत रात्रि व्यतीत हुये आया। घर का द्वार बंद था। उसने द्वार खटखटाया तो उसने देखा कि द्वार खोलने वाली एक युवती है। पुष्यमित्र उसे देख विस्मय में उसका मुख देखता रह गया।

युवती द्वार खोल, एक ओर हट कर खड़ी हो गई, जिससे पुष्यमित्र भीतर आ सके; परन्तु पुष्यमित्र एक अपरिचित युवती को वहाँ खड़े देख यह समझा कि अँधेरे में वह किसी अन्य के घर के बाहर आ खड़ा हुआ है। युवती हाथ में दीपक लिये मार्ग दिखा रही थी। पुष्यमित्र घर के बाहर ही पुनः ध्यान से देखना चाहता था कि वह अपने घर के बाहर ही खड़ा है न।

इसी समय उसकी माँ द्वार पर आ गई। पुष्यमित्र ने माँ को देखा तो समझ गया कि घर तो अपना है, परन्तु उस युवती के विषय में, उसकी उत्सुकता बनी हुई थी। उसने पूछ लिया, "माँ ! यह कौन है ?"

"तो बिना जाने भीतर नहीं आओगे ?"

यह युवती अरुन्धती थी और दो दिन से वह अपनी माँ की सखी भगवती के घर पर आकर ठहरी हुई थी। पुष्यमित्र को भीतर आने में संकोच करते देख, वह कहने लगी, "मौसी ! मैं अपने आगार में बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी कि द्वार खटखटाने का शब्द हुआ। मैं दीपक लेकर देखने चली आई कि कौन आया है तो द्वार खोलने पर इनको खड़े देखा। ये आपके सुपुत्र ही हैं न ?"

इस प्रश्न के साथ अरुन्धती ने पुष्यमित्र की ओर मुस्कराकर देखा। इससे पुष्यमित्र समझा कि वह उसको जानती है और केवल व्यंग में यह कह रही है।

माँ ने पुष्यमित्र का परिचय कराने के स्थान अरुन्धति का परिचय उसको कराना उचित समझा। उसने कहा, "यह लड़की महर्षि पतंजलि के आश्रम से आई है ? कहती है कि महर्षि जी ने तुम्हारे लिये एक विशेष सन्देश भेजा है।"

"ओह ! परन्तु देवी !" पुष्यमित्र ने अरुन्धति के मुख पर देखते हुए पूछ लिया, "क्या महर्षि जी को कोई अन्य दूत नहीं मिला, जो एक सुकुमारी कन्या को इतनी लम्बी यात्रा पर भेज दिया है ?"

"इस प्रश्न का उत्तर तो महर्षि जी ही दे सकते हैं। मैं तो संदेश देने आई हूँ और इस विषय में ही कुछ कह सकती हूँ।"

"तो देवी बतायें कि महर्षि जी की क्या आज्ञा है ?"

"इस समय ? यहाँ द्वार पर खड़े होकर ? आपने शिष्टचार सीखा प्रतीत नहीं होता ?" अरुन्धति ने मुस्कराते हुए कहा।

माँ हँस पड़ी और हँसते हुए बोली, "बेटा ! भीतर चलो न। यह दो दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।"

पुष्यमित्र इस प्रकार डाँटे जाने से लज्जा अनुभव करने लगा और सिर झुकाये हुए भीतर चला आया। चलते हुए अपनी सफाई देने के लिए उसने कहा, "मुझको प्रातःकाल ही यहाँ से चले जाना है।"

"वह आप नहीं जा सकेंगे।" अरुन्धति ने कह दिया।

"क्यों ?"

"महर्षिजी की आज्ञा है।"

"क्या उनकी आज्ञा माननी ही होगी ?"

"न मानने से भारी अनर्थ होने की सम्भावना है।"

पुष्यमित्र इस कथन को सुनकर गम्भीर विचार में डूब गया। इस पर अरुन्धति ने पुष्यमित्र से विदा लेने के लिए नमस्कार करते हुए कहा, "अब प्रातःकाल अल्पाहार के समय आपके दर्शन होंगे।"

पुष्यमित्र गम्भीर विचार में मग्न, आश्चर्यवत्, उसको देखता रह गया। और वह अपने आगार में चली गई। माँ पुष्यमित्र को अपने आगार में ले गई। पिताजी वहाँ नहीं थे। पुष्यमित्र ने पूछ लिया, "पिताजी कहाँ हैं ?"

"आज राज्य-परिषद् की विशेष बैठक हो रही है। वे वहाँ गये हुए हैं। अभी तक बैठक समाप्त हुई प्रतीत नहीं होती।"

"अच्छा माँ! मैं अब विश्राम करूँगा। भोजन मैंने अब कर लिया है। इस समय तो बहुत ही थका हुआ अनुभव कर रहा हूँ। प्रातःकाल का चला हुआ बीस कोस की यात्रा करके आ रहा हूँ।"

"यह क्या हो रहा है बेटा! तुमको घर पर आकर आराम करने का भी अवकाश नहीं मिलता ?"

"माँ! बताया तो था कि राज्य के गाँवों में धर्म का बीज बो रहा हूँ।"

"मुझे मत बनाओ बेटा! इस लड़की ने मुझे कुछ और ही बताया है।"

"क्या बताया है ?"

"कहती थी कि इस राज्य में विप्लव होने वाला है और वह तुम्हारे करने से ही हो रहा है।"

"माँ! ठीक ही कहा है उसने। मैंने भी यही कहा है। राज्य में अधर्माचरण व्याप्त हो रहा है। मैंने धर्म के वृक्ष भारी संख्या में लगा दिए हैं। उन वृक्षों के फल जब यहाँ आवेंगे तो अधर्म का लोप हो धर्म की

"तो विना जाने भीतर नहीं आओगे ?"

यह युवती अरुन्धती थी और दो दिन से वह अपनी माँ की सखी भगवती के घर पर आकर ठहरी हुई थी। पुष्यमित्र को भीतर आने में संकोच करते देख, वह कहने लगी, "मौसी ! मैं अपने आगार में वैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी कि द्वार खटखटाने का शब्द हुआ। मैं दीपक लेकर देखने चली आई कि कौन आया है तो द्वार खोलने पर इनको खड़े देखा। ये आपके सुपुत्र ही हैं न ?"

इस प्रश्न के साथ अरुन्धती ने पुष्यमित्र की ओर मुस्कराकर देखा। इससे पुष्यमित्र समझा कि वह उसको जानती है और केवल व्यंग में यह कह रही है।

माँ ने पुष्यमित्र का परिचय कराने के स्थान अरुन्धति का परिचय उसको कराना उचित समझा। उसने कहा, "यह लड़की महर्षि पतं-जलि के आश्रम से आई है ? कहती है कि महर्षि जी ने तुम्हारे लिये एक विशेष सन्देश भेजा है।"

"ओह ! परन्तु देवी !" पुष्यमित्र ने अरुन्धति के मुख पर देखते हुए पूछ लिया, "क्या महर्षि जी को कोई अन्य दूत नहीं मिला, जो एक सुकुमारी कन्या को इतनी लम्बी यात्रा पर भेज दिया है ?"

"इस प्रश्न का उत्तर तो महर्षि जी ही दे सकते हैं। मैं तो संदेश देने आई हूँ और इस विषय में ही कुछ कह सकती हूँ।"

"तो देवी बतायें कि महर्षि जी की क्या आज्ञा है ?"

"इस समय ? यहाँ द्वार पर खड़े होकर ? आपने शिष्टचार सीखा प्रतीत नहीं होता ?" अरुन्धति ने मुस्कराते हुए कहा।

माँ हँस पड़ी और हँसते हुए वोली, "वेटा ! भीतर चलो न। यह दो दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।"

पुष्यमित्र इस प्रकार डाँटे जाने से लज्जा अनुभव करने लगा और सिर झुकाये हुए भीतर चला आया। चलते हुए अपनी सफाई देने के लिए उसने कहा, "मुझको प्रातःकाल ही यहाँ से चले जाना है।"

"वह आप नहीं जा सकेंगे।" अरुन्धति ने कह दिया।

"क्यों ?"

"महर्षिजी की आज्ञा है।"

"क्या उनकी आज्ञा माननी ही होगी ?"

"न मानने से भारी अनर्थ होने की सम्भावना है।"

पुष्यमित्र इस कथन को सुनकर गम्भीर विचार में डूब गया। इस पर अरुन्धति ने पुष्यमित्र से विदा लेने के लिए नमस्कार करते हुए कहा, "अब प्रातःकाल अल्पाहार के समय आपके दर्शन होंगे।"

पुष्यमित्र गम्भीर विचार में मग्न, आश्चर्यवत्, उसको देखता रह गया। और वह अपने आगार में चली गई। माँ पुष्यमित्र को अपने आगार में ले गई। पिताजी वहाँ नहीं थे। पुष्यमित्र ने पूछ लिया, "पिताजी कहाँ है ?"

"आज राज्य-परिषद् की विशेष बैठक हो रही है। वे वहाँ गये हुए है। अभी तक बैठक समाप्त हुई प्रतीत नहीं होती।"

"अच्छा माँ ! मैं अब विश्राम करूँगा। भोजन मैंने अब कर लिया है। इस समय तो बहुत ही थका हुआ अनुभव कर रहा हूँ। प्रातःकाल का चला हुआ बीस कोस की यात्रा करके आ रहा हूँ।"

"यह क्या हो रहा है बेटा ! तुमको घर पर आकर आराम करने का भी अवकाश नहीं मिलता ?"

"माँ ! बताया तो था कि राज्य के गाँवों में धर्म का बीज बो रहा हूँ।"

"मुझे मत बनाओ बेटा ! इस लड़की ने मुझे कुछ और ही बताया है।"

"क्या बताया है ?"

"कहती थी कि इस राज्य में विप्लव होने वाला है और यह तुम्हारे करने से ही हो रहा है।"

"माँ ! ठीक ही कहा है उसने। मैंने भी यही कहा है। राज्य में अधर्माचरण व्याप्त हो रहा है। मैंने धर्म के वृक्ष भारी संख्या में लगा दिए हैं। उन वृक्षों के फल जब यहाँ आवेंगे तो अधर्म का लोप हो धर्म की

थापना होगी। इसी को तो विप्लव कहते हैं।"

पुष्यमित्र अपने आगार में जाने ही वाला था कि उसके पिता आ गए। पुष्यमित्र ने अपने पिता के चरणस्पर्श किए तो पिता ने उसको पुनः भीतर बुला लिया और कहा, "तुमने सुना है क्या कि महामात्य चन्द्रभानु की कौशाम्बी में हत्या कर दी गई है?"

"किसने की है?"

"महामात्य के साथ गये सब श्रावक सूली पर चढ़ा दिये गए हैं। गुप्तचर, जो उनका समाचार लेने भेजे गए थे, सब बंदी बना लिये गए थे। उनमें से एक भागने में सफल हो गया था। वह यहाँ आया है और उसी ने यह वृत्तान्त बताया है।"

"अब क्या होगा पिता जी!"

"इसी बात पर विचार करने के लिए राज्य-परिषद् की बैठक बुलाई गई थी। सदैव की भाँति इसमें कुछ निश्चय नहीं हो सका। महाप्रभु और उनके साथी कहते हैं कि शान्तिमय ढंग से यवनों को समझाने का प्रयत्न करना चाहिए, जब कि सेनापति कहता था कि युद्ध की घोषणा कर दी जाय।"

"महाप्रभु कैसे समझावेंगे?"

"उनका कहना है कि यदि यवन-सेना आक्रमण करे तो लाखों की संख्या में लोग सेना के मार्ग पर लेट जावें और उनको आगे बढ़ने न दें। उनमें सोया हुआ मानव जाग उठेगा और वे आक्रमण करनेसे रुक जावेंगे।"

"यह तब होगा, जब यवन सेना कौशाम्बी से आगे बढ़ेगी, परन्तु इस समय वे क्या करने को कहते हैं?"

"इस समय की नीति पर भी राज्य-परिषद् में एकमत नहीं है। मैंने यह सम्मति दी थी कि महाराज सेनापति को लिखित आज्ञा दे दें कि वह युद्ध कर यवनों को देश से बाहर कर दे। युद्ध का सारा प्रबन्ध सेनापति को सौंप दें। उस समय के लिए धन, जन का प्रबन्ध सेनापति स्वयं कर लेगा। मुझको सेनापति ने कहा था कि मैं ऐसा प्रस्ताव राज्य-परिषद् में

रख दूँ।"

"बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सेनापति अपने ऊपर ले रहा है।"

"हाँ।" इस पर अरुणदत्त ने तनिक समीप हो धीरे से कहा, "मुझको विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि सेनापति अपनी सेना तैयार कर रहा है और कुछ सेट्ठी धन से इसमें उसकी सहायता कर रहे हैं।"

"सत्य ! पिता जी !"

"हाँ, परन्तु मैं यह जानकारी राज्य-परिषद् में उपस्थित नहीं कर रहा। मैं मन से चाहता हूँ कि सेनापति विद्रोह कर दे।"

"तब तो यहाँ अराजकता उत्पन्न हो जावेगी।"

"वर्तमान राज्य से अराजकता अच्छी है।"

पुष्यमित्र ने इसका उत्तर नहीं दिया और चुप-चाप अपने आगार में चला गया।

: ५ :

पुष्यमित्र आया था प्रातःकाल जाने के लिए, परन्तु महर्षिजी का सन्देश उसको प्रातः अल्पाहार के समय मिलने वाला था। इस कारण उसने जाना स्थगित कर दिया।

प्रातः वह उठा और स्नानादि से निवृत हो पूजा पर बैठ गया। पूजा के पश्चात् जब उसने आँखें खोलीं तो उसके सामने अरुन्धति बैठी हुई थी। पुष्यमित्र ने उसे देख कहा, "तो देवी महर्षि का सन्देश देने के लिए बैठी हैं ?"

"हाँ आर्य ! सन्ध्योपासना के उपरान्त चित्त स्थिर तथा शान्त होता है। इस कारण इस गंभीर और आवश्यक वार्त्तालाप के लिए यही समय ठीक समझ कर आयी हूँ।"

"वार्त्तालाप करना है अथवा महर्षिजी का संदेश देना है।"

"जैसी महर्षिजी की आज्ञा है, वैसा ही कर तथा कह रही हूँ। आपके कार्य की प्रगति से महर्षि पूर्णरूप से परिचित हैं। वे आपके कार्य को सफल बनाने के लिए चिन्तन करते रहते हैं। उनका विचार है कि जिस

भांति आप चल रहे हैं, सफलता अति संदिग्ध है। उन्होंने अपने संदेह को और संदेह के कारणों को आप तक पहुँचाने के लिए मुझको भेजा है।"

"महर्षिजी को मेरे कार्य की सफलता में संदेह हो रहा है ?"

"हाँ, यद्यपि वे उस कारण को, जिसके कारण यह संदेह और भी दृढ़ होता जाता है, दूर करने का यत्न कर रहे हैं; इस पर भी रोग का कारण तो आप में है। इस कारण रोग की चिकित्सा करने से पूर्व वे रोग के कारण को मिटा देना चाहते हैं।"

"क्या रोग है और क्या कारण है रोग का ?"

"रोग तो है महाराज वृहद्रथ। इस रोग को सेना में महाराज के गुणानुवाद गा-गाकर आप पुष्ट कर रहे हैं। महर्षि चाहते हैं कि आज के पश्चात् आप अपने मुख से महाराज का नाम मत लें और यदि कहीं महाराज के प्रति विरोध प्रकट हो तो आप चुप रहें।"

"मैं तो समझता हूँ कि महाराज का नाम लेने से मैं तथा नवीन-सेना विद्रोह के लांछन से बची रहेगी, अन्यथा यह वृक्ष बड़ा होने से पूर्व ही नष्ट किया जा सकता है।"

"आपके कार्य के आरम्भ-काल में भले ही इस बात की आवश्यकता रही हो, परन्तु अब न तो महाराज के नाम की आवश्यकता है और न ही उससे लाभ। विपरीत इसके, महाराज वृहद्रथ आपके उद्देश्य के विरोधी हैं। वे सेना को आपके विरुद्ध भी आज्ञा दे सकते हैं। ऐसा सम्भव है कि जब सेना एकत्रित हो जावे तो महाराज की आज्ञा हो जाय कि आप राज्यद्रोही हैं और आपको बन्दी बना लिया जाए।

"इसके अतिरिक्त युद्ध बिना पूर्ण राज्य के सहयोग के नहीं चल सकता। कदाचित् यह एक लम्बा युद्ध होगा। केवल सेट्ठियों के धन से यह सफल नहीं होगा। इस अवस्था में वृहद्रथ के विरोध के कारण यवनों से युद्ध असफल होगा।"

"तो क्या किया जाय ?"

"महर्षि आपकी सेना में एक ब्राह्मणकुमार की प्रतिष्ठा ऊँची कर

रहे हैं। वे सैनिकों के मन में यह बात बठा रहे है कि सेना यवनों से युद्ध करने के लिए तैयार की जा रही है। जो भी व्यक्ति इस युद्ध का विरोध करता है अथवा इसमें सहयोग नहीं देता, वह देशद्रोही है और सेना उसको शत्रु मानती है।

"महाराज वृहद्रथ भी सेना में चर्चा का विषय बन रहा है। उसको मूर्ख और भीरु प्रकट किया जा रहा है।

"इस प्रकार महर्षि एक दिशा में आपके कार्य को ले जाने के लिए यत्नशील हैं और वे चाहते हैं कि आपको उस दिशा का ज्ञान हो और आप इस दिशा को बदलने का यत्न न करें।"

"मेरी योजना यह नहीं, जिसका महर्षि अनुमान लगा रहे हैं। मैं अपने लिए कुछ नहीं कर रहा। मैं चाहता हू कि जब यह सेना तैयार हो, महाराज को भेंट में दे दी जाय और उनको युद्ध के लिए विवश कर दिया जाय।"

"परन्तु वृहद्रथ को कैसे विवश करेंगे ?"

"जब वे एक विशाल, शस्त्रास्त्र से सुसज्जित सेना को सामने खड़ी देखेंगे तो वे युद्ध के लिए विवश हो जावेंगे।"

"परन्तु आर्य ! यदि सेना के मन मे महाराज के प्रति भक्ति बनी रही तो वह महाराज वृहद्रथ का कहा मानेगी। महाराज सेना को यह भी आज्ञा दे सकते हैं कि आपको बन्दी बना लिया जाय। अथवा वे सेना के विघटन को आज्ञा दे सकते हैं। आपको विदित होना चाहिए कि महाराज पर बौद्धमहाप्रभु का प्रभाव सर्वोपरि है। यह भी हो सकता है कि सेना के एकत्रित होने से पूर्व ही आप महाराज से अकेले मिलने जावें तो वे वहीं आपको, अपने अंगरक्षकों द्वारा पकडवाकर मृत्यु दण्ड दिलवा दें।"

इस सम्भावना को सुन पुष्यमित्र अरुन्धति का मुख देखता रह गया। इस पर अरुन्धति ने अपना कहना जारी रखा। उसने बताया, "महर्षिजी के पास यह सूचना पहुँची है कि आप महाराज से मिलने पाटलिपुत्र आ रहे हैं। अतएव उन्होंने तुरन्त मुझको एक वेगगामी अश्व देकर कहा कि

मैं यहाँ पहुँचूं और आपको ऐसी भूल करने से रोकूं।"

इस बात को सुनकर तो पुष्यमित्र और भी अधिक विस्मय अरुन्धति का मुख देखने लगा। उसका आज का कार्यक्रम ऐसा था कि सर्वप्रथम सेट्ठियों की एक सभा में उपस्थित हो और पश्चात् मध्यान्ह समय महाराज से भेंट करने की अनुमति ले। महर्षि पाटलिपुत्र अढ़ाई-सौ-कोस दूर बैठे हुए उसके विषय में इतना कुछ जानते हैं, व समझ नहीं सका, कैसे ?

कुछ विचार कर उसने कहा, "तो महर्षिजी नहीं चाहते कि महाराज से मिलूं ?"

"उनको विश्वास है कि वहाँ जाने पर आपके जीवन का भय है।

"तो फिर क्या करूं ?"

"जो कर रहे हैं, करते जाएँ। केवल महाराज के विषय में न कुछ कहें और न कुछ सुनें।"

पुष्यमित्र गंभीर विचार में बैठा रह गया। वह विचार कर रह था कि वह किसी शक्ति द्वारा एक ऐसे पथ पर धकेला जा रहा है, जं उसका निर्वाचित किया हुआ नहीं है। उसे चुप देख अरुन्धति उठ खड़ हुई और उसको नमस्कार कर आगार से बाहर जाने लगी। पश्चा द्वार के पास पहुँच, एकाएक घूमकर खड़ी हो गई और कहने लगी "आर्य ने मेरा धन्यवाद नहीं किया।"

पुष्यमित्र हँस पड़ा और हँसकर कहने लगा, "तो क्या देवी ने मे लिए कुछ किया है ?"

"हाँ, यदि आर्य महर्षि का कहा मानेंगे तो उनका संदेश यहाँ तक लाने में बहुत बड़ा कार्य किया है। कदाचित् आर्य को सूली पर चढ़ाये जाने से बचा लिया है।"

"तब तो मैं देवी का बहुत आभारी हूँ।"

"तो इस आभार का एक पुरस्कार चाहती हूँ।"

"क्या ?"

"मेरे दो धर्मभाई यहाँ आए हुए हैं । एक है शंखपाद । उसको, जब वह चाहे, आप से मिलने की सुविधा हो । दूसरे का नाम है कान्तमणि। वह आर्य का अंगरक्षक बनना चाहता है।"

पुष्यमित्र ने हँसते हुए कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि देवी और महर्षिजी को मेरे जीवन का बहुत भय लग रहा है । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं श्रुति भगवती के अनुसार आत्मा को अमर मानता हूँ और मरने से नहीं डरता।"

"परन्तु आर्य !" अरुन्धति ने द्वार के अन्दर हो, पुष्यमित्र के समीप आकर पुनः कहा, "आपके मरने-जीने की महर्षि जी को इतनी चिन्ता नहीं। यह आज के वार्तालाप का विषय भी नहीं। वे तो आपकी योजना के विषय में चिन्तित हैं । यह सत्य है कि न केवल हमको प्रत्युत इस राज्य की कोटि-कोटि प्रजा को आपकी योजना की चिन्ता है। इसी कारण आपके जीवन की चिन्ता करनी पड रही है। आर्य से निवेदन है कि शंखपाद तथा कान्तमणि को अपना कार्य करने से मना न करें और उनकी सेवा, जो महर्षि के आदेशानुसार होगी, स्वीकार करें।"

: ६ :

अरुन्धति तो पूजागृह से बाहर चली गई, परन्तु पुष्यमित्र इस सब वार्तालाप का अर्थ समझने के लिए वहाँ बैठा रहा। कितने ही काल तक वह विचार करता रहा और अपना मार्ग निश्चित करता रहा। उसका ध्यान तब भग हुआ, जब माँ पूजा के आगार में आकर खड़ी हुई और कहने लगी, "बेटा ! अल्पाहार के लिए तुम्हारे पिता जी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

पुष्यमित्र उठा और भोजन करने वाले आगार मे जा पहुँचा । वहाँ पंडित अरुणदत्त और अरुन्धति बैठे थे।

जब तीनों आहार लेने लगे तो पिता ने कहा, "पुष्यमित्र ! मैं रात-भर राज्य-परिषद् की बात पर विचार करता रहा हूँ । मुझको तो देश तथा जाति के लिए एक भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गई प्रतीत होती है। दोनों

का विनाश अब समीप ही प्रतीत होता है।

"मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ। कदाचित् इसी कारण मेरे कथन का कुछ भी प्रभाव महाराज पर नहीं रहा। तुम युवा हो, विद्वान हो। क्या तुम मिलकर महाराज को समझा नहीं सकते ?"

पुष्यमित्र को महर्षि पतंजलि का कथन स्मरण हो आया। उसने एक बार अरुन्धति के मुख पर देखा। अरुन्धति उत्सुकता से उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी। पुष्यमित्र ने साहस पकड़ कर कहा, "पिता जी ! मैं महाराज से मिलने में कोई लाभ नहीं समझता।"

"तो मैं महामात्य के पद से त्याग-पत्र दे देता हूँ।"

"परन्तु एक महामात्य के मारे जाने की सूचना पर आप त्यागपत्र देंगे तो यह समझा जायगा कि आप भयभीत हो गए हैं।"

"तो क्या किया जाय ? इस पद पर बने रहने का अब कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा।"

"पिता जी ! मैं समझता हूँ कि अभी त्यागपत्र देने का अवसर नहीं आया। आप सेनापति तथा कोषाध्यक्ष से इस विषय पर राय ले लें। वे भी कदाचित् त्यागपत्र देना चाहेंगे। मैं चाहता हूँ कि आप तीनों इकट्ठे ही त्यागपत्र दें।"

"मैं चाहता हूँ कि तुम महाराज से मिल लो। कदाचित् मेरे स्थान पर तुमको महामात्य नियुक्त कर दिया जाय।"

"मैं अभी नहीं मिल सकता। मैं महर्षिजी के कार्य से बाहर जा रहा हूँ और नहीं जानता कि कब तक लौटूंगा।"

"तो क्या महर्षिजी का कार्य राज्यकार्य से भी अधिक आवश्यक है ?"

"वह भी देश का ही कार्य है पिताजी !" अरुन्धति ने पुष्यमित्र को उत्तर देने से बचाने के लिए कहा, "कौन अधिक आवश्यक है तथा कौन कम, यह हम नहीं जानते। मैं तो इतना जानती हूँ कि महर्षिजी के आदेश की अवहेलना कल्याणकारी नहीं हो सकती।"

इस बात ने अरुणदत्त का मुख बन्द कर दिया। अल्पाहार समाप्त

का विनाश अब समीप ही प्रतीत होता है।

"मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ। कदाचित् इसी कारण मेरे कथन का कु
भी प्रभाव महाराज पर नहीं रहा। तुम युवा हो, विद्वान हो। क्या तु
मिलकर महाराज को समझा नहीं सकते?"

पुष्यमित्र को महर्षि पतंजलि का कथन स्मरण हो आया। उसने ए
वार अरुन्धति के मुख पर देखा। अरुन्धति उत्सुकता से उसके उत्तर क
प्रतीक्षा कर रही थी। पुष्यमित्र ने साहस पकड़ कर कहा, "पिता जी!
मैं महाराज से मिलने में कोई लाभ नहीं समझता।"

"तो मैं महामात्य के पद से त्याग-पत्र दे देता हूँ।"

"परन्तु एक महामात्य के मारे जाने की सूचना पर आप त्यागपत्र
देंगे तो यह समझा जायगा कि आप भयभीत हो गए हैं।"

"तो क्या किया जाय? इस पद पर बने रहने का अब कुछ भी
प्रयोजन नहीं रहा।"

"पिता जी! मैं समझता हूँ कि अभी त्यागपत्र देने का अवसर नहीं
आया। आप सेनापति तथा कोषाध्यक्ष से इस विषय पर राय ले लें। वे
भी कदाचित् त्यागपत्र देना चाहेंगे। मैं चाहता हूँ कि आप तीनों इकट्ठे
ही त्यागपत्र दें।"

"मैं चाहता हूँ कि तुम महाराज से मिल लो। कदाचित् मेरे स्थान
पर तुमको महामात्य नियुक्त कर दिया जाय।"

"मैं अभी नहीं मिल सकता। मैं महर्षिजी के कार्य से बाहर जा रहा
हूँ और नहीं जानता कि कब तक लौटूंगा।"

"तो क्या महर्षिजी का कार्य राज्यकार्य से भी अधिक आवश्यक है?"

"वह भी देश का ही कार्य है पिताजी!" अरुन्धति ने पुष्यमित्र को
उत्तर देने से बचाने के लिए कहा, "कौन अधिक आवश्यक है तथा कौन
कम, यह हम नहीं जानते। मैं तो इतना जानती हूँ कि महर्षिजी के आदेश
की अवहेलना कल्याणकारी नहीं हो सकती।"

इस बात ने अरुणदत्त का मुख बन्द कर दिया। अल्पाहार समाप्त

"रात्रि व्यतीत होने से पूर्व ही आपको बंदीगृह से बाहर निकाल लिया जायगा।"

"तो इस कार्य के लिए तैयार रहो। मुझको लक्षण कुछ ठीक प्रतीत नहीं हो रहे हैं।"

"मैं पाँच सौ सुभट आपको छुड़ाने के लिए तैयार रखूंगा।"

: ७ :

सेनापति जानता था कि प्राचीन सेना के सैनिक राजाज्ञा को पवित्र मान, उसका पालन करना पसन्द करेंगे और नवीन सैनिक प्राचीन सैनिकों का विरोध नहीं कर सकेंगे। इस कारण वह चिन्तित था। इस पर भी वह साहसी वीर था और इस कठिनाई का सामना करने के लिए मन को तैयार कर राज्य परिषद् में गया।

उसको यह सूचना कि महाराज को एक नवीन सेना के निर्माण का ज्ञान है, अपने एक प्रतिहार से मिली थी। वह प्रतिहार उसकी ओर से राज्य प्रासाद का समाचार लाने के लिए नियुक्त किया गया था। इसका ज्ञान नहीं हो सका कि यह सूचना किस स्रोत से पहुँची है।

सेनापति जब राज्य परिषद् भवन में पहुँचा तो महाराज के अतिरिक्त सब सदस्य उपस्थित थे। अरुणदत्त तो महामात्य चन्द्रभानु की अनुपस्थिति में महामात्य का पद ग्रहण किये हुए था। सेठ नीलमणि कोषाध्यक्ष, सेठ महाकान्त प्रमुख न्यायाधीश, महाप्रभु बादरायण, श्रावक सुनन्द भी वहाँ उपस्थित थे। सेनापति विद्रुम आया तो महाराज को सूचना भेज दी गई।

महाराज आये और सभा के सभी सदस्यों ने उठकर महाराज का स्वागत किया। पश्चात् जब सब बैठ गये तो महाराज ने रात वाली बात छोड़ एक नवीन चर्चा चला दी। उन्होंने कहा, "डेमिट्रियस का राजदूत उसका एक पत्र लेकर आया है। मैं चाहता हूँ कि महाप्रभु वह पत्र इस परिषद् में पढ़कर सुनाएँ।"

महाराज ने जब संकेत किया तो महाप्रभु ने अपने झोले में से पत्र

निकाल कर पढ़ना आरम्भ कर दिया । पत्र में लिखा था, "हमको विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि मगध साम्राज्य भर में नागों की संख्या में सैनिकों की भरती की जा रही है और महाराज का आशय इससे यवन साम्राज्य पर आक्रमण करने का है । इस कारण हम भारत निवासियों को और मगध सम्राट् को चेतावनी देते हैं कि तैयारी एक दम रोक दी जाय, अन्यथा उस नवीन सेना के तैयार होने से पूर्व ही, हम पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर देना उचित समझेंगे । इससे जो भी हानि प्रजा अथवा राज्य को होगी, उसका उत्तरदायित्व हम पर नहीं होगा ।

"हमें एक मास के भीतर इस बात का आश्वासन मिल जाना चाहिए कि सेना भंग कर दी गयी है ।"

इतना पढ़कर बादरायण ने पत्र बन्द कर पुनः अपने झोले में रख लिया । इस पर पण्डित अरुणदत्त ने पूछा, "यह पत्र किसने और किसको लिखा है ?"

महाप्रभु चुप रहे । उत्तर महाराज ने दिया, "एक भिक्षु यह पत्र लाया है । यह भिक्षु उन भिक्षुओं में से एक है, जो महामात्य चन्द्रभानु के साथ कौशाम्बी भेजे गए थे ।"

"तो सब भिक्षु मार नहीं डाले गए ?"

"इससे तो यही सिद्ध होता है ।"

"महाराज !" सेठ नीलमणि ने पूछ लिया, "इस पत्र को लिखने वाला कौन है ?"

"पत्र के नीचे डेमिट्रियस के हस्ताक्षर हैं ।"

"ये हस्ताक्षर झूठे भी हो सकते हैं ।"

इस पर न्यायाधीश ने कह दिया, "मैं यह पत्र स्वयं देखना चाहता हूँ ।"

"यह पत्र मेरी निजी सम्पत्ति है । यह मुझको लिखा गया है ।" महाप्रभु ने कह दिया ।

"तनिक दिखाइये, हम देखना चाहते हैं ।"

"मेरा महाराज से निवेदन है कि मुझको अपने निजी पत्र दिखाने

के लिए विवश न किया जाए।"

इस पर महाकान्त ने महाराज को सम्बोधन कर पूछा, "महाराज ! डेमिट्रियस हमारा मित्र है अथवा शत्रु ?"

महाराज बृहद्रथ ने कुछ क्षण विचार कर कहा, "जहां तक राज-नीति का सम्बन्ध है, वह शत्रु है। परन्तु महाप्रभु तो एक धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। धर्म की दृष्टि में कोई शत्रु नहीं होता।"

"ऐसी अवस्था में", महाकान्त का कहना था, "महाप्रभु को इस राज-नीतिक संस्था से पृथक् हो जाना चाहिए। यह संस्था डेमिट्रियस को तथा यवनों को भारत का शत्रु मानती है। महाप्रभु धर्मगुरु होने से ऐसा नहीं मान सकते। अतएव उनको राज्य-परिषद् का त्याग कर देना चाहिए।"

अब सेनापति ने भी अपने विचार प्रकट कर दिए। उसने कहा, "राज्य परिषद् यह सहन नहीं कर सकती कि इसका सदस्य देश के शत्रु से निजी रूप में पत्र व्यवहार करे।"

इस पर महाप्रभु ने अपनी स्थिति का वर्णन कर दिया। उसने कहा, "मैं इस परिषद् में महाराज के निमंत्रण पर सदस्य बना हूँ। महाराज ने जब मुझको निमंत्रण दिया था तो यह जानकर ही दिया था कि मैं एक सार्वभौमिक धर्म का नेता हूँ। इस राज्य परिषद् में सम्मिलित होने पर मैंने अपने धर्म को त्याग देने का वचन नहीं दिया था।

"एक बात मैं और निवेदन करना चाहता हूँ कि महाराज तथा महाराज के पूर्वजों ने बौद्ध धर्म के प्रतिनिधियों को राज्य परिषद् में लेने का निर्णय इस कारण किया था कि हम अपने पंचशील से प्रजा में शान्ति रखने का प्रयत्न करते रहते हैं। देश की कोटि-कोटि प्रजा हम में श्रद्धा रखती है। अतः महाराज को हमारी और हमारे पंथ के लोगों के सह-योग की आवश्यकता रहती है; अन्यथा महाराज की राज्य-सत्ता स्थिर नहीं रह सकती।"

इस पर महाराज बृहद्रथ ने स्पष्ट कह दिया, "इस परिषद् में सब सदस्यों का पद एक समान है। इस कारण कोई भी सदस्य किसी की

धर्मपरायणता पर टीका-टिप्पणी नहीं कर सकता।"

इस पर महाकान्त ने कहा, "महाराज! इन श्रावकों को या तो परिषद् से निकाल दिया जाय अन्यथा राज्य को इनके आदेशानुसार चलाने के लिए हमको परिषद् से निकाल देना चाहिए।"

"हम समझते हैं कि आप दोनों विचार के लोग इसमें रहें और कोई सर्वसम्मति से योजना बनाकर देश के कल्याण का प्रयत्न करें।"

अब महाप्रभु ने कहा, "इस समय सबसे पहले इस नवीन सेना के विषय में विचार करना चाहिए।"

सेनापति का कहना था, "यह असत्य है। कोई सेना हमारी जानकारी में नहीं है।"

"तो डेमिट्रियस का यह आरोप मिथ्या है?"

"हम यहाँ बैठे जिस बात को जान नहीं सके, यहाँ से चारसौ-कोस पर बैठा एक विदेशी राजा कैसे जान सकता है? मेरा तो यह कहना है कि न तो कोई नवीन सेना यहाँ बन रही है, न ही यह सूचना डेमिट्रियस को मिली है। यह पत्र झूठमूठ में बनाकर महाराज को धमकाया जा रहा है।"

"यह असत्य है महाराज! यह पत्र वास्तव में यवनाधिपति का लिखा है और उसकी यह सूचना सत्य है कि यहाँ पर एक विशाल सेना का निर्माण हो रहा है।"

न्यायाधीश ने कहा, 'ऐसी सेना की सूचना न तो महाराज को है और न ही महामात्य को। सेनापति स्वयं इससे अनभिज्ञता प्रकट कर रहे हैं। केवल महाप्रभु ही जानते हैं कि यहाँ एक सेना संगठित की जा रही है। महाप्रभु के अतिरिक्त यवनाधिपति जानते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि महाप्रभु स्वयं ही सेना तैयार कर रहे हैं और स्वयं ही इसकी सूचना उन्होंने अपने मित्र डेमिट्रियस को भेजी है। डेमिट्रियस ने भी धमकी अपने मित्र को भेजी है, महाराज को नहीं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि राज्य-परिषद् का एक सदस्य शत्रु से सम्पर्क रख रहा है और इस

राज्य के रहस्य की बातें शत्रु को बता रहा है।

"ऐसी अवस्था में शत्रु को रहस्य की बातें बताने वाले को बन्दी बनाकर न्यायाधीश के अधीन कर दिया जाए, जिससे वह जाँच कर अपराधी को उचित दंड दे सके।"

बादरायण इस पर क्रोध से भड़क उठा। उसने कहा, "दोषी सेनापति हैं। उनकी ही आज्ञा से, राज्य-परिषद् की स्वीकृति के बिना सेना निर्माण की जा रही है।"

"यह असत्य है।"

"मैं इसको सत्य सिद्ध कर सकता हूँ।"

"पहिले महाप्रभु अपने को निर्दोष सिद्ध करें। पीछे वे दूसरों पर आरोप उपस्थित कर सकते है।"

इस वाद-विवाद को बन्द कर महाराज ने आज्ञा दे दी। उन्होंने कहा, "हम यह जानना चाहते है कि क्या यह सत्य है कि यहाँ कोई नवीन सेना संगठित की जा रही है? यदि ऐसा है तो कौन कर रहा है? इसके लिए धन कहाँ से आ रहा है?"

"महाराज स्वयं जाँच करें तो पता चल जायगा।"

"हम आज्ञा देते हैं कि महामात्य और सेनापति पन्द्रह दिन के भीतर इस बात का पूर्ण वृत्तान्त उपस्थित करें और यदि कोई दोषी हो तो उसको पकड़कर बन्दी बनाया जाए।"

इस पर अरुणदत्त ने कहा, "महाराज की आज्ञा का पालन किया जायगा; परन्तु इसके साथ ही इस विषय में भी आज्ञा हो कि वह श्रावक, जो डेमिट्रियस का पत्र लेकर आया है, हमारे सामने उपस्थित किया जाय जिससे राज्य के महामात्य चन्द्रभानु के विषय मे जानकारी प्राप्त की जा सके।"

"हम आज्ञा देते हैं कि उस श्रावक को महामात्य अरुणदत्त के समक्ष उपस्थित किया जाय, जिससे इस विषय मे पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।"

: ८ :

जब महाराज परिषद् से उठकर चले गये तो महाप्रभु ने कह दिया, "जाँच में मैं यह सिद्ध कर दूँगा कि नवीन सेना का निर्माण किया जा रहा है।"

"इस सेना को निर्माण करने वाला राज्यद्रोही है। उसको उचित दण्ड मिलेगा।" अरुणदत्त का कहना था।

"तो जाँच कब आरम्भ होगी ?"

"आज सायंकाल ही मेरे घर पर।"

"क्यों सेनापति ! ठीक है न ?"

"नहीं, महामात्य ! मैं आज ही देहातों में घूम-घूमकर इस विषय में स्वयं जाँच करना चाहता हूँ।"

"परन्तु महाराज ने हम दोनों को जाँच करने के लिए कहा है।"

"तो पण्डित जी ! ऐसा करिये। मेरे लौटने तक जाँच स्थगित रखिए। तब तक आप उस श्रावक से महामात्य के विषय में पूछ-ताछ कर लें।"

सेनापति की बात को स्वीकार करते हुए अरुणदत्त ने महाप्रभु से पूछा, "भगवन् ! कब तक उस श्रावक को उपस्थित कर सकेंगे ?"

"आज सायंकाल ही वह आपकी सेवा में उपस्थित हो जायगा।"

सेनापति विद्रुम अपने भवन में पहुँचा तो पुष्यमित्र उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब सेनापति ने राज्य-परिषद् की कार्रवाही सुनाई तो पुष्यमित्र ने हँसते हुए कहा, "जो कुछ इससे समझा हूँ, वह यह है कि महाराज बृहद्रथ किसी भी विषय में निर्णय लेने के अयोग्य है। जो कुछ भी निर्णय वह लेता है, वह बाहरी शक्तियों के दबाव के कारण है। महाराज के निर्णयों में बौद्ध महाप्रभु तथा बौद्ध श्रावकों के बल का ही भय मुख्य कारण होता है।

"इस निदान के पश्चात् मैं श्रावकों से भय का निवारण करने जा रहा हूँ। ज्यों ही श्रावकों से भय, महाराज के मन से उठा, वे देश के हित में कार्य करने पर विवश हो जायेंगे।"

सेनापति ने कहा, "बौद्धों के बल के विषय में भ्रम फैला हुआ है। वास्तव में यवनों को देश से निकालने के विषय में प्रायः बौद्ध मत्य देश-वासियों का साथ देंगे। उनको अपने भिक्षुओं की नीति पसन्द नहीं। यह तो भिक्षुओं ने एक आतंक फैला रखा है कि बौद्ध प्रजा युद्ध का विरोध करेगी। ऐसा कुछ नहीं होगा, परन्तु यह भ्रम महाराज के मस्तिष्क से निकालने की बात है।"

"इसी के लिए मेरी योजना चल रही है। मैं आज्ञा भेज रहा हूँ कि सब नवीन सैनिक पाटलिपुत्र में एकत्रित हो जायें। उनकी धनुर्विद्या तथा खड्ग चलाने में प्रतियोगिता होगी। उनको पुरस्कार मिलेंगे तथा गण-वेश और वस्त्र वितरित किये जायेंगे।

"आप आज्ञा दे दें कि पुराने सैनिकों में से मुख्य-मुख्य सैनिक यहीं एकत्रित हो जायें। हम नवीन तथा प्राचीन सेना में सम्पर्क उत्पन्न करना चाहते हैं।"

'पुष्यमित्र! मुझको एक बात का भय लग रहा है। जब सैनिक एक-त्रित हो गये और उन्होंने महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार बुला दी और महाराज ने तुम्हें अथवा मुझे बन्दी बनाने की आज्ञा दे दी तो सब सैनिक हमारे विरुद्ध हो जायेंगे।"

"मैं इसका भी प्रबन्ध कर रहा हूँ। इस पर भी मैं चाहता हूँ कि आप इस झमेले से बाहर रहने का यत्न करें। यह इसलिए कि यदि कहीं यह आयोजन असफल रहा तो आप न फँस जायें। इस योजना का उत्तर-दायित्व मैं अपने सिर पर ले लूँगा।"

इस प्रस्ताव पर सेनापति गम्भीर हो गया। कुछ क्षण तक विचार कर उसने कहा, "मैं मरने से भयभीत नहीं हूँ। यदि हम अपने उद्देश्य में सफल न हुए तो आगामी दस वर्ष में पूर्ण भारत देश पर यवनों का राज्य स्था-पित हो जायगा। ये बौद्ध लोग, जो हिंसा करने से डरते हैं, स्वयं हिंसा का शिकार हो जायेंगे। इनके साथ दूसरे देशवासी भी पिस जावेंगे।"

"तो हमको असफल नहीं होना। ऐसा ही यत्न किया जायगा।"

पुष्यमित्र के अपने साधन थे, जिनसे वह अपनी पूर्ण योजना के सूत्र अपने हाथ में रखे हुए था। यह कार्य वह अर्थ समिति के द्वारा करता था। सेनापति के भवन से निकल वह सीधा सेट्ठी धनसुखराज के पास जा पहुंचा। वहाँ से उसने तीव्रगामी अश्वों पर देश के कोने-कोने में यह संदेश भिजवा दिया कि सब सैनिक आगामी पूर्णिमा के दिन पाटलिपुत्र में एकत्रित हो जावें। अर्थ समिति को उसने यह सूचित कर दिया कि उस दिन तक सभी सैनिकों के लिए गणवेश तथा शस्त्रादि एकत्रित हो जाने चाहियें।

धनसुखराज के द्वारा इसका प्रवन्ध कर वह अपने घर पर पहुँचा तो उसको पता चला कि महाप्रभु वादरायण उसके पिता से मिलने आए हुए हैं और दोनों में गुप्त वार्तालाप चल रहा है। महाप्रभु का रथ गृह के वाहर खड़ा था और कुछ श्रावक रथ के समीप खड़े थे।

पुष्यमित्र अपने आगार में प्रवेश करने लगा तो एक हृष्ट-पुष्ट युवक उसके सामने आ, प्रणाम कर खड़ा हो गया। पुष्यमित्र उससे पूछने वाला था कि वह कौन है और किस प्रयोजन से आया है कि उसने स्वयं अपना परिचय दे दिया—"मेरा नाम शंखपाद है और आपकी सेवा के लिए उपस्थित हूँ।"

"ओह! तुम अरुन्धति देवी के भ्राता हो?"

"हाँ, आर्य!"

"क्या कार्य कर सकते हो?"

"अपने आगार में चलिए। वहीं चलकर निवेदन करूंगा।"

पुष्यमित्र ऐसा अनुभव करने लगा था कि उसने आंधी उत्पन्न कर दी है, जो अब वेग से चलने लगी है और इस आंधी के वहाव में वह भी बहता चला जा रहा है।

वह उस दिन महाराज वृहद्रथ के सम्मुख उपस्थित हो, अपनी योजना रखना चाहता था। अरुन्धति ने उसको मना कर दिया था और वह अब अनुभव करता था कि महाराज से न मिलकर उसने ठीक ही किया है। अब यह अरुन्धति का भाई आया है और कुछ और ही कहना चाहता है।

यह स्वयं आगार में गया तो शंखपाद ने भी भीतर प्रवेश किया और आगार को भीतर से बन्द कर कहने लगा, 'मैं महाप्रभु वात्सायन के साथ रहने लगा हूँ। महर्षिजी की आज्ञा है कि मैं इनके कार्यों की सूचना उनको भेजता रहूँ। आज महर्षिजी की आज्ञा मिली है कि मैं अपने समाचार अरुन्धति देवी अथवा आपको दिया करूँ।"

"महाप्रभु तो मुझको अपने समीप रखना चाहते थे, परन्तु आपके पिता ने यह कह दिया कि उनसे पृथक में बात करेंगे और मैं बाहर खड़ा रहा।"

पुष्यमित्र महर्षि पतंजलि को, अपनी योजना में इतनी रुचि लेते देख, आश्चर्य करता था। इससे उसके उत्साह में वृद्धि ही हुई थी। उसने शंखपाद से पूछा, "कुछ नवीन सूचना है?"

"समाचार यह है कि महाप्रभु यवनाधिपति डेमिट्रियस से पत्र व्यवहार कर रहे हैं। महाप्रभु यत्न कर रहे हैं कि डेमिट्रियस बौद्ध धर्म स्वीकार कर ले तो देश भर के बौद्ध उसके राज्य के समर्थक हो जावेंगे। उनको कुछ ऐसा संदेह हो रहा है कि महाराज वृहद्रथ बौद्धों के विरोधी हो रहे हैं। जबसे उनको यह सूचना मिली है कि महाराज के नाम पर एक नवीन सेना का निर्माण हो रहा है और महाराज इससे अनभिज्ञता प्रकट कर रहे हैं, वे महाराज की बातों पर विश्वास नहीं कर रहे।"

"तुम महाप्रभु की क्या सेवा कर रहे हो?"

"मैं बौद्ध उपासक बना हुआ हूँ और उनको उनकी नीति में परामर्श देता हूँ। आप मुझको उनका मंत्री समझ सकते हैं।"

"अच्छी बात है।"

"एक व्यक्ति जिसका नाम सुमित्र है, आपके पास नित्य के समाचा लाया करेगा।"

"मैं यह जानना चाहता हूँ कि यहाँ की नवसेना का समाचार ... ट्रियस को महाप्रभु ने दिया है अथवा वह अपने गुप्तचरों द्वारा ...

"जहाँ तक मैं समझा हूँ डेमिट्रियस को यहाँ की नवीन ...

कोई समाचार नहीं है। वह पत्र, जो आज राज्य परिषद् में उपस्थि किया गया था, झूठा है। वह महाराज को विवश कर उस सेना व विरोधी बनाने के लिए विहार में लिखाया गया है।"

"यह बात हमारे कार्य में बहुत सहायता देगी, यदि महाप्रभु लिखे पत्र हमें मिल जायें।"

"महाप्रभु अपने हाथ से नहीं लिखते। वे विहार में एक भिक्षु निर्ग से पत्र लिखवाते हैं।"

"इस पर भी यदि उनके पत्र हमारे पास आजाया करें तो हमें ला होगा। हम उन पत्रों की नकली प्रतिलिपि डेमिट्रियस के पास भे दिया करेंगे।"

"मैं यत्न करूँगा।"

: ६ :

महाप्रभु विदा हुए तो उनके साथी श्रावक तथा शंखपाद भी उनके साथ चले गये। इस समय पुष्यमित्र को स्मरण हो आया कि अरुन्धति घर में दिखाई नहीं दे रही। अतः वह माँ के पास गया। उसका विचार था कि वहाँ मिल जायगी, परन्तु वह वहां पर भी नहीं थी। पुष्यमित्र ने माँ से पूछ लिया—

"माँ! अरुन्धति देवी कहाँ गई हैं?"

"क्यों? क्या बात है?"

"उसका भाई शंखपाद आज मुझे मिला था। उसके विषय में ही बात करनी थी।"

"आज मध्याह्नोत्तर नगर से दो सेट्ठी स्त्रियाँ आई थीं और वह उनके साथ गई है। सूर्यास्त से पूर्व ही लौट आयगी।"

"ओह! तो उसके इस नगर में अन्य लोग भी परिचित हैं?"

"बेटा! महर्षिजी का परिचय बहुत विस्तृत है। देश का कोई भी नगर ऐसा नहीं, जहां उनके एक-दो शिष्य न हों। अरुन्धति उनकी प्रिय शिष्या है।"

इस समय पुष्यमित्र का पिता वहाँ आ गया। वह कुछ चिन्तित प्रतीत होता था। उसने पुष्यमित्र को देखा तो पूछ लिया, "तुम महर्षि पतंजलि से मिलने नहीं गये ?"

"मैं जा रहा था, परन्तु मार्ग में महर्षिजी का एक सन्देश मिला कि मुझे उनके पास आने की आवश्यकता नहीं। उनका जो कार्य था, वही पूरा हो जायगा।"

"महाप्रभु बादरायण मुझसे तुम्हारे विषय में पूछ रहे थे। मैंने तो यह कहा है कि तुम महर्षि पतंजलि के आश्रम में गये हो।"

"तो उनसे कोई बहाना बनाना पड़ेगा।"

"बेटा ! वह अत्यन्त ही चतुर है। उससे बहाना चल नहीं सकेगा।"

"उनकी चतुराई का रहस्य मुझको विदित है।"

"क्या ?"

"यह मैं दो-तीन दिन में राज्य के महामात्य की सेवा में उपस्थित करूँगा।"

"क्या अभिप्राय है तुम्हारा ?"

"पिता जी ! महाप्रभु देश तथा समाज के साथ विश्वासघात कर रहा है। मैंने इसके प्रमाण एकत्रित करने आरम्भ कर दिए हैं। मैं शीघ्र ही वे आपकी सेवा में उपस्थित करूँगा। परन्तु क्या आप बतायेंगे कि महाप्रभु उस श्रावक को आपके पास लाये थे, जो डेमित्रियस का पत्र लाया था ?"

अग्निदत्त इस सूचना को अपने पुत्र के मुख से सुन, विस्मय में उसको देखता रह गया। पश्चात् कुछ विचार कर पूछने लगा, "यह बात तुमको किसने बताई है ? राज्य परिषद् की कोई भी बात कोई सदस्य बाहर नहीं बता सकता। इस अपराध का दण्ड प्राण-दण्ड है। यदि तुमने यह बात किसी अन्य को बताई, तो यही समझा जावेगा कि राज्य परिषद् के रहस्य की बात मैंने तुमको बताई है।"

"पिताजी ! मैं यह जानता हूँ। प्रथम तो मैं किसी को यह बताऊँगा ही नहीं। दूसरे मैं उस व्यक्ति का नाम बता दूँगा, ि

मुझको यह समाचार मिला है।"

"तो सुनो! महाप्रभु उस श्रावक को नहीं लाये। उनका कहना है कि श्रावक कपिलवस्तु चला गया है। मैंने तो उनसे निवेदन किया है कि उस श्रावक को तुरन्त बुला भेजें, जिससे महामात्य चन्द्रभानु के विषय में जांच हो सके। इस पर उन्होंने कहा है कि वे उस श्रावक के पीछे एक अन्य श्रावक को भेज कर बुला देंगे।"

"मुझको यह पता चला है कि डेमिट्रियस ने कोई पत्र नहीं भेजा। जो पत्र महाप्रभु ने उपस्थित किया था, वह झूठा है और यह कहानी भी झूठी है कि डेमिट्रियस को पता है कि यहां कोई नवीन सेना निर्माण की जा रही है।"

"इस पर भी यह बात तो वह सिद्ध कर गया है कि वास्तव में एक विशाल सेना का निर्माण हो रहा है और यह महाराज बृहद्रथ के नाम पर हो रही है।"

"कैसे सिद्ध कर गया है?"

'एक बात उसने यह बताई है कि लगभग एक सहस्र सेनानायक एक वर्ष से सेना-शिविर में से अनुपस्थित रहे हैं और वे गांव-गांव में जाकर सैनिक शिक्षा दे रहे हैं।"

"परन्तु यह भी तो किसी को विवश करने के लिए एक महान् झूठ हो सकता है?"

"इससे किसको विवश करने का विचार हो सकता है?"

"महाराज को।"

"परन्तु वह तो यह कहता है कि महाराज स्वयं इस सेना का निर्माण कर रहे हैं। इस सेना निर्माण के तुरन्त पश्चात् महाराज हम सबको, जो उनकी त्रुटियों को जानते हैं, बंदी बनाकर सूली पर चढ़ा देंगे और तदन्तर निरंकुश राज्य चलायेंगे।"

"यह तो अति भयंकर परिस्थिति है।" पुष्यमित्र ने मुस्कराकर कहा।

"तुम्हारा भी यही विचार है क्या कि महाराज इस सेना का

निर्माण कर रहे हैं ?"

"नहीं पिता जी ! मुझको तो कुछ ऐसा समझ आ रहा है कि इस राज्य में महाराज वृहद्रथ तथा बौद्ध-श्रावकों और उपासकों के अतिरिक्त भी कुछ लोग बसते हैं और वे महाराज तथा बौद्ध-श्रावकों पर अपना विश्वास खो बैठे हैं। वे अपने जीवन को सुरक्षित करने के लिये इस सेना की योजना बना रहे है।"

"क्या प्रमाण है इसका तुम्हारे पास ?"

"अनुमान प्रमाण है पिता जी ! महाराज वृहद्रथ के पास न तो धन है और न ही बुद्धि, जिससे वह नवीन सेना का निर्माण कर सके। बौद्ध-श्रावक तो सेनाओं में विश्वास ही नहीं रखते। अतएव इन दोनों के अतिरिक्त जो राज्य में रहते हे, वे ही हो सकते हैं, जिन्होंने सेना की आवश्यकता अनुभव की होगी।'

"यह तो वे ठीक नहीं कर रहे।"

"पिता जी ! उनमें से कोई यहाँ हो, तब ही तो इस कार्य के ठीक अथवा गलत होने पर विचार किया जा सकता है।"

"तो क्या उनकी अनुपस्थिति मे उनके इस कुकर्म पर विचार नहीं किया जा सकता ?"

"यह न्याय के सिद्धान्तों के विपरीत है। जिस राज्य मे अपराधी की अनुपस्थिति में उसके अपराध की विवेचना की जाती है, वह राज्य अन्यायाचरण का भागी होता है।"

"और यदि वह अपराधी पकड़ा न जा सके तो ?"

"तो उस राज्य को अयोग्य मान हटा देना चाहिये।"

पुत्र को इस प्रकार युक्ति करते देख अरुणादत्त विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। इससे पिता को सदेह होने लग गया कि इस नवी सेना के निर्माण मे उसके पुत्र तथा महर्षि पतञ्जलि का हाथ अवश्य उसने चिन्तायुक्त भाव मे पूछा, "बेटा मित्र ! इन अयोग्यों को हटा अधिकार कौन रखता है ?"

"जो अयोग्य से अधिक बलशाली होगा।"

"तो तुम समझते हो कि मगध सम्राट् से अधिक बलशाली कोई यहाँ उत्पन्न हो गया है ?"

"अवश्य हो गया है, पिताजी ! एक को तो मैं जानता हूँ। वह डेमिट्रियस है। डेमिट्रियस बृहद्रथ को राज्यच्युत् करने का अधिकार रखता है और अपने ढंग से कर भी रहा है।

"कठिनाई यह प्रतीत होती है कि डेमिट्रियस और बृहद्रथ के मध्य कोई अन्य आ उपस्थित हुआ है। वह कितना शक्तिशाली है, कहा नहीं जा सकता।

"महाप्रभु बादरायण के कथन से तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह, महाराज बृहद्रथ को साथ लेकर भी, इस नवीन शक्ति के सम्मुख दुर्बल है। यही कारण है कि वह महाराज बृहद्रथ की डेमिट्रियस से संधि कराकर, दोनों की शक्तियों को मिला देना चाहता है, जिससे वह शक्ति नष्ट की जा सके और पश्चात् डेमिट्रियस तथा बृहद्रथ परस्पर समझ लें।"

अरुणदत्त ने पुत्र के विचार जानने के लिए कह दिया—"योजना तो बहुत सुन्दर प्रतीत होती है।"

"हाँ है तो सुन्दर, परन्तु नितान्त मूर्खतापूर्ण। प्रथम तो दोनों में संधि असम्भव है। कारण यह कि बृहद्रथ की अपनी शक्ति शून्य के तुल्य है और कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति किसी निर्बल को अपने समान अधिकार देने को तैयार नहीं होगा।" पुष्यमित्र ने गम्भीर हो कहा। उसने अपने कथन को और स्पष्ट करने के लिये कह दिया, "कहीं डेमिट्रियस बृहद्रथ के साथ मिलकर इस नवीन सेना को कुचलने के लिए तैयार हुआ भी, तो वह पीछे बृहद्रथ को राज्यच्युत् करने के विचार से होगा। वह बृहद्रथ जैसे अयोग्य, दुर्बल, भीरु और मूर्ख को अपने समान मान, संधि नहीं करेगा।"

"तो कदाचित् डेमिट्रियस उस नवीन शक्ति से संधि कर राज्य का बँटवारा कर ले।"

उत्पन्न नहीं हो जाती, जो इन शान्तिवादियों को परास्त कर सके, तब तक उनका मंत्रिमण्डल में रहना लाभदायक ही है। वे अशुद्ध नीति का कुछ तो विरोध करते ही रहते हैं।

न्यायाधीश के इस कथन को स्मरण कर अरुणदत्त यह विचार कर रहा था कि क्या अब कोई ऐसी शक्ति उत्पन्न हो गई है, जो इन शान्तिवादियों से अधिक प्रबल है।

: १० :

पुष्यमित्र दिन-भर की भागदौड़ के पश्चात् विश्राम कर रहा था कि किसी ने आगार के बाहर बहुत धीमा-सा खटका किया। उसने सतर्क हो पूछा, "कौन है ?"

उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी ने पुन: खटका किया है। वह अपनी शय्या से उठा और द्वार खोल, देखने लगा। बाहर और भीतर भी अंधेरा था। उस अंधेरे में उसे एक साया-सा खड़ा दिखाई दिया। वह साया द्वार खुलते ही भीतर आने लगा। पुष्यमित्र ने उसको रोकने के स्थान भीतर आ जाने दिया और वह स्वयं द्वार के समीप ही खड़ा रहा। वह साया आगार के बीच जाकर खड़ा हो गया। अब पुष्यमित्र ने पूछा, "कौन हो तुम ?"

"श""श""।" उस साये ने चुप रहने का संकेत किया। इस पर पुष्यमित्र ने कहा, "ठहरो, दीपक जलाता हूँ।"

"नहीं।" यह अरुन्धति का स्वर था। "सुनिए, शीघ्र ही यहाँ से चले जाइये। राज्यप्रासाद के प्रतिहार तथा सुभट्ट राजाज्ञा लेकर आपको बंदी बनाने के लिए आ रहे हैं।"

"क्यों ?"

"इस बात को बताने का समय नहीं। मैं अभी यहाँ से जाना नहीं चाहती। इस कारण यह सब-कुछ चोरी-चोरी कर रही हूँ। आप यहाँ से गंगा पार कर विशालापुरी चले जाइयेगा। वहाँ निरंजन मिश्र के गृह पर ठहर कर संदेश की प्रतीक्षा करियेगा।"

मित्र कह कर नहीं गया ?"

"मुझको कह गये थे कि आपको सूचित कर दूँ। परन्तु आप सो रहे थे और मैंने आपको जगाना उचित नहीं समझा।"

अरुणदत्त सायंकाल पुष्यमित्र से हुई वार्त्तालाप से और अब अरुन्धति के कथन से पुष्यमित्र का इस नवीन सेना से सम्बन्ध समझने लगा था। इस कारण उसने अरुन्धति को अपनी बैठक में बुलाकर बैठाया और पूछा, "देखो बेटी ! मैं पुष्यमित्र का पिता हूँ और इस नाते यह जानने का अधिकार रखता हूँ कि यह क्या हो रहा है।"

"पिताजी !" अरुन्धति ने उसकी आँखों में देखते हुए कहा, "यह जो कुछ हुआ है, वह तो राज्य के महामात्य अधिक जान सकते हैं और मैं समझती हूँ कि आपको सेनापति तथा न्यायाधीश को साथ लेकर राज्य-प्रासाद में जाकर पता करना चाहिए कि यह क्या हुआ है ?"

"मैं तो केवल यह बता सकती हूँ कि इस समय राज्यप्रासाद में महाप्रभु बैठे हैं और पुष्यमित्र के बंदी बन, वहाँ लाये जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"देखो अरुन्धति ! राज्यप्रासाद में मैं जाऊँगा ही, परन्तु मैं तुमसे जो पूछ रहा हूँ, मुझको उसका उत्तर दो। मैं अब पुष्यमित्र के विरुद्ध आरोपों का उत्तर देने जा रहा हूँ। इस कारण पूर्ण परिस्थिति से परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"पूछिये।"

"यह नव सेना-निर्माण में पुष्यमित्र का क्या सम्बन्ध है ?"

"जो निर्माता का निर्माण-कार्य से हो सकता है।"

अरुणदत्त इस बात की आशंका तो कर रहा था, परन्तु जब अरुन्धति ने इतने स्पष्ट ढंग से कहा तो वह अवाक् बैठा रह गया। इस पर अरुन्धति ने पुनः कहा, "पुत्र ने कार्य आरम्भ करने से पूर्व अपने पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था।"

"ठीक है, परन्तु उसने मुझे कभी भी तो यह नहीं बताया कि वह क्या करने जा रहा है ?"

"क्या कभी पिता ने पुत्र से पूछा था कि उसने आशीर्वाद किस विषय में माँगा है ?"

"परन्तु तुम उसके विषय में इतना कुछ कैसे जानती हो ? तुम्हारा उससे क्या सम्बन्ध है ?"

"मुझको महर्षिजी ने आर्य पुष्यमित्र की संरक्षिका नियुक्त किया है। इस कार्य के निमित्त साधन भी दिये हैं।"

"तो अब उसकी रक्षा करो।"

"वही तो कर रही हूँ। उसी सुरक्षा के अनुरूप आपसे निवेदन कर रही हूँ कि आप राज्यप्रासाद में जाकर महाराज तथा महाप्रभु से इस खोज का कारण पूछें। यदि वे आपसे अपने पुत्र को बंदी बनाने में सहायता माँगें, तो सहायता देने से इन्कार न करें।"

"परन्तु मैं तो जानता नहीं कि वह कहाँ है ?"

"इसके जानने की आवश्यकता भी नहीं। आपने तो केवल आश्वासन देना है कि उसके घर आते ही आप उसको लेकर महाराज की सेवा में उपस्थित हो जायँगे।"

"परन्तु सेनापति तथा न्यायाधीश को साथ ले जाने की क्या आवश्यकता है ?"

"इसलिए कि वे भी राज्य-परिषद् के सदस्य हैं और यदि किसी प्रकार का निर्णय माँगा गया तो बहुमत आपके पक्ष में होगा।"

मरुणदत्त बहुमत के अपने पक्ष में होने की बात सुन अरुन्धति का मुख विस्मय में देखता रह गया। पश्चात् वह वस्त्र परिवर्तन कर, अपने रथ पर सवार हो, सेनापति तथा न्यायाधीश को साथ ले राज्यप्रासाद में जा पहुँचा। इन तीनों को वहाँ पहुँचकर, यह देख अति विस्मय हुआ कि पचास-साठ श्रावक राज्यप्रासाद के बाहर खड़े हैं और महाप्रभु का रथ भी एक ओर खड़ा है।

इन्होंने महाराज के पास अपने आने की सूचना भेजी तो महाराज ने इनको भीतर बुला लिया। महाप्रभु बादरायण, श्रावक सुनन्द और

नीलमणि कोपाध्यक्ष महाराज के पास पहले से ही उपस्थित थे। सेनापति इत्यादि के पहुँचने पर बृहद्रथ ने पूछ लिया, "सेनापति ने इस समय यहाँ आने का कष्ट कैसे किया है ?"

"ऐसा प्रतीत होता है महाराज !" सेनापति ने कहा, "कि राज्य-कार्य में हमारी सेवाओं की आवश्यकता नहीं रही। अतएव हम अपने-अपने पद से त्यागपत्र देने आये हैं।"

महाराज ने पूछ लिया, "आज क्या विशेष बात हो गई है, जो त्यागपत्र देने की स्थिति उत्पन्न हो गई है ?"

"महाराज ने महामात्य के पुत्र को बंदी बनाने की आज्ञा भेजी है। ऐसी आज्ञाएँ राज्य-परिषद् में विचार किये बिना नहीं दी जातीं।"

"यह इस कारण कि महामात्य के सुपुत्र राज्यद्रोह कर रहे हैं।"

"कौन कहता है ?" न्यायाधीश का प्रश्न था।

"यह सूचना महाप्रभु लाए हैं।"

"सूचना और प्रमाणित दो भिन्न-भिन्न बातें नहीं हैं क्या ? महाराज ! महाप्रभु को इस सूचना के लिए धन्यवाद दिया जा सकता है, परन्तु यह सूचना कितनी सत्य है, इसका ज्ञान तो न्यायाधीश द्वारा जाँच के पश्चात् ही किया जा सकता है।

"महाराज के राज्य में सूचना मिलते ही सत्य मानी जाने लगी है। इस कारण अब राज्य में न्यायाधीश तथा न्यायकर्ताओं की आवश्यकता नहीं रही प्रतीत होती।"

इस पर महाराज बृहद्रथ कहने लगे, "यह महाप्रभु का कहना है कि अपराधी को भाग जाने का अवसर नहीं देना चाहिये। इस कारण उसको तुरन्त बंदी बनाना उचित माना गया था। न्याय-अन्याय का पीछे विचार कर लिया जायगा।"

"तो ठीक है महाराज ! एक सूचना मैं आपको देता हूँ। महाप्रभु यह समझते हैं कि नवसेना का निर्माण श्रीमान् स्वयं कर रहे हैं और राज्य-परिषद् से इसको गुप्त रखा जा रहा है। यह इस कारण कि महाराज

हम सब को बंदी बनाकर सूली पर चढ़ा देना चाहते हैं।

"महाराज ! मैं जानता हूँ कि यह सूचना न केवल असत्य है, प्रत्युत महाराज का विरोध करने के लिए घड़ी गई है। अतः महाराज का विरोध करने वाले को बंदी बना लेना चाहिए, अन्यथा वह पाटलिपुत्र से भाग भी सकता है।"

"यह आपको किसने कहा है ?"

"महाप्रभु ने स्वयं बताया है। उन्होंने उस श्रावक को, जो डेमिट्रियस का पत्र लाया था कहीं छिपा रखा है। इस प्रकार अपने अपराध को छिपाने के लिए अन्याय और अयुक्तिसंगत व्यवहार अपना रहे हैं।"

इस पर सेनापति ने कहा, 'महाराज ! यह बात स्पष्ट है कि महाप्रभु और डेमिट्रियस में पत्र-व्यवहार चल रहा है। डेमिट्रियस ने मगध साम्राज्य पर *आक्रमण कर, इसके एक भाग को अपने अधीन कर लिया है। साम्राज्य* के ऐसे शत्रु से पत्र-व्यवहार करना तो क्षमा नहीं किया जा सकता।"

इस पर महाप्रभु ने अपनी सफाई देने के लिए कहा, "बौद्ध इस देश में बहुसंख्या में हैं। वे युद्ध पसन्द नहीं करते। वे शान्ति चाहते हैं और शान्तिमय उपायों में विश्वास रखते हैं। यदि इस नीति का अवलम्बन नहीं किया गया तो वे न केवल राज्य से पृथक् हो जायेंगे, प्रत्युत इन कार्यों में राज्य का विरोध भी करेंगे।"

न्यायाधीश ने कहा, "महाप्रभु के कथन को हम भ्रममूलक मानते हैं। प्रथम तो बौद्ध देश में बहुसंख्या में नहीं हैं। द्वितीय, प्रत्येक अवस्था में वे युद्ध का विरोध करेंगे, यह असत्य है। तृतीय, अल्प मत में बौद्ध किस प्रकार विरोध करेंगे, इसका न बताना भ्रम उत्पन्न करने के लिए है। मैं महाप्रभु से पूछना चाहता हूँ कि मान लो, महाराज युद्ध के लिए सेना को यवनों पर आक्रमण करने के लिए कहते हैं तो किस प्रकार इस आज्ञा का विरोध वे बौद्ध करेंगे ? क्या वे मार्ग तोड़ देंगे ? पुलों तथा *नदियों के बाँध तोड़कर सेना का मार्ग* अवरुद्ध कर देंगे अथवा लाठियाँ, खड्ग आदि शस्त्रास्त्र ले वे अपने देश की सेना से ही युद्ध करने पर उतर

आयेंगे ।

"मैं समझता हूँ कि जो कुछ ये महाराज को न करने के लिये कह रहे हैं, वही कुछ वे स्वयं महाराज का विरोध करने के लिए करने पर तैयार हो जायेंगे । शान्ति-शान्ति का पाठ रटने वाले ये अशान्तिमय व्यवहार के अपनाने में संकोच तक नहीं करेंगे ।"

न्यायाधीश जब अपना कथन समाप्त कर चुका तो अरुणदत्त ने कहा, "महाराज ! मैं यह प्रार्थना करने आया हूँ कि पुष्यमित्र के विरुद्ध आज्ञा पढ़ कर राज्य-परिषद् से सम्मति ले लें, जिससे इसके न्याययुक्त होने पर विचार हो जाय ।"

महाप्रभु का विचार था कि सदा की भाँति राज्य-परिषद् के तीन सदस्य एक ओर होंगे और तीन दूसरी ओर । पश्चात् अपना निर्णयात्मक मत देकर महाराज अपनी आज्ञा को उचित सिद्ध कर देंगे । इस कारण वह भी राज्य-परिषद् की सम्मति लेने के लिए तैयार हो गया ।

उसने कहा, "यदि महाराज को अपनी आज्ञा के औचित्य पर संदेह है, तो राज्य-परिषद् से परामर्श कर लें ।"

महाराज भी इसके लिए तैयार हो गए । अब न्यायाधीश ने पूछा, "मेरा निवेदन है कि इस आज्ञा का आधार क्या है, स्पष्ट किया जाये ।"

महाराज ने कहा, "महाप्रभु यह सूचना लाये हैं कि यह सेना पुष्यमित्र निर्माण कर रहा है ?"

"इस सूचना की जाँच होनी चाहिए ।" सेनापति का कहना था, "इस प्रकार की सूचना मात्र पर राज्य के महामात्य के सुपुत्र को बंदी बनाने की आज्ञा अनर्थकारी हो जाएगी । यह सूचना इतनी फूहर है कि सुनते ही अमान्य की जा सकती है । मैं महाप्रभु से पूछता हूँ कि कितने सैनिक भरती किए गए हैं इस नवीन सेना में ?"

"लगभग दो लक्ष ।" महाप्रभु ने उत्तर दिया ।

"इनकी शिक्षा पर तथा इनको अस्त्र-शस्त्र देने पर कितना व्यय होना संभव है । वह सब धन पुष्यमि[illegible] है क्या ?"

"संभव है यह धन राज्य के शत्रु से प्राप्त किया गया हो।"

"कौन हो सकता है मगध राज्य का शत्रु?"

"हेमिद्रिमस।"

"जिसके साथ महाप्रभु का पत्र-व्यवहार चल रहा है।"

महाप्रभु ने इसका उत्तर नहीं दिया। इस पर महाराज ने राज्य-परिषद् के सदस्यों की सम्मति माँगी। महाप्रभु और महाराज की आज्ञा के विपरीत कोषाध्यक्ष नीलमणि ने इस आज्ञा के विरुद्ध अपनी सम्मति दी। परिणामस्वरूप चार सदस्य एक ओर हो गये और महाप्रभु श्रावक सुनन्द के साथ अकेले रह गये।

महाप्रभु बादरायण यह समझते थे कि नीलमणि पुष्यमित्र के विरुद्ध सम्मति देगा, परन्तु नीलमणि ने स्पष्ट कह दिया, "पुष्यमित्र हमारे महामात्य का सुपुत्र है। उसके स्थान पर यदि कोई नीच-से-नीच प्रजा का बालक भी होता तो भी बिना पुष्ट प्रमाणों के बंदी बनाना तथा उसको दंड देना इस राज्य में नहीं होना चाहिए।"

यह बात तो पीछे पता चली कि जब सुभद्रा को पुष्यमित्र को बंदी बनाने की आज्ञा दी गई थी तो महाप्रभु महाराज को समझा रहे थे कि पुष्यमित्र को तुरन्त मृत्युदंड दे दिया जाय और महाराज इस बात के लिए लगभग तैयार हो गये थे।

तृतीय परिच्छेद

पाटलिपुत्र के नगर की प्राचीर के बाहर पद्मा विहार के पूजागृह में भगवान् तथागत् की कृष्ण पत्थर की मूर्ति के सम्मुख महाप्रभु बादरायण हाथों में पुष्प, पत्र लिये मूर्ति के चरणों में शीश झुकाए बैठे थे।

महाप्रभु अत्यन्त आर्द्र हृदय से भगवान् तथागत के चरणों में निवेदन कर रहे थे, "प्रभु ! जब तुमने प्रकाश दिया है, तो उसका प्रमाण भी दो। तुमने कहा था पंचशील का मार्ग ही सुख और शान्ति का मार्ग है, तो अब इस मार्ग पर चलते हुए सुख और शान्ति की उपलब्धि क्यों नहीं ? हे प्रभु ! पथभ्रष्टों का मार्ग-दर्शन करो। मानवता से विचलित मन को प्रेरणा देकर स्थिर कर दो। तुम्हारे त्याग और तपस्या की ज्योति सब मानवों के मन में जगमगा उठे और सब मानव एक-दूसरे के प्रति बन्धु-भाव रखें, हिंसा का मार्ग त्याग कर सहिष्णुता के मार्ग का अवलम्बन करें।"

जब महाप्रभु मन के उद्गार इस प्रकार प्रकट कर रहे थे, भवन में दो सौ श्रावक और कई सहस्र उपासक चिन्तन कर रहे थे। यह बौद्ध-उपासना थी। इसके पश्चात् चौथाई घड़ी-भर बौद्ध मंत्र का जाप हुआ और महाप्रभु ने पंचशील की व्याख्या आरम्भ कर दी। उन्होंने जातकों में से एक कथा सुना दी—

"एक बार भगवान् तथागत् के परमप्रिय शिष्य सुनन्द वैशाली से तुषार शैलभू की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक घना वन पड़ता था। मार्ग वन में से होकर जाता था। जब सुनन्द उस वन में प्रवेश करने लगे तो वन के तट पर रहने वाले गड़रियों ने भिक्षु सुनन्द को बताया कि वन

मे एक हिंसक सिंह रहता है। वह किसी भी मनुष्य को जीवित नही छोड़ता। उसको मनुष्य के मांस का स्वाद पड़ चुका है।

"भिक्षु सुनन्द एक बार तो अपने जीवन के लिए चिन्ता करने लगे। उनको सदेह हो गया कि उनमे शील का संचार अभी पूर्ण है अथवा नही। इस कारण वे रुक गये। परन्तु अगले ही क्षण उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि उन्होने कभी किसी का बुरा चिन्तन नही किया। उन्होने किसी को अपना शत्रु नही माना। उन्होंने मन, वचन तथा कर्म से किसी की हिंसा नहीं की। जब वे ऐसे हैं तो अब कोई उनका अकल्याण क्यो करेगा? इस प्रकार शील से ओत-प्रोत सुनन्द वन की ओर चल पड़े। गड़रियों ने पुन. उनको रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु सुनन्द ने उनसे कहा, 'मेरा हित चिन्तन करने वालो! मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। परन्तु जब मेरे मन मे किसी के प्रति द्वेष नही तो भला मुझसे कौन द्वेष करेगा?' इतना कह वे अपने पथ पर आगे बढ़ चले।

"इस मार्ग पर कठिनाई यह थी कि वन बहुत लम्बा-चौड़ा था। एक दिन मे वह पार नही किया जा सकता था। रात वन मे ही व्यतीत करनी पड़ती थी। सुनन्द का विचार था कि किसी वृक्ष पर चढ़ कर रात्रि व्यतीत कर लेंगे, परन्तु पुन उनके मन मे आया कि यह दुर्बलता है। एक दुर्बल मन तो अपने शील में अविश्वास का सूचक होता है। इस प्रकार वे अपने मन मे भगवान् तथागत् का चिन्तन करते हुए चलते गये।

"सायंकाल वे वन मे, एक नदी के किनारे बसेरा बनाकर, उस की भूमि पर लेट गये। दिन भर की यात्रा के कारण वे बहुत थके हुए थे, और जब वे सोये तो उनको करवट लेने की सुध नही रही।

"गड़रिये, जिन्होंने सुनन्द को वन मे जाने से मना किया था, अत्यन्त दुःखी थे। उनको पीछे पता चला कि सुनन्द भगवान के प्रिय शिष्य हैं, और निर्वाण-पथ पर बहुत दूर तक पहुँचे हुए हैं। वे विचार करने लगे कि उन्होंने उनको वन मे जाने देकर भूल की है। जब उनको अपनी भूल का ज्ञान हुआ तो वे अपने हाथों मे जलती हुई अग्नि-शिखाएँ

में सुनन्द की खोज पर चल पड़े। लगभग आधी रात्रि की खोज के पश्चात् वे उस नदी के तट पर पहुंचे, जहाँ सुनन्द विश्राम कर रहे थे।

"दूर से गडरियों ने सिंह की चमकती आँखों को देखा तो भय से थर-थर काँपने लगे। इस समय उनको स्मरण हो आया कि अग्नि के सम्मुख वन के पशु ठहर नहीं सकते। इस कारण वे एक-दूसरे के समीप हो, अपनी अग्नि-शिखाओं को तीव्र कर, उस चमकने वाली आँखों की ओर बढ़े।

"गडरियों ने दूर से देखा कि एक मनुष्य का शव भूमि पर सपाट पड़ा है और सिंह उस शव के समीप बैठा हुआ उनकी ओर देख रहा है। उन्होंने समझा कि सुनन्द की हत्या हो चुकी है और सिंह आखेट के मांस का रस-स्वादन कर रहा है। अतः सिंह को शव के पास से भगाने के लिए उन्होंने हल्ला करना आरम्भ कर दिया।

"उनके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब भिक्षु उनका नाद सुनकर उठ खड़े हुए। भिक्षु को जीवित देख और सिंह को शान्त हो समीप बैठा देख, वे आश्चर्यचकित रह गये।

"सुनन्द परिस्थिति को समझ गये। उनको भगवान् के पंचशील के सिद्धान्त पर अगाध श्रद्धा हो गई। उन्होंने सिंह की पीठ पर प्यार देकर कहा, 'भद्र ! अब जाओ।" सिंह उठा और नदी तट पर चलता हुआ दूर वन में विलीन हो गया।

"गडरिये सुनन्द को जीवित देख और सिंह के साथ कल्लोल करते देख एक स्वर में बोल उठे, 'भिक्षु महाराज की जय हो ! जय हो !!'

"सुनन्द ने देखा कि उनको तो व्यर्थ में शोभा मिल रही है। इस कारण उन्होंने सबको एकत्रित कर कहा, 'भगवान् तथागत् की जय हो। पंचशील की जय हो !! बौद्ध धर्म की जय हो !!'

"पश्चात् वे उन गडरियों को लिये हुए, बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि का गान करते हुए वन के मार्ग पर चल पड़े।"

यह कथा सुनाकर महाप्रभु ने कहा, "उपासकों तथा श्रावको ! आज मगध राज्य में हिंसा की भावना पुनः उत्पन्न हो गई है। एक भूले हुए बन्धु ने इस देश पर आक्रमण कर दिया है और इस भूल का उत्तर भूल से दिया जा रहा है। यह संसार में महा अनर्थ होने लगा है। इस अनर्थ को रोकने की हमारे पास शक्ति नहीं है। हम केवल यह कर सकते हैं कि अपने को इस हत्या-काड से पृथक् रखें।

"आज पाटलिपुत्र के दक्षिणी प्राचीर के बाहर विशाल मैदान में एक महान् सैनिक शिविर लगा हुआ है। उस शिविर में बीस सहस्र पुराने तथा दो लक्ष नवीन सैनिक एकत्रित हुए हैं।

"यह जानकर कि इतने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक एकत्रित हुए हैं, मेरा हृदय दुःख से भर आया है। उसमें से रक्त चू रहा है। परन्तु मैं पंचशील मे बँधा हुआ, किसी के विरुद्ध कुछ कर नहीं सकता। जिन सेट्ठियों ने इस सेना के निर्माण के लिए धन दिया है, सब-के-सब सहस्रों जन्म तक घोर नरक मे सतप्त रहेंगे। भगवान उनको सन्मार्ग दिखाएँ। उनके मन में पचशील का प्रकाश हो और वे इस कुमार्ग को त्याग कर भगवान की शरण में आवें।"

इस उपदेश के पश्चात् पुन बौद्ध-मन्त्र का गायन हुआ और उपासना समाप्त हुई।

सहस्रों उपासक तथा श्रावक, जो आज की उपासना मे एकत्रित थे, नगर के बाहर सेना एकत्रित देख, अत्यन्त दुःख अनुभव कर रहे थे। उपासना के पश्चात् जब वे वहाँ से वापिस लौटे तब भी उनके हृदय भारी थे। महाप्रभु ने वास्तविक समस्या का कोई सुझाव उपस्थित नहीं किया था।

जब पूजा-भवन उपासकों से रिक्त हो गया तो महाप्रभु ने श्रावकों को कहा, "नगर मे जाओ और महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार बुलाओ। आज सायंकाल से पूर्व जनता के मन मे राजा तथा राज्य मे चल रहे संघर्ष का निर्णय होने वाला है। राजा की जय का अर्थ है बौद्ध धर्म की इस कारण जाओ और नगर में एक बार सबके मुख पर भगवान्...

और उपासक महाराज बृहद्रथ की जयजयकार के स्वर भर दो ।"

: २ :

आज पूर्णिमा थी। पुष्यमित्र के आदेश पर नवीन सेना के दो लक्ष सैनिकों में से लगभग पौने दो लक्ष सैनिक बाहर शिविर में एकत्रित हो गये थे। इस शिविर का प्रबन्ध पुरानी सेना की वह टुकड़ी, जो पाटलिपुत्र में स्थित थी, कर रही थी। शिविर पर व्यय सेट्ठियों की वह समिति कर रही थी, जो पुष्यमित्र ने देश की रक्षार्थ बनाई थी।

जब सैनिक एकत्रित होने लगे तो सूचना महाराज के पास भी आ-पहुँची। राजभवन के प्रतिहारों के नायक ने महाराज के पास पहुँचकर सूचना दी, "महाराज ! आज नगर के बाहर बहुत बड़ा सैनिक-शिविर लगा हुआ है और वहाँ सैनिक भारी संख्या में एकत्रित हो रहे हैं। राज्य के चारों ओर से सैनिकों के झुंड-के-झुंड, और भी आ रहे हैं।"

"किस लिए एकत्रित हो रहे हैं ये ?"

"यह कहा जा रहा है कि महाराज अपने नवीन सैनिकों में सैनिक प्रतियोगिता का आयोजन कर रहे हैं। इसी निमित्त सभी सैनिक पाटलिपुत्र के बाहर शिविर लगा रहे हैं।"

महाराज को समझ आया तो उनके पाँव-तले से भूमि खिसक गई। एक बात तो वे समझ गये कि उस दिन तक बौद्ध-श्रावकों का व्यवहार अयुक्तिसंगत रहा है। उनके हृदय पर यह बात अंकित हो चुकी थी कि आक्रमण का विरोध करना उनका कर्तव्य था और इस कर्तव्यपालन में बौद्ध बाधा बन रहे थे। आज लक्ष-लक्ष सैनिक एकत्रित देख एक बार तो उनकी धमनियों में सुप्त क्षत्रिय रक्त जाग उठा।

महाराज बृहद्रथ ने इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सेनापति को बुला भेजा। जब सेनापति आया तो महाराज ने पूछा, "सेनापति ! आपने इस नवीन सेना के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए पन्द्रह दिन की अवधि माँगी थी ?"

"हाँ महाराज ! मेरी जाँच पूर्ण हो चुकी है। कल मैं पूर्ण सूचना

सेवा में उपस्थित करने के लिए आने वाला था ।"

"परन्तु सेना तो आपकी सूचना से पहिले ही यहाँ पहुँच गई है ।"

"मुझको महाराज ने उस सेना को यहाँ आने से रोकने के लिए आज्ञा नहीं दी थी । मुझको तो यह सेना, किसने और क्यों निर्माण की है, का *पता करने के लिए आज्ञा दी थी । यह कार्य मैंने पूर्ण कर लिया है ।"*

"परन्तु सेनापति ! देश में दूसरी सेना देख तुमने इसको तोड़ने का यत्न क्यों नहीं किया ?"

"इसलिए महाराज ! कि यह सेना दूसरी नहीं है । यह भी मगध-राज्य की सेना है और आपके अधीन है । इसलिए पुरानी तथा नवीन सेना में कोई भेद नहीं है । जैसे शरीर का एक हाथ दूसरे को काट नहीं सकता, वैसे ही देश की सेना का एक भाग दूसरे को तोड़ नहीं सकता ।"

"परन्तु यह हमारी आज्ञा से निर्माण नहीं हुई ।"

"इसके निर्माणकर्ताओं ने महाराज की आज्ञा की आवश्यकता नहीं समझी । उनका विचार है कि वे महाराज की आवश्यकताओं को महाराज से अधिक समझते हैं ।"

"महामूर्ख हैं वे । हम ऐसे व्यक्तियों को जो अपने को हमसे अधिक योग्य और बुद्धिमान मानते हैं, देश तथा राज्य के लिए घातक समझते हैं । इनको इस धृष्टता का दण्ड मिलना चाहिए ।"

"महाराज ! आप पुनः न्याय-व्यवस्था को अपने हाथ में ले रहे हैं । आप इन लोगों के विरुद्ध आरोप लगाकर इनको न्यायाधीन कर दीजिए । यह कार्य न्यायाधीश का है कि वह आपके आरोप को ठीक अथवा गलत समझे ।"

"परन्तु यह तो स्पष्ट है ही कि जो व्यक्ति राज्य की आवश्यकताओं को हमसे अधिक समझता है, वह हमको मूर्ख समझता है ।

"महाराज ! इससे यह तो सिद्ध नहीं होता । देखिए, मैं आपका सेनापति हूँ । आपकी सेना के विषय में मेरा ज्ञान आपसे अधिक है, परन्तु मैं आपको मूर्ख नहीं मान सकता । इसी प्रकार न्यायाधीश इन के

में आपसे अधिक ज्ञान रखते हैं, परन्तु वे आपको मूर्ख नहीं मानते।"

"परन्तु वह है कौन, जो मुझसे अधिक जानता है कि मुझको सेना-निर्माण की आवश्यकता है।"

"महाराज! देश भर में नागरिकों की एक समिति बनी है। इस समिति की शाखाएँ गाँव-गाँव नगर-नगर में खुल चुकी हैं। यह सेना उस समिति की शाखाओं ने निर्माण की है। उस समिति ने ही इन सैनिकों को पाटलिपुत्र में एकत्रित किया है और वह समिति कल एकम् के दिन इस सेना को महाराज की सेवा में भेंट करना चाहती है।"

महाराज वृहद्रथ इस प्रकार की भेंट का अर्थ समझने में लीन हो गया। वह अभी विचार कर ही रहा था कि सेनापति ने आगे कहा, "प्रजा, महाराज की सेवा में भेंट दिया ही करती है। नागरिकों की इस समिति ने यह सेना भेंट में देने के लिए निर्माण की है।"

वृहद्रथ समस्या का सुझाव इस प्रकार होता देख प्रसन्न था। इस कारण उसने पूछा, "तो ये लोग कब मिलने आयेंगे?"

"जब महाराज को अवकाश हो। उनकी इच्छा है कि कल मध्याह्नोत्तर आप उनको दर्शन दें और पश्चात् सेना के शिविर में पूर्ण सेना का निरीक्षण करने के लिए दिन के तीसरे प्रहर पधारें।"

"ठीक है। कल समिति के प्रमुख सदस्य यहाँ उपस्थित हों और पश्चात् हम, राज्य-परिषद् तथा उस समिति के सदस्यों सहित, सेना का निरीक्षण करेंगे। निरीक्षण के पश्चात् हम सेना को संबोधन भी करेंगे।"

इस वार्त्तालाप से सेनापति सन्तुष्ट हो, पुष्यमित्र को समाचार देने चला गया।

महाराज के भेंट स्वीकार करने को तैयार हो जाने ने सबको विस्मय में डाल दिया। अरुन्धति योजना में भारी हाथ ले रही थी। वह अब नागरिक समिति की सदस्या मानी जाती थी। वास्तव में महर्षि पतंजलि और उनके शिष्य-वर्ग सैनिकों की शिक्षा तथा उनमें बौद्धिक विकास के कार्यक्रम में बहुत भाग ले रहे थे।

इस समाचार से एक बार तो अरुन्धति स्तब्ध रह गई। पश्चात् विचार करने लगी कि महर्षि की योजना तो तब कार्यान्वित होती थी, जब महाराज भेंट स्वीकार करने से इन्कार कर देते। महाराज स्वयं ही पुष्यमित्र की योजना के अनुसार कार्य करने को तैयार हैं तो फिर महर्षि की योजना नहीं चलेगी। यह विचार कर उसने भी इस सूचना पर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर दी।

उस रात पुष्यमित्र स्वयं सेना का निरीक्षण कर रहा था। महर्षि के शिष्य पुष्यमित्र को लेकर पूर्ण शिविर में घूम गये। जहाँ-जहाँ भी पुष्यमित्र गया, महर्षि के शिष्यों ने यह घोषणा की—"राज पुरोहित पंडित अरुणदत्त के सुपुत्र पंडित पुष्यमित्र के कहने पर ही यह सेना निर्माण की गई है। पंडित पुष्यमित्र का यह कथन है कि नागरिक समिति ने यह सेना डेमित्रियस को देश से निकालने के लिए निर्माण की है।

"विदेशियों के आक्रमण से भारत के मुख पर कालख पुत गई है। इस कालख को धोने के लिये इस सेना का निर्माण हुआ है और यह निश्चय है कि शीघ्रातिशीघ्र यवनों पर आक्रमण कर, उनको देश से बाहर निकाल दिया जायगा।"

इस प्रकार पूर्ण शिविर में पुष्यमित्र को घुमाया गया और सैनिकों को उसकी आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया जाता रहा।

जब मध्य रात्रि के समय पुष्यमित्र विश्राम करने अपने घर पहुँचा तो अरुन्धति आगार में चली आई और पूछने लगी, "आर्य ने महाराज की इच्छा के विषय में सुना है क्या?"

"हाँ, सेनापति तथा पिता जी मिलकर कल के समारोह का कार्यक्रम बना रहे हैं।"

"ठीक है, उनको बनाने दीजिये। मैं तो यह जानना चाहती हूँ कि आपके कार्यक्रम में कुछ अन्तर पड़ा है क्या?"

"अवश्य पड़ेगा। नागरिकों की समिति के सदस्य यह चाहेंगे कि मैं उनका नेतृत्व करूँ।"

"आर्य से मेरा निवेदन है कि ऐसा न किया जाय।"

"क्यों ?"

"यह कार्य तो बच्चों का है। जिनकी बुद्धि अभी बच्चों की भांति अविकसित है, वे महाराज के दर्शन कर कृतकृत्य होंगे। आर्य तो इस प्रकार की बुद्धि नहीं रखते। मेरा विचार है कि आपका कार्य सैनिक-शिविर में है।"

पुष्यमित्र इसमें कोई युक्ति नहीं समझ सका। इस कारण पूछने लगा, "देवी का अभिप्राय क्या है ? मैंने नागरिकों से लक्ष-लक्ष स्वर्ण एकत्रित कर सेना पर व्यय किये हैं और इस समय उनका नेतृत्व करने से पीछे हट जाना एक प्रकार का द्रोह हो जायगा।"

अरुन्धति ने कह दिया, "मैं इसमें कोई युक्ति नहीं देना चाहती। इस पर भी मेरी आर्य से प्रार्थना है कि वे राज्य-प्रासाद में नागरिकों की समिति के साथ न जायँ। मैं इतना ही कह सकती हूँ कि अभी तक तो आर्य को मेरी सम्मति मानकर हानि नहीं उठानी पड़ी। इस बार भी हानि नहीं होगी।"

पुष्यमित्र को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके राज्य-प्रासाद में जाने में अरुन्धति किसी प्रकार के अनिष्ट की सम्भावना मान रही है।

अरुन्धति अपने आगार में लौट गई तो पुष्यमित्र सोने की तैयारी करने लगा। अभी सोया नहीं था कि किसी ने धीरे से द्वार खट-खटाया। खटखटाने के शब्द से पुष्यमित्र समझ गया कि शंखपाद है। अतएव पुष्यमित्र ने आगार में अन्धकार कर द्वार खोल दिया। शंखपाद भीतर आया तो भीतर से द्वार बन्द कर कहने लगा, "हम अभी-अभी महाराज से भेंट कर लौटे हैं। महाप्रभु रथ पर मुझको मेरे घर पर छोड़कर विहार को लौट गये हैं और मैं अवसर पा, इस ओर नवीन समाचार देने चला आया हूँ। कल कदाचित् मैं नहीं आ सकूँगा।"

"हाँ, क्या समाचार है शंखपाद ?"

"नागरिकों की समिति जब महाराज को सेना भेंट में देने जायगी, तो

सब सदस्य बन्दी बना लिये जायेंगे। यदि सेनापति, न्यायाधीश तथा महामात्य ने इसमें आपत्ति उठाई तो उनको भी बन्दी बना लिया जायगा।

"इसके लिए सब प्रबन्ध पूर्ण हो चुका है। राज्य-प्रासाद में दो सौ सुभट्ट महाराज की आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार खड़े रहेंगे।"

पुष्यमित्र इस सूचना पर अवाक् बैठा रह गया। शंखपाद अंधेरे में ही आगार का द्वार खोल बाहर निकल गया। पुष्यमित्र अरुन्धति की सूझ-बूझ पर चकित था।

रात-भर वह करवटें लेता रहा और विचार करता रहा। उसको बार-बार महर्षि के कथन का स्मरण आ रहा था कि सेना को राज्य-भक्त *बनाना है, राजभक्त नहीं।"*

पुष्यमित्र इसका अर्थ यह समझ रहा था कि राजा के विरुद्ध विप्लव खड़ा किया जाना चाहिए।

: ३ :

पुष्यमित्र ने अपने पिता तथा सेनापति को शंखपाद से प्राप्त सूचना नहीं बताई। न ही उसने यह बताया कि वह नागरिकों की समिति का नेतृत्व क्यों नहीं कर रहा।

वह स्नानादि कर पूजा से निवृत्त हो, सैनिक शिविर में जा पहुँचा। उसे सेना में भारी हलचल प्रतीत हुई। वह शिविर में स्थान-स्थान पर घूम रहा था और सैनिक उसको देख महाराज बृहद्रथ के स्थान उसकी *जय-जयकार कर उठते थे।*

एक सैनिक, जब वह सैनिक-शिविर में पहुंचा, तो उसका पथ-प्रदर्शक बन, उसके साथ साथ हो गया। लगभग पचास सैनिक उसके आगे-पीछे चलने लगे थे। इस प्रकार वह समझ रहा था कि उसकी सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जा रहा है।

पूर्ण सेना में घूम आने पर उसको विश्राम के लिये एक खेमे में ले जाया गया। वहाँ पहुँच, उसके पथ-प्रदर्शक ने कहा, "भगवन्! जलपान का प्रबन्ध है। आज्ञा हो तो मँगवाया जाये।"

पुष्यमित्र प्रातःकाल ही घर से चला आया था। प्रातः उसने जल-पान नहीं लिया था और अब इसकी आवश्यकता अनुभव कर रहा था। इस पर भी उसने अपने पथ-प्रदर्शक का परिचय प्राप्त करना आवश्यक समझा। उसने पूछा, "वीर! तुम कौन हो?"

"भगवन्! मेरा नाम कान्तमणि है। मैं ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न, महर्षि पतंजलि के आश्रम में शिक्षा पाकर इस नवीन सेना में भरती हो गया था। अब मैं यहाँ सेना-नायक हूँ।

"हमने पूर्ण सेना को बीस भागों में विभक्त कर दिया है। प्रत्येक भाग का एक-एक उप-सेनापति है। एक भाग में दस-दस विभाग हैं, जिन पर एक-एक सेना-नायक है। प्रत्येक विभाग में दस-दस टुकड़ियाँ हैं और प्रत्येक टुकड़ी एक-एक उप-नायक के अधीन है।

"एक-एक टुकड़ी में दस-दस मण्डलियाँ हैं, जिन पर मण्डलेश्वर हैं। इस प्रकार यह संगठन हमने कल ही पूर्ण किया है। हमारी नवीन सेना के सेनापति आप हैं। जब तक यह कार्य-भार आप किसी अन्य को नहीं देते, यह सारी सेना आपके अधीन रहेगी। सेना ने मुझे आपका अंग-रक्षक नियुक्त किया है।

"अब आप जैसा आदेश देंगे, सेना उसका पालन करेगी।"

"मेरी इच्छा है," पुष्यमित्र ने कहा, "मैं उप-सेनापतियों से मिलना चाहता हूँ।"

कान्तमणि ने ताली बजाई तो एक सैनिक भीतर आ गया। उसने उप-सेनापतियों को एकत्रित होने का आदेश भेज दिया।

जब सब आ गये तो जलपान के लिए आज्ञा हो गई। आहार लेते हुए पुष्यमित्र ने सेना को एकत्रित करने का उद्देश्य पुनः स्पष्ट करने के लिये कहा, "यह तो आपको विदित ही है कि सेना के निर्माण में हमारा क्या उद्देश्य है।

"भारत पर विधर्मियों तथा विदेशियों ने आक्रमण कर देश का एक बहुत बड़ा भूभाग अपने अधिकार में कर लिया है। हमने यह निश्चय

किया है कि उन विदेशियों को देश से बाहर निकाल, वह भूभाग पुनः अपने अधिकार में लेकर, इसको महाराज बृहद्रथ के राज्य में मिलायेंगे।

"परन्तु हमें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि महाराज बृहद्रथ यवनों से युद्ध करने में रुचि नहीं रखते। महाप्रभु बादरायण उनके परामर्श-दाता हैं और वह चाहते हैं कि डेमिट्रियस से सन्धि कर ली जाय अर्थात् उस भूभाग पर उसका अधिकार स्वीकार कर लिया जाय।

"ऐसी अवस्था में हमारी यह नवीन सेना, बिना महाराज के भी, उन विदेशियों को निकाल बाहर करेगी और यदि महाराज ने इसमें बाधा डाली तो महाराज को हटाकर उनके स्थान पर किसी अन्य को महाराज घोषित कर देगी। किसी भी अवस्था में हमारा, देश को स्वतन्त्र करने का प्रयास सफल होकर रहेगा। यह यात्रा अब रुक नहीं सकती और तब तक नहीं रुकेगी, जब तक यवन सिन्धु के पार नहीं कर दिये जाते। कोई भी व्यक्ति अथवा प्रलोभन अब हमको अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकता।"

इसके पश्चात् कान्तमणि ने सब उप-सेनापतियों का पुष्यमित्र से परिचय कराया। सब उप-सेनापतियों ने पुष्यमित्र का, अन्तिम समय तक साथ देने के लिए, वचन दिया।

मध्याह्न के समय जब पुष्यमित्र अपने घर पर पहुँचा तो उसको पता चला कि उसके पिता, सेनापति, कोषाध्यक्ष तथा न्यायाधीश नाग-रिक समिति के सदस्यों के साथ महाराज से भेंट करने जा चुके हैं।

सब लोग अति प्रसन्न मुद्रा में राज्य-प्रासाद को गये थे और आशा कर रहे थे कि आज से नया अध्याय आरम्भ होने जा रहा है। कदा-चित् अब शीघ्र ही महाराज यवनों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देंगे।

जब महामात्य इत्यादि राज्य-प्रासाद में पहुँचे तो उनको महाराज के सम्मुख उपस्थित कर दिया गया। सेनापति ने देखा कि महाप्रभु बादरायण तथा श्रावक सुतन्द पहले से ही उपस्थित हैं। महाराज एक उच्चासन पर विराजमान थे और उनके पीछे बीस सुभट्ट खड्ग धारण किये

उस आगार के बाहर, जहाँ महाराज से इनकी भेंट होनी थी, लगभग दो सौ सुभट्ट खड्ग धारण किये खड़े थे। सेनापति इनको देखकर यही समझा था कि महाराज की सवारी, जो राज्य-प्रासाद से चल कर सैनिक शिविर तक जाने वाली है, का प्रबन्ध किया गया है।

आज महाराज राज्य-परिषद् के सदस्यों के आने से पहले ही वहाँ विराजमान थे। अतः जब सब लोग आगार में प्रविष्ट हुए तो प्रणाम कर खड़े हो गये। जब तक महाराज का आदेश न हो, बैठने का प्रश्न ही नहीं उठता था। सेनापति को यह बात अखरी।

महाराज ने बिना किसी को बैठने का संकेत किये पूछना आरम्भ कर दिया। उन्होंने कहा, "मैं सब का परिचय चाहता हूँ।"

इस पर सेनापति ने खड़े-खड़े ही सेट्ठियों का परिचय कराना आरम्भ कर दिया। परिचय देकर उसने कहा, "महाराज ! जब राज्य ने प्रजा के संरक्षण से अपना हाथ खेंच लिया तो प्रजागण के मन में स्वरक्षा की भावना जागृत हो उठी। उस भावना के अनुरूप पहले पाटलिपुत्र और पश्चात् राज्य-भर के धनी-मानी सेट्ठियों ने एक समिति निर्माण की। उस समिति ने अपने सामने एक उद्देश्य निश्चय किया कि आपके इस राज्य को इतना सुदृढ़ कर दिया जाय, जिससे उनके धन, सम्पदा तथा स्त्री-वर्ग की रक्षा की जा सके।

"इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होंने धन एकत्रित किया और पश्चात् देश के युवकों को सैनिक-शिक्षा देने का कार्यक्रम बनाया। देश में दो लक्ष से अधिक युवकों ने अपने धर्म तथा जाति की रक्षा के लिए अपनी सेवाएँ अवैतनिक देनी स्वीकार कीं। समिति के कोष में से केवल शस्त्रास्त्रों तथा गणवेश के लिए धन व्यय किया गया है तथा आज के उत्सव-कार्य पर व्यय किया जा रहा है।

"अब समिति के सदस्य महाराज की सेवा में उपस्थित हो, देश तथा धर्म के उद्धार के लिये, यह सेना महाराज की सेवा में भेंट स्वरूप देते हैं। सैनिकों का यह निश्चय है कि युद्ध-काल में कोई कुछ भी वेतन

निमित्त ग्रहण नहीं करेगा और इस समिति का यह निश्चय है कि इस युद्ध पर जो कुछ भी व्यय होगा, अपने कोष में से व्यय करेगी।"

इतना कह सेनापति चुप कर गया। अभी तक राज्य-परिषद् के सभी सदस्य तथा समिति के सदस्य खड़े थे और उनको बैठने का संकेत नहीं किया गया था। इस कारण सभी अपमानित-सा अनुभव कर रहे थे। सेनापति को तो क्रोध आ रहा था, परन्तु वह अपने ऊपर नियंत्रण रखे हुए था।

सेनापति के चुप करने पर, सेठियों में से एक वृद्धजन ने, एक स्वर्ण थाल में, चाँदी के पत्रे पर लिखी भेंट महाराज के चरणों पर रख दी। सब आशा करते थे कि महाराज उठकर यह भेंट स्वीकार करेंगे, परन्तु महाराज ने हाथ नहीं बढ़ाये।

बृहद्रथ दुविधा में फँसा हुआ था। वह समझता था कि यह अवसर है जब एक भी टका व्यय किये बिना युद्ध चलाया जा सकता है। जहाँ तक हिंसा का प्रश्न था, सब सैनिक स्वेच्छा से सेना में भरती हुए थे। अतएव उनसे की जाने वाली हिंसा का वह भागी नहीं होगा। इस कारण उसका मन कह रहा था कि इस भेंट को स्वीकार कर ले। परन्तु उसका बादरायण से वार्तालाप हुआ था और उनमें परस्पर यह निश्चय हो चुका था कि सेना युद्ध के लिए स्वीकार नहीं की जायगी। भेंट में सेना स्वीकार करने पर इसका विघटन कर दिया जायगा।

इसी दुविधा में फँसा हुआ बृहद्रथ चुप बैठा था। इस पर महाप्रभु बादरायण कहने लगे, "महाराज अपनी प्रजा के मन में अपने प्रति इतनी श्रद्धा तथा भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए हैं। वे ऐसी प्रजा को पाकर अपने को कृत-कृत्य मानते हैं।

"महाराज आपकी इस भेंट को सहर्ष स्वीकार करते हैं और यह घोषणा करते हैं कि इस नागरिक समिति के सब सदस्यों को धर्मभूषण की उपाधि से विभूषित किया जायगा।

"एक बात महाराज अभी से स्पष्ट कर देना चाहते हैं

उस आगार के बाहर, जहाँ महाराज से इनकी भेंट होनी थी, लगभग दो सौ सुभट्ट खड्ग धारण किये खड़े थे। सेनापति इनको देखकर यही समझा था कि महाराज की सवारी, जो राज्य-प्रासाद से चल कर सैनिक शिविर तक जाने वाली है, का प्रबन्ध किया गया है।

आज महाराज राज्य-परिषद् के सदस्यों के आने से पहले ही वहाँ विराजमान थे। अतः जब सब लोग आगार में प्रविष्ट हुए तो प्रणाम कर खड़े हो गये। जब तक महाराज का आदेश न हो, बैठने का प्रश्न ही नहीं उठता था। सेनापति को यह बात अखरी।

महाराज ने बिना किसी को बैठने का संकेत किये पूछना आरम्भ कर दिया। उन्होंने कहा, "मैं सब का परिचय चाहता हूँ।"

इस पर सेनापति ने खड़े-खड़े ही सेट्ठियों का परिचय कराना आरम्भ कर दिया। परिचय देकर उसने कहा, "महाराज! जब राज्य ने प्रजा के संरक्षण से अपना हाथ खेंच लिया तो प्रजागण के मन में स्वरक्षा की भावना जागृत हो उठी। उस भावना के अनुरूप पहले पाटलिपुत्र और पश्चात् राज्य-भर के धनी-मानी सेट्ठियों ने एक समिति निर्माण की। उस समिति ने अपने सामने एक उद्देश्य निश्चय किया कि आपके इस राज्य को इतना सुदृढ़ कर दिया जाय, जिससे उनके धन, सम्पदा तथा स्त्री-वर्ग की रक्षा की जा सके।

"इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होंने धन एकत्रित किया और पश्चात् देश के युवकों को सैनिक-शिक्षा देने का कार्यक्रम बनाया। देश में दो लक्ष से अधिक युवकों ने अपने धर्म तथा जाति की रक्षा के लिए अपनी सेवाएँ अवैतनिक देनी स्वीकार कीं।' समिति के कोष में से केवल शस्त्रास्त्रों तथा गणवेश के लिए धन व्यय किया गया है तथा आज के उत्सव-कार्य पर व्यय किया जा रहा है।

"अब समिति के सदस्य महाराज की सेवा में उपस्थित हो, देश तथा धर्म के उद्धार के लिये, यह सेना महाराज की सेवा में भेंट स्वरूप देते हैं। सैनिकों का यह निश्चय है कि युद्ध-काल में कोई कुछ भी वेतन

नमित ग्रहण नहीं करेगा और इस समिति का यह निश्चय है कि इस द्ध पर जो कुछ भी व्यय होगा, अपने कोष में से व्यय करेगी।"

इतना कह सेनापति चुप कर गया। अभी तक राज्य-परिषद् के भी सदस्य तथा समिति के सदस्य खड़े थे और उनको बैठने का संकेत नहीं किया गया था। इस कारण सभी अपमानित-सा अनुभव कर रहे थे। सेनापति को तो क्रोध आ रहा था, परन्तु वह अपने ऊपर नियंत्रण रखे हुए था।

सेनापति के चुप करने पर, सेठियों में से एक वृद्धजन ने, एक स्वर्ण थाल में, चाँदी के पत्रे पर लिखी भेंट महाराज के चरणों पर रख दी। सब आशा करते थे कि महाराज उठकर यह भेंट स्वीकार करेंगे, परन्तु महाराज ने हाथ नहीं बढ़ाये।

वृहद्रथ दुविधा में फँसा हुआ था। वह समझता था कि यह अवसर है जब एक भी टका व्यय किये बिना युद्ध चलाया जा सकता है। जहाँ तक हिंसा का प्रश्न था, सब सैनिक स्वेच्छा से सेना में भरती हुए थे। अतएव उनसे की जाने वाली हिंसा का वह भागी नहीं होगा। इस कारण उसका मन कह रहा था कि इस भेंट को स्वीकार कर ले। परन्तु उसका बादरायण से वार्तालाप हुआ था और उनमें परस्पर यह निश्चय हो चुका था कि सेना युद्ध के लिए स्वीकार नहीं की जायगी। भेंट में सेना स्वीकार करने पर इसका विघटन कर दिया जायगा।

इसी दुविधा में फँसा हुआ वृहद्रथ चुप बैठा था। इस पर महाप्रभु बादरायण कहने लगे, "महाराज अपनी प्रजा के मन में अपने प्रति इतनी श्रद्धा तथा भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए हैं। वे ऐसी प्रजा को पाकर अपने को कृत-कृत्य मानते हैं।

"महाराज आपकी इस भेंट को सहर्ष स्वीकार करते हैं और यह घोषणा करते हैं कि इस नागरिक समिति के सब सदस्यों को पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित किया जायगा।

"एक बात महाराज अभी से स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि समर की

आज्ञा देनी अथवा न देनी उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। इस भेंट को स्वीकार कर वे इसका क्या प्रयोग करेंगे, यह महाराज सेना-शिविर में, सैनिकों के समक्ष प्रकट करेंगे।"

इस पर वह सेट्ठी, जिसने स्वर्ण थाल में भेंट-पत्र महाराज के चरणों में रखा था, झुककर हाथ जोड़ कहने लगा, "महाराज की जय हो! एक बात मैं अपनी समिति की ओर से निवेदन करना चाहता हूँ कि यह भेंट एक विशेष कार्य-निमित्त की गई है। इस भेंट में दो लक्ष मगध राज्य के युवकों ने अपना जीवन निछावर करना स्वीकार किया है। एक सौ लक्ष स्वर्ण-मुद्रा इस पर व्यय की जा चुकी हैं और इससे भी अधिक समर पर व्यय करने के लिए एकत्रित की गई हैं। इतना कुछ हम प्रजा-गण एक कार्य-विशेष के लिए महाराज के अर्पण कर रहे हैं।

"यह कार्य यवनों को देश से निकाल, अपनी प्रजा के धन, जन तथा स्त्री-वर्ग की रक्षा करना है।"

अब महाराज वृहद्रथ कहने लगे, "इसका अर्थ यह हुआ कि इस भेंट के साथ यह शर्त लगाई जा रही है कि अमुक कार्य के लिए ही यह सेना हमारे अधीन की जायेगी।"

"हाँ महाराज! यह हम स्वेच्छा से, परन्तु कार्य-विशेष के लिए, दे रहे हैं। यह कर के रूप में नहीं है। यह भेंट है।"

"हम अपने अधीनस्थों की इस प्रकार की आज्ञा से अपना अपमान समझते हैं।"

इस पर सेनापति, जो वृहद्रथ की इस उद्दण्डता पर क्रोध से उतावला हो रहा था, कहने लगा, "इस अवस्था में मेरा महाराज से निवेदन है कि वे इस भेंट को स्वीकार न करें।"

"परन्तु सेनापति! एक ही राज्य में दो सेना नहीं रह सकतीं। जिन्होंने यह दूसरी सेना निर्माण की है, देशद्रोह किया है। हम उनको दण्ड देने वाले हैं।"

"महाराज! देश में सेना एक है, दो नहीं। ये सेनायें परस्पर

विरोधी नहीं हैं। इस प्रकार यह सेना का परिवर्द्धन-मात्र ही है।"

"हम ऐसा नहीं समझते।"

"तो आपको समझना होगा।"

"तुम हमको समझाओगे? मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम सबको बन्दी बना लिया जाय।"

इस समय वे सुभट्ट, जो उस आगार में खड़े थे, अपने खड्ग नग्न कर सभी सदस्यों को, चारों ओर से, घेर कर खड़े हो गये। आगार के बाहर से लगभग एक सौ सुभट्ट बन्दी बनाने के लिए भीतर आ गये। सब सदस्यों को रस्सी से बाँधा जाने लगा।

इस समय महाप्रभु ने नीलमणि कोषाध्यक्ष से कहा, "आप तो इस षड्यन्त्र में सम्मिलित नहीं। आप एक ओर हो जायँ।"

"नहीं महाप्रभु! मेरा स्थान यहीं है। मैं अपने भाई-बान्धवों के साथ ही रहना चाहता हूँ।"

इस प्रकार सबको रस्सों में बाँध कर राज्य-प्रासाद के एक आगार में बन्द कर दिया गया।

इतना कुछ हो चुकने पर, महाराज ने महाप्रभु से पूछा कि अब क्या करना चाहिए। महाप्रभु ने कहा, "महाराज! हमको भोजन कर तीसरे प्रहर सेना-शिविर मे जाना चाहिए और वहाँ जाकर सेना-विघटन की आज्ञा दे देनी चाहिए।"

"क्या यह आज्ञा यहाँ से नहीं भेजी जा सकती।"

"आज्ञा तो भेजी जा सकती है, परन्तु उसके पालन होने की सम्भावना कम है।"

"तो हम चलेंगे।"

: ४ :

यह सूचना कि राजपुरोहित इत्यादि सभी लोग बन्दी बना लिये गए हैं, पुष्यमित्र के पास महाराज से पहले जा पहुँची। पुष्यमित्र भोजन कर शिविर में पहुँचा ही था कि शंखपाद का एक सेवक यह सूचना लेकर आ

गया। पुष्यमित्र समझ गया कि कार्य आरम्भ करने का समय आ पहुँचा है। उसने उसी समय एक उप-सेनापति को बुला कर आदेश दिया कि अपने साथ एक सहस्र सैनिक ले जाकर राज्य-प्रासाद पर आक्रमण कर बन्दियों को छुड़ा लिया जावे। उनके इस कार्य में कोई भी बाधा खड़ी करे, तो उसको मृत्यु के घाट उतार दिया जाय।

पुष्यमित्र ने एक अन्य उप-सेनापति के अधीन दस सहस्र सैनिक नगर में शान्ति स्थापित रखने के लिए भेज दिए।

पुष्यमित्र का विचार था कि महाराज बन्दियों को छुड़ाए जाने का विरोध करेंगे और वे, कदाचित् वहीं, मृत्यु के घाट उतार दिए जावेंगे। परन्तु ऐसा हुआ नहीं।

महाराज वृहद्रथ, महाप्रभु तथा लगभग एक सौ सुभट्टों के साथ सेना-शिविर की ओर प्रस्थान कर चुके थे। सैनिक, जिस मार्ग से राज्य-प्रासाद की ओर गये थे, वह सीधा मार्ग था और महाराज नगर में घूम-घुमाव कर, आ रहे थे, इस कारण मार्ग में भी भेंट नहीं हो सकी। जिस समय पुष्यमित्र के भेजे सैनिक राज्य-प्रासाद पर पहुँचे, महाराज सैनिक शिविर में आ पहुँचे थे।

पुष्यमित्र महाराज को आया देख, उनके स्वागत के लिए आगे बढ़ा और नमस्कार कर महाराज को साथ ले मंच पर चढ़ गया। इस समय पूर्ण सेना, नवीन तथा पुरानी, मंच के सम्मुख पंक्तिवद्ध खड़ी थी। यह निश्चय हुआ था कि पुष्यमित्र का अँगरक्षक कान्तमणि, महाराज के पधारने पर महाराज का जयघोष करेगा, परन्तु कान्तमणि ने महाराज के मंच पर चढ़ते ही, पुष्यमित्र की जयघोष कर दी।

इस जयघोष के होते ही सैनिकों की दो टुकड़ियाँ मंच को चारों ओर से घेर कर खड़ी हो गयीं और उन सुभट्टों को, जो महाराज के साथ आये थे, धकेल कर पीछे हटा दिया गया।

पुष्यमित्र के जयघोष बुलाने का सेना को इतना अभ्यास हो चुका था कि किसी को भी यह अस्वाभाविक प्रतीत नहीं हुआ। परन्तु महा-

राज बृहद्रथ के लिए यह एक नवीन बात थी। उन्होंने घूमकर महाप्रभु से, जो उनके पीछे एक प्रासन पर बैठे थे, पूछ लिया "यह किसकी जय-जयकार बुलाई जा रही है ?"

इसका उत्तर शंखपाद ने, जो महाप्रभु के साथ-साथ प्रारम्भ से ही रहा था, दिया, "इस सेना के सेनापति की।"

"कौन है वह ?"

पुष्यमित्र ने गर्दन सीधी कर कहा, यह पद सेना ने मुझको प्रदान किया है।"

"हम इस सेना का विघटन करने आये हैं।"

"तो कर दीजिये महाराज! यह सेना आपने एकत्रित नहीं की। अतएव इस विषय में यह आपकी आज्ञा नहीं मानेगी।"

"क्या कहा? हम आज्ञा देते हैं कि इस विद्रोही को पकड़ लो।"

परन्तु सुभट्ट, जो महाराज के साथ आए थे, दूर हटाये जा चुके थे। महाराज के साथ केवल महाप्रभु बादरायण, भिक्षु सुनन्द तथा शंखपाद था। इसके विरोध में पचास सैनिक खड्ग नग्न किए पुष्यमित्र की प्रत्येक प्रकार से रक्षा करने के लिए तैयार खड़े थे। अतः किसी को साहस नहीं हुआ कि पुष्यमित्र की ओर पग बढ़ाये।

इस समय पुष्यमित्र ने सैनिकों को संबोधन कर कहना प्रारम्भ कर दिया। उसने कहा, "वीर सैनिको! आज मध्याह्न पूर्व नागरिक सुरक्षा समिति के सदस्य तथा महामात्य, सेनापति विद्रुम आदि राज्य सभा के सदस्य मौर्य वंशीय महाराज बृहद्रथ के पास पहुँचे थे और यह सेना भेंट-स्वरूप उनको समर्पित करना चाहते थे। वे लोग चाहते थे कि महाराज इस सेना की सहायता से देश-रक्षा का कार्य सम्पन्न कर सकें। परन्तु महाराज ने यह कार्य करना न केवल अस्वीकार किया, प्रत्युत हमारे उन नेताओं को बंदी बना लिया और अब यहाँ सेना का विघटन करने उपस्थित हुए हैं।

"इस सेना ने मुझको अपना सेनापति नियुक्त किया है। अब

राज ने इस भेंट को अस्वीकार कर दिया है, तो इनका इस सेना पर कोई अधिकार नहीं रहा। अतएव उनकी यह आज्ञा कि सेना विघटित की जावे, कुछ अर्थ नहीं रखती।

"यह सेना एक कार्य-विशेष के लिए एकत्रित हुई है। अतएव उस कार्य को सम्पन्न करने के विषय में महाराज वृहद्रथ से मैं पूछता हूँ कि उनको इसमें क्या आपत्ति है?"

"हम इस सेना का विघटन चाहते हैं। इसी में हम देश का कल्याण समझते हैं।"

"तो मैं सेना का कार्य सम्पन्न करने के लिए आज्ञा देता हूँ कि महाराज तथा उनके साथ आये सभी व्यक्ति वंदी बना लिए जायें।"

मंच के नीचे, सुभट्टों में और नवीन सैनिकों में एक साधारण सा संघर्ष हुआ, जो कुछ ही क्षणों में समाप्त हो गया। अधिकांश सुभट्ट मार डाले गये, शेष वंदी बना लिए गये।

महाराज ने जब देखा कोई भी सहायक वहाँ नहीं है तो, वहाँ से भाग खड़े हुए; परन्तु पुष्यमित्र के अंगरक्षक कान्तमणि ने उन्हें पकड़ लिया। इस पर दोनों ओर से खड्ग निकल आये। महाराज ने तो कभी खड्ग चलाया तक नहीं था, इस कारण एक ही वार में उनका सिर पृथक हो पुष्यमित्र के चरणों में गिर पड़ा।

इसी समय कान्तमणि ने पुष्यमित्र का जयघोष कर दिया। यह जयघोष बार-बार किया गया, जिससे वृहद्रथ की हत्या का किसी पर प्रभाव न पड़े। पूर्ण सेना मंच पर हो रहे नाटक को देख रही थी। इस नाटक का अर्थ समझाने के लिए पुष्यमित्र ने कहना आरम्भ किया, आज मौर्यवंश का पाटलिपुत्र पर राज्य समाप्त होता है। मगध की प्रजा अब जागृत हो उठी है और देश को विदेशियों से मुक्त करने का कार्य आरम्भ करती है। हम शीघ्र ही सेना को समर के लिए ले चलेंगे और हमको विश्वास है कि मगध के सैनिक मगध के राज्य की सीमा को सिन्धु नदी तक ले जाकर साँस लेंगे।

"अब प्रभात हो चुका है। रात्रि का अन्धकार समाप्त हुआ। भारत की उज्ज्वल जगमगाती ज्योति पुनः संसार में जगमग कर उठेगी, और इसको देख दुष्ट पापियों की आँखें चुँधिया जायेंगी।"

जब पुष्यमित्र सैनिकों को सम्बोधन कर रहा था, महाप्रभु बादरायण, यह देख कि किसी ने उनको पकड़ा नहीं, मंच से उतर सेना-क्षेत्र से बाहर की ओर चल पड़ा। उनके साथ भिक्षु सुगन्द भी था। जब दोनों सैनिक क्षेत्र से बाहर निकले तो पाँच सैनिक उनके साथ-साथ हो लिए। इस पर महाप्रभु ने पूछा, हमारे साथ किस लिए आ रहे हो?"

"आपको सुरक्षा के साथ विहार में पहुँचाने के लिए हम आपके साथ चल रहे हैं। यह इन भगवे वस्त्रों के मान-स्वरूप है।"

इस समय पुष्यमित्र ने अपना वक्तव्य समाप्त करने के लिए कहा, "हमको शीघ्र ही नवीन मगध-सम्राट् का चुनाव करना है। अभी तो अस्थायी प्रबन्ध किया जायगा। जब तक देश को आततायियों से रिक्त नहीं किया जाता, तब तक सेना राज्य को अपने हाथ में रखेगी।

"सेना राज्य का किस प्रकार संचालन करती है, यह आपको कल तक सूचित कर दिया जायगा।"

५ :

सेनापति विद्रुम, पुष्यमित्र दोनों उप-सेनापति, चार राज्य-परिषद् के सदस्य और दस नागरिक [illegible] समिति के सदस्य राजपुरोहित धरणदत्त के घर पर एकत्रित [illegible] विचार करने लगे कि बृहद्रथ की मृत्यु के पश्चात् राज्य का कार्य कैसे चलाया जाय। अभी वार्तालाप चल ही रहा था कि महर्षि पतञ्जलि वहाँ आ पहुँचे।

महर्षि को इस समय वहाँ पहुँचते देख पुष्यमित्र तथा पंडित धरणदत्त को यह समझने में विलम्ब नहीं लगा कि पूर्ण घटना-चक्र को चलाने वाले महर्षि ही हैं।

गृहपति महर्षि को लिये हुए सभा में पहुँचे तो सब लोग नमस्कार करने के लिये उठ खड़े हुए। दोनों उप सेनापतियों में से

तो उनके नित्य ही थे । नागरिक समिति में अधिकांश सदस्य उनके सक्रिय सहयोग से परिचित थे ।

महर्षि जी ने हंसते हुए कहा, "मुझको आने में कुछ विलम्ब हो गया है । परन्तु जो कुछ हुआ है, भगवदिच्छा से हुआ है । मनुष्य तो उस इच्छा के सम्मुख पानी में तिनके के समान ही है ।

"मैं समझता हूँ कि एक वर्ष के युद्धत्यागी, अपने को सम्राट् कहने वाले भीरु, मूर्ख के भार से पृथ्वी के मुक्त होने पर शोक की आवश्यकता नहीं ।

"मगध राज्य की सीमा पर शत्रु एक विशाल सेना लिए खड़ा है । हमको यह बात समझ कर राज्य के भीतर का और पश्चात् बाहर का प्रबन्ध करना है । इस कारण कुछ अधिक वाद विवाद किये बिना हमको अस्थाई रूप में मगध का शासक नियुक्त कर लेना चाहिये । पश्चात् राज्य के भीतर शान्ति-व्यवस्था कर कौशाम्बी पर आक्रमण कर देना चाहिए"

इस प्रकार कार्य की रूपरेखा बता महर्षि ने मगध का अस्थाई शासक पुष्यमित्र को नियुक्त करने का प्रस्ताव रख दिया । उन्होंने कहा कि अभी शासक को सम्राट् की पदवी नहीं दी जायगी । मेरी इच्छा है कि जब तक देश की एक अंगुष्ठ-भर भूमि भी विधर्मियों के अधीन है, तब तक राज्याभिषेक का उत्सव नहीं मनाना चाहिये ।"

इस प्रस्ताव के स्वीकार होते ही मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति की गई । पण्डित भरणदत्त महामात्य, विद्रुम सेनापति, नीलमणि कोषाध्यक्ष, महाकान्त न्यायाधीश, धनगुप्तराज व्यापार मन्त्री और सोमभद्र धर्माधीश के साथ मन्त्री-मण्डल पूर्ण कर लिया गया ।

इसके अतिरिक्त एक राज्य-सभा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रतिनिधियों से निर्माण की गई । राज्य-सभा को देशहित से योजनाओं पर विचार करने का अधिकार दे दिया गया ।

मध्य रात्रि तक यह संगठन-योजनाओं पर विचार-विनिमय चलता रहा । पश्चात् सब विश्रामार्थ अपने-अपने निवास स्थानों को चले गये । महर्षि पतंजलि का महामात्य भरणदत्त के गृह पर ही ठहरने का प्रबन्ध

कर दिया गया ।

महर्षि दर्शन के लिये दरबार में गये तो बृहस्पति भी उनके आगार में जा पहुँचे । महर्षि ने उसे सम्मुख देख पूछा, "बृहस्पति ! जिस कार्य के लिए तुम यहाँ आये थे, वह कहाँ तक पहुँचा है ?"

"भगवन् ! उसकी सफलता तो आप स्वयं देख चुके हैं । मगध में नया प्रभात हुआ है । यहाँ एक नवीन राज्य-परिवार की नींव पड़ गई है और आपकी कृपा से यह कार्य बहुत ही कम रक्तपात के साथ सम्पन्न हुआ है

"मौर्य-शिरोमणि चन्द्रगुप्त को नन्दों की हत्या करनी पड़ी थी और सहस्रों राज्य के भक्तों का इस यज्ञ में होम करना पड़ा था ।

"जब अशोक राजगद्दी पर बैठा था, तो अपने पूर्ण परिवार को मृत्यु के घाट उतार कर ही ऐसा कर सका था ।

"आज तो भारतवर्ष में क्रान्ति हुई है न्यूनातिन्यून रक्तपात से । सबसे बड़ी बात यह है कि क्रान्ति करने वाला अपने लिये कुछ नहीं चाहता । वह देश तथा जाति के लिये यह सब कुछ कर रहा है । आपने उसको शासक बनाया है और वह इस समय से ही राज्य कार्य के चक्के में पिसने लगा है ।"

"परन्तु यह सब कुछ हमें विदित नहीं क्या ? मैं तो अपनी पुत्री मन्मथि के अपने कार्य के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ ।"

"ओह ! तो महर्षिजी इस तुच्छ जीव के मनोविकारों के विषय में जानना चाहते हैं ? भगवन् ! मेरे हृदय के सकल्प तो पहिले से भी अधिक दृढ़ हो चुके हैं । मैंने अपना सर्वस्व अपने देवता के चरणों में अर्पित कर दिया है । इस पर भी देवता तो पत्थर के बने ही प्रतीत होते हैं ।"

के शासक अपने मन की बात बतायेंगे थोड़े ही। मैंने तो निवेदन किया है न कि वे निर्मम पत्थर की मूर्त्ति के समान ही सदा बने रहते हैं।"

"अच्छी बात है। हम अपनी पुत्री की इस विषय में सहायता के उपाय पर विचार करेंगे। अब जाओ, सो रहो।"

अगले दिन अरुन्धति स्नानादि से निवृत्त हो पूजा पर बैठने लगी थी कि पुष्यमित्र ने पूजा के आगार के बाहर आकर पूछा, "देवी अरुन्धति से एक आवश्यक कार्य के लिये परामर्श लेना है। किस समय अवकाश होगा देवी को ?"

"यदि तुरन्त आवश्यकता न हो तो मैं दो घड़ी-भर में सेवा में उपस्थित हो सकूंगी।"

"ठीक है। अल्पाहार से पूर्व देवी के दर्शन करना चाहूँगा।"

अरुन्धति पूजा-उपासना से अवकाश पा पुष्यमित्र के आगार में जा पहुँची। पुष्यमित्र अपने पिता से बात कर रहा था। वह कह रहा था, "मगध के महामात्य को सबसे पहिले राज्य के शासक के योग्य भवन का प्रबन्ध करना होगा। कार्य इतना बढ़ जायगा कि इस छोटे से गृह में कठिनाई और असुविधा होगी।"

अरुणदत्त का कहना था, "मैं राज्य भवन को जा रहा हूँ। वहाँ जाकर बृहद्रथ की रानियों के विषय में कुछ निश्चय करना चाहता हूँ। यदि वे जीवन-भर विधवा के रूप में रहना चाहें तो उनके लिए निर्वाह का प्रबन्ध करना होगा। इतना तो होगा ही कि उनको राज्यभवन छोड़ना होगा। राज्य-प्रासाद मगध के शासक के लिए ही उचित है। उस राज्य-प्रासाद में एक सौ बीस आगार हैं। उनमें से दस आगारों में तो भवन-रक्षक रहते हैं। लगभग पचास आगार बौद्ध-उपासना तथा भिक्षुओं के लिए निश्चित हैं। उनको खाली करवा कर, वहाँ शासक का कार्यालय बना दिया जायगा। बीस आगार राज्य के शासक के लिए हैं। कुछ अन्य आगार हैं, जो मन्त्रीगण तथा महामात्य के प्रयोग में लाये जायंगे।"

"ठीक है पिताजी ! यह कार्य आज ही पूर्ण हो जाना चाहिये जिससे

एक- दो दिन में वहाँ जाकर हम अपने कार्य में जुट जायें।"

महामात्य गया तो अरुन्धति ने पूछ लिया, "आर्य ने स्मरण किया था ?"

"मुझको एक कार्य के लिये योग्य अधिकारी नहीं मिल रहा। पिछले पचास वर्षों से गुप्तचर विभाग की अवहेलना की जा रही है। मेरा अनुभव है कि इस विभाग के सुधारे बिना राज्य-कार्य सुचारु-रूप से चल नहीं सकता। अपने इस छोटे-से संघर्ष में, जो हमने राज्य को दुर्बल हाथों से निकालने में किया है, गुप्तचर विभाग का कार्य कितना सहायक हुआ है, वह मैं ही जानता हूँ।

"देवी ! मैं अपने पिछले अनुभव से यह समझा हूँ कि तुम इस कार्य में दक्ष हो। यदि तुम मगध के शासक की प्रार्थना स्वीकार करो तो मैं तुम्हें गुप्तचर विभाग की मुख्य अधिकारी नियुक्त करना चाहता [illegible] मैंने इस पद पर कार्य करने वाले का वेतन पाँच सौ स्वर्ण प्रतिमास निश्चित किया है और पूर्ण कार्य के लिये दस स्वर्ण प्रतिवर्ष [illegible] स्वीकार किया है।

"मेरा देवी से निवेदन है कि वे राज्य के इस [illegible] को अपने अधीन ले लें।"

अरुन्धति का स्पष्ट उत्तर था, "मैं यह कार्य नहीं [illegible]"

"क्यों ?"

"मैं राज्य की अथवा किसी की भी सेवा नहीं कर सक[illegible] मैंने अब तक किया है, वह मन की एक भावना के [illegible] तो राज्य की सेवा और वेतन का [illegible] है [illegible] को अपने इस कार्य के लिये अधिकारी कहीं [illegible]

पुष्यमित्र अरुन्धति के इस कथन पर [illegible] अरुन्धति भूमि की ओर देखती हुई अपने पाँव [illegible] थी। पुष्यमित्र समझ नहीं सका कि अरुन्धति [illegible] कुछ कहा है। इस [illegible] अरुन्धति ने पुनः [illegible]

—८

करना स्वीकार नहीं करूँगी।"

इतना कह वह उठ खड़ी हुई। वह कुछ कहना चाहती थी और इसके लिये अपने मन को नियंत्रण में रखना चाहती थी। पुष्यमित्र ने उसके मुख पर देखा तो उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि अरुन्धति की आँखें डबडबा रही हैं। अरुन्धति यह प्रयत्न कर रही थी कि अपने आँसुओं को रोक कर मन के भाव उचित शब्दों में प्रकट कर दे, परन्तु अपने हृदय की आर्द्रता पुष्यमित्र पर प्रकट होती देख, वह चुपचाप उस आगार से निकल अपने आगार में चली गई।

पुष्यमित्र कुछ भी समझ नहीं सका। वह मन में विचार कर रहा था कि यदि सेवा-कार्य नहीं करना तो न सही, परन्तु इस रोने का क्या अर्थ है? पश्चात् यह विचार कर कि स्त्री हृदय के रहस्यों को वह नहीं जानता, वह उठ, अल्पाहार के लिए भोजनालय में चला गया।

वहाँ महर्षि तथा उसके पिताजी पहले से ही उपस्थित थे। जब पुष्यमित्र भी वहाँ जाकर बैठा तो माँ ने तीनों के लिए अल्पाहार लगा दिया।

प्राय: अरुन्धति भी अल्पाहार के समय इनका साथ दिया करती थी, परन्तु आज वह दिखाई नहीं दी। इस कारण पुष्यमित्र ने माँ से पूछा, माँ! देवी अरुन्धति कहाँ है?"

"वह अपने आगार में द्वार भीतर से बंद कर बैठी। मैंने बुलाया तो उसने कह दिया कि उसको खाने में रुचि नहीं है।"

पुष्यमित्र ने कहा, "माँ! मैंने उसको गुप्तचर विभाग की मुख्य अधिष्ठात्री बनाने का प्रस्ताव रखा था। इस पर वह रुष्ट होकर चली गई है। कदाचित् अभी भी रुष्ट है।"

महर्षि पतंजलि पुष्यमित्र के इस कथन पर हँस पड़े। इससे सब उनका मुख देखने लगे। उन्होंने हँस कर कहा, "तुमने उसको क्या वेतन देने के लिये कहा था?"

"पाँच सौ स्वर्ण प्रतिमास। परन्तु यह तो बढ़ाया भी जा सकता है"

महर्षि अब और भी अधिक हँसने लगे। पुष्यमित्र इसका अर्थ नहीं

समझा। उसने आदरयुक्त स्वर में कहा, "भगवन्! अभी तक जो सेवा उसने हमारी योजना में की है, वह अमूल्य है। उस समय हमारे पास किसी को भी वेतन देने के लिए धन नहीं था। सब लोग अवैतनिक कार्य कर रहे थे। अब कार्य राज्य करायेगा और सबको वेतन दिया जायगा।"

"पुष्यमित्र! राज्य हो अथवा राजा, कुछ सेवायें ऐसी होती हैं, जिनका मूल्यांकन अति कठिन है। इस लड़की की सेवायें भी इसी प्रकार किसी प्रकार के भी मूल्य से ऊपर हैं। यही कारण है कि जब तुमने उनका मूल्यांकन किया तो वह रो पड़ी।"

"तो भगवन्! आप ही बता दीजिये कि उसकी सेवाओं का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाय?"

"मैं कैसे बता सकता हूँ? मैं समझता हूँ कि जब किसी वस्तु का मूल्यांकन न किया जा सके तो उसे अमूल्य कहकर, वह वस्तु निःशुल्क लेने का यत्न किया जाना चाहिए।"

"अर्थात् उसको यह कार्य अवैतनिक करने के लिए कहूँ?"

"देखो पुष्यमित्र! जब तुम अवैतनिक शब्द का प्रयोग करते हो तो उसका अर्थ होता है कि कार्य तो वेतन के योग्य है, परन्तु या तो राज्य वेतन दे नहीं सकता, अथवा लेने वाले को लेने की आवश्यकता नहीं, इसी कारण वह अवैतनिक कार्य करता है। इस प्रकार तो वह नहीं मानेगी। वह अति भावुक लड़की है। उसकी भावना को सन्तोष दोगे तो वह यह क्या, कोई नीच-से-नीच काम भी कहोगे तो करने को तैयार हो जायगी।"

: ६ :

यह पुष्यमित्र के लिए एक और पहेली थी। वह अब यह जानना चाहता था कि उसकी भावना क्या है और उसको किस प्रकार संतोष दिया जा सकता है।

अल्पाहार समाप्त हुआ और पुष्यमित्र बैठक में चला गया उसने अपना कार्यालय बना लिया था। एक-एक मंत्री के कार्य पर उ से विचार-विनिमय हो रहा था। पूर्ण देश के कार्य की व्यवस्था

हुई थी और सब कार्यों को नये सिरे से संगठित करना था। अभी देश के व्यवसाय के विषय में बात हुई थी तो पश्चात् सेना के विषय में विचार होने लगा। सेनापति गया तो गृह-प्रबन्ध का विषय आ उपस्थित हुआ। इस प्रकार कार्य करते-करते मध्याह्नोत्तर हो गया। पुष्यमित्र को भूख का भी ध्यान नहीं रहा। वह भूल गया था कि भोजन के लिए उसकी प्रतीक्षा की जा रही है।

धर्माध्यक्ष बौद्ध-विहारों के विषय में परामर्श कर गया ही था कि बैठक के द्वार पर अरुन्धति आ खड़ी हुई। उसने द्वार पर से ही पुकारा, "आर्य ! भोजन का समय हो गया है।"

पुष्यमित्र को हँसी सूझी। उसने अन्यमनस्क भाव से कह दिया, "खाने के लिए रुचि नहीं है।"

अरुन्धति अपने ही शब्द दुहराये जाते सुन गंभीर हो बोली, "आर्य ! माँ खिलाएंगी तो भूख लग आयेगी।"

"तो देवी की माँ को भी बुलाना पड़ेगा।"

"देवी की रुचि तो लौट आई है।"

"सत्य ? तब तो मैं भी खाऊँगा।"

दोनों हँसते हुए भोजनालय में जा पहुँचे। वहाँ जाकर उनको पता चला कि पिताजी ने संदेश भेजा है कि वे भोजन पर नहीं आयेंगे। पुष्य-मित्र ने माँ से पूछ लिया, "तो क्या उनको भी अरुचि हो गई है ?"

"कुछ ऐसा ही प्रतीत हो रहा है।" माँ ने कहा।

"नहीं, यह बात नहीं माता जी !" अरुन्धति ने कहा, "मौर्य बृह-द्रथ का अन्त्येष्टि संस्कार कर तीनों रानियाँ श्मशान-भूमि से अभी-अभी लौटी हैं और मगध शासक की आज्ञा है कि राज्यभवन शीघ्रातिशीघ्र रिक्त हो जाना चाहिये। अतः पिता जी इस प्रबन्ध के लिए वहाँ ठहरे हुए हैं।"

"ओह ! तो प्रातः देवी मेरे कारण भोजन में अरुचि अनुभव कर रही थीं और अब पिता जी मेरे कारण यह अनुभव कर रहे हैं।"

"बेटा ?" भगवती ने पूछ लिया, "इतनी उतावली किसलिए हो

रही है ?"

"माँ ! शत्रु को यहाँ के विप्लव का समाचार पहुँचने से पूर्व, यहाँ का और सीमा का प्रबन्ध सुदृढ़ हो जाना चाहिए, अन्यथा शत्रु कभी भी आक्रमण कर सकता है।"

अभी भोजन परसा जा रहा था कि अरुन्धति ने बताया, "समाचार तो भेज दिया गया था; परन्तु मार्ग में ही रोक लिया गया है।"

"किसने भेजा था ?"

"जो शत्रु से पहले से पत्र-व्यवहार कर रहा है। मेरा अभिप्राय महाप्रभु बादरायण से है। पत्र जो उन्होंने भेजा था, इस समय सेनापति के पास पहुँच गया है और भोजनोपरान्त शासक के पास पहुँच जायगा।"

"क्या लिखा होगा उसने ?"

"यह तो पता नहीं। पत्र तो कल जाते ही भेज दिया गया था, परन्तु मार्ग मे एक दुर्घटना हो जाने से दूत अश्व पर से गिर पड़ा। अश्व दूत को गिरा कर वन में भाग गया और दूत प्रातःकाल तक मार्ग के तट पर पड़ा रहा। प्रातः सेनापति के सैनिक वहाँ पहुँच गये और उस दूत को महाप्रभु के पास जाने से पूर्व ही बन्दी बना, उससे पत्र छीन, सेनापति के पास ले आये।"

"देवी ! ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने मेरी प्रातः वाली प्रार्थना स्वीकार कर ली है।"

"जी नहीं ! मैंने कदापि स्वीकार नहीं की।"

भोजन चल ही रहा था कि पंडित अरुणदत्त आ पहुँचे। उसने इनको भोजन लेते देख कहा, "आज इतनी देरी तक भोजन हो रहा है?"

अरुन्धति ने मुस्कराते हुए कहा, "पिता-पुत्र दोनों कार्य में भोजन करना भूल गये थे। वास्तव में कार्य करने का अभ्यास न होने से ही ऐसा होता है। एक बार अभ्यास हो जाने पर सब कार्य नियमपूर्वक और समय पर होने लगेगा।"

अरुणदत्त हँसता हुआ मुख-हाथ धोने स्नानागार में चला गया

पुष्यमित्र ने पूछ लिया, "ऐसा प्रतीत होता है कि देवी अरुन्धति को राज्य-कार्य का अभ्यास है। तभी तो कार्य सुचारु रूप से करती हुई भी भोजन नहीं भूलतीं।"

"मुझको तो कुछ भी कार्य करने के लिये नहीं है। इसी कारण समय पर भूख लगती है और समय पर ही खाने के लिये आ पहुँचती हूँ।"

अरुणदत्त आया तो बात समाप्त हो गई। उसने आते ही कहा "वृहद्रथ की तीनों रानियाँ पद्मा-विहार में चली गई हैं। उनका विचार श्राविका बन जाने का है। राज्यभवन कल तक रिक्त करने की आज्ञा दे आया हूँ और उसमें आवश्यक परिवर्तन करने के लिए बता आया हूँ। आशा है कि भवन एक सप्ताह में शासक के रहने योग्य हो जायगा।"

"और मैं कहाँ रहूँगी ?" अरुन्धति ने पूछ लिया।

उत्तर भगवती ने दिया, "तुम तो मेरी अभ्यागत हो। जहाँ मैं रहूँगी, वहाँ ही तुमको रहना होगा।"

"मुझको भय लग रहा है कि मेरी स्थिति भूली जा रही है।"

"कौन भूल रहा है तुमको ?"

"आज प्रातः ही आर्य पुष्यमित्र कह रहे थे कि मुझको राज्य की सेवा स्वीकार कर लेनी चाहिये। मेरा वेतन भी बता रहे थे। मैं समझी थी कि मेरा बोझा सहने की शक्ति नहीं रही।"

"नहीं-नहीं अरुन्धति ! ऐसी कोई बात नहीं थी। वह तो तुम्हारी इच्छा पर ही निर्भर है।"

भोजनोपरान्त पुष्यमित्र पुनः बैठक में जा पहुँचा। वहाँ सेनापति तथा न्यायाधीश बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पुष्यमित्र विलम्ब के लिये उनसे क्षमा माँगने लगा।

सेनापति ने कहा, "यह देखिये, यह भिक्षुओं का गुरू क्या कर रहा है ?" इतना कह उसने पुष्यमित्र के सम्मुख एक पत्र रख दिया।

पत्र में लिखा था, यवनाधिपति डेमिट्रियस निकोलाई की सेवा में सादर प्रणाम।

"इस देश में आज सायंकाल विप्लव घटित हो गया है। महाराज बृहद्रथ की हत्या हो गई है और एक अल्पायु युवक स्वयं शासक बन बैठा है।

"इस समय मैं आपसे पुनः निवेदन करना चाहता हूँ कि देश में एक बहुत भारी संख्या में बौद्ध रहते हैं। ये सब एक संगठन में बँधे हुए एक ही विचार के पोषक हैं। इस संगठन को बौद्ध-संघ कहा जाता है। प्रतिदिन प्रातःकाल और सायं ये बौद्ध-भिक्षु तथा उपासक 'संघं शरणं गच्छामि' मंत्र जाप करते हैं।

"अतएव बौद्ध-संघ जिसकी सहायता करना चाहे, वह मगध का सम्राट् बन जायगा। मैं बौद्ध-संघ का गुरू हूँ। बताइये, आप बौद्ध-संघ की सहायता करेंगे अथवा नहीं? सहायता के प्रतिकार में बौद्ध-संघ से आप क्या चाहेंगे, अपनी इच्छा से अवगत करें।"

पुष्यमित्र यह पत्र पढ़कर अवाक् रह गया। इस पर न्यायाधीश ने कहा, "यह पत्र महाप्रभु के हाथ का लिखा हुआ नहीं है। न ही नीचे हस्ताक्षर उसके अपने हैं। अतएव न्याय की दृष्टि में उनको बन्दी बनाकर दण्ड नहीं दिया जा सकता।"

"मैं जानता हूँ कि यह पत्र किसके हाथ का लिखा हुआ है। उस विहार में एक भिक्षु निर्मल के नाम से है। वह ही महाप्रभु के स्थान पर हस्ताक्षर करता है।"

"तब तो मेरी सम्मति है कि महामात्य महाप्रभु को यहाँ बुला भेजें और मैं सैनिक भेज भिक्षु निर्मल को बुलवा लेता हूँ। निर्मल को हम बन्दी बना लेंगे तो सब बात का पता चल जायगा।"

"नहीं मेरी सम्मति यह है कि जब महाप्रभु महामात्य के पास आयें तो आप निर्मल को बुलाकर महाप्रभु के नाम एक पत्र किसी उचित व्यक्ति के नाम लिखवाइये और महाप्रभु के हस्ताक्षर करवा लीजिये। पीछे दोनों हस्ताक्षर परस्पर मिलाकर देख लेंगे।"

इस प्रकार बात निश्चित हो गई।

ष्यमित्र ने पूछ लिया, "ऐसा प्रतीत होता है कि देवी अरुन्धति को ाज्य-कार्य का अभ्यास है। तभी तो कार्य सुचारु रूप से करती हुई भी ोजन नहीं भूलतीं।"

"मुझको तो कुछ भी कार्य करने के लिये नहीं है। इसी कारण समय र भूख लगती है और समय पर ही खाने के लिये आ पहुँचती हूँ।"

अरुणदत्त आया तो बात समाप्त हो गई। उसने आते ही कहा, बृहद्रथ की तीनों रानियाँ पद्मा-विहार में चली गई हैं। उनका विचार ाविका बन जाने का है। राजभवन कल तक रिक्त करने की आज्ञा दे ाया हूँ और उसमें आवश्यक परिवर्तन करने के लिए बता आया हूँ। ाशा है कि भवन एक सप्ताह में शासक के रहने योग्य हो जायगा।"

"और मैं कहाँ रहूँगी?" अरुन्धति ने पूछ लिया।

उत्तर भगवती ने दिया, "तुम तो मेरी अभ्यागत हो। जहाँ मैं हूँगी, वहाँ ही तुमको रहना होगा।"

"मुझको भय लग रहा है कि मेरी स्थिति भूली जा रही है।"

"कौन भूल रहा है तुमको?"

"आज प्रातः ही आर्य पुष्यमित्र कह रहे थे कि मुझको राज्य की वा स्वीकार कर लेनी चाहिये। मेरा वेतन भी बता रहे थे। मैं समझी ी कि मेरा बोझा सहने की शक्ति नहीं रही।"

"नहीं-नहीं अरुन्धति! ऐसी कोई बात नहीं थी। वह तो तुम्हारी इच्छा पर ही निर्भर है।"

भोजनोपरान्त पुष्यमित्र पुनः बैठक में जा पहुँचा। वहाँ सेनापति तथा न्यायाधीश बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पुष्यमित्र विलम्ब के लिये उनसे क्षमा माँगने लगा।

सेनापति ने कहा, "यह देखिये, यह भिक्षुओं का गुरू क्या कर रहा है?" इतना कह उसने पुष्यमित्र के सम्मुख एक पत्र रख दिया।

पत्र में लिखा था, यवनाधिपति डेमिट्रियस निकोलाई की सेवा में सादर प्रणाम।

"इस देश में आज सायंकाल विप्लव घटित हो गया है। महाराज बृहद्रथ की हत्या हो गई है और एक अल्पायु युवक स्वयं शासक बन बैठा है।

"इस समय मैं आपसे पुन: निवेदन करना चाहता हूँ कि देश में एक बहुत भारी संख्या में बौद्ध रहते हैं। ये सब एक संगठन में बँधे हुए एक ही विचार के पोषक हैं। इस संगठन को बौद्ध-संघ कहा जाता है। प्रतिदिन प्रातःकाल और सायं ये बौद्ध-भिक्षु तथा उपासक 'संघं शरणं गच्छामि' मंत्र जाप करते हैं।

"अतएव बौद्ध-संघ जिसकी सहायता करना चाहे, वह मगध का सम्राट् बन जायगा। मैं बौद्ध-संघ का गुरु हूँ। बताइये, आप बौद्ध-संघ की सहायता करेंगे अथवा नहीं? सहायता के प्रतिकार में बौद्ध-संघ से आप क्या चाहेंगे, अपनी इच्छा से अवगत करें।"

पुष्यमित्र यह पत्र पढ़कर अवाक् रह गया। इस पर न्यायाधीश ने कहा, 'यह पत्र महाप्रभु के हाथ का लिखा हुआ नहीं है। न ही नीचे हस्ताक्षर उनके अपने हैं। अतएव न्याय की दृष्टि में उनको बन्दी बनाकर दण्ड नहीं दिया जा सकता।"

"मैं जानता हूँ कि यह पत्र किसके हाथ का लिखा हुआ है। उस विहार में एक भिक्षु निर्मल के नाम से है। वह ही महाप्रभु के स्थान पर हस्ताक्षर करता है।"

"तब तो मेरी सम्मति है कि महामात्य महाप्रभु को यहाँ बुला भेजें और मैं सैनिक भेज भिक्षु निर्मल को बुलवा लेता हूँ। निर्मल को हम बन्दी बना लेंगे तो सब बात का पता चल जायगा।"

"नहीं मेरी सम्मति यह है कि जब महाप्रभु महामात्य के पास आयें तो आप निर्मल को बुलाकर महाप्रभु के नाम एक पत्र किसी दूसरे व्यक्ति के नाम लिखवाइये और महाप्रभु के हस्ताक्षर करवा लीजिये। पीछे दोनों हस्ताक्षर परस्पर मिलाकर देख लेंगे।"

इस प्रकार बात निश्चित हो गई।

अरुणदत्त ने महाप्रभु को बुलाया तो उसने आने से इन्कार कर दिया। जब महाप्रभु नहीं आया तो भिक्षु निर्मल को बुलाया नहीं जा सका। महाप्रभु ने महामात्य के निमंत्रण पर कहला भेजा कि वह हत्यारों के साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहता, न ही उनकी आज्ञा मानना चाहता है।

रात्रि को पुनः सभी मन्त्री एकत्रित हुए और महाप्रभु के विषय में चर्चा चल पड़ी। सेनापति ने बताया, "आज प्रातःकाल मैं शासक से मिलकर जा रहा था कि मेरे भवन के द्वार पर एक लड़की ने मेरा मार्ग रोककर कहा, 'शासक महोदय चाहते हैं कि इसी समय पाँच अश्वारोही कौशाम्बी के मार्ग पर द्रुतगति से भेजे जायँ। पाटलिपुत्र से दस कोस के अन्तर पर एक सवार अपने अश्व से गिरकर घायल पड़ा हुआ है। उसको बंदी बना लिया जाय। उसके पास महाप्रभु का लिखा एक पत्र है, जिसको अपने अधिकार में कर शासक के पास उपस्थित किया जाय।"

इस पर पुष्यमित्र ने सेनापति से पूछ लिया, "वह लड़की कौन थी? मैंने तो कोई ऐसी आज्ञा नहीं भेजी। न ही मेरे ज्ञान में कोई ऐसा भिक्षु था, जो अश्व से गिरकर कौशाम्बी के मार्ग पर पड़ा हुआ था।"

"परन्तु श्रीमान्! एक भिक्षु तो वहाँ था और उसके पास से वह पत्र भी प्राप्त हुआ था। वह आदेश लाने वाली लड़की देवी अरुन्धति थी।"

"ओह! मैंने देवी को अपने गुप्तचर-विभाग के अध्यक्ष-पद के लिए नियुक्त करना चाहा था, परन्तु उसने यह कह कि वह किसी की सेवा स्वीकार नहीं कर सकती, अस्वीकार कर दिया था।"

"ओह! तो उसको बिना सेवा स्वीकार किये, यह कार्य करने के लिये कहा जाय।"

"परन्तु वह मानेगी क्या?"

"आप यत्न तो करिये। मुझे विश्वास है कि जब आप उससे आत्मीयता प्रकट कर सहयोग माँगेंगे, तो वह इन्कार नहीं करेगी।"

: ७ :

पुष्यमित्र इसका अर्थ समझने में लीन था। वह विचार कर रहा था कि लड़की सुन्दर, सुशील, चतुर तथा मेधावी है और अच्छी पत्नी बन सकती है, परन्तु उसको तो अभी विवाह नहीं करना। वह मन में निश्चय किये हुए था कि जब तक देश का उद्धार नहीं हो जाता, तब तक विवाह का नाम लेना भी उसके लिए पाप है।

बचपन के काल से ही वह देश की हीन अवस्था को देख, दुख अनुभव करता आ रहा था। वह अपने मन में एक संकल्प बनाये हुए था कि देश तथा धर्म को प्राचीन गौरव के स्थान पर पुनः लाना है। ज्यों-ज्यों उसकी आयु बढ़ती गई और वह विद्याध्ययन कर तत्कालीन अवस्था में कारण और उसकी चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करता गया, वह अपने संकल्प पर दृढ़ होता गया।

अब वह बाईस वर्ष का युवक था और अभी तक उसके मन में विवाह करने का विचार तक नहीं आया था। आज पहली बार स्वार्णो-धीश ने अरुन्धति से आत्मीयता का-सा व्यवहार करने की अनुमति दी थी। बाईस वर्ष का युवक अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की युवती में कैसे आत्मीयता उत्पन्न कर सकता है?

इन्हीं विचारों में वह रात के भोजन के लिये भोजनालय में पहुँचा तो सब प्राणी उपस्थित थे। महर्षि जी प्रातःकाल ही इनसे पहले ही भोजन कर चुके थे और रात्रि का भोजन वे करते नहीं थे। रात केवल दूध लेते थे और वह ले चुके थे।

प्रायः भोजन के समय अरुन्धति भी साथ बैठती थी। [illegible] था कि वह घर में अभ्यागत है और जब तक वह भोजन नहीं करेगा, कोई नहीं करेगा। इस कारण उसको साथ बैठने के लिए विवश कर दिया जाता था। भगवती तो, जब तक अरुणदत्त भोजन नहीं कर लेता था भोजन नहीं करती थी। आज अरुन्धति भी भोजन के लिए नहीं बैठी; अब पुष्यमित्र तथा अरुणदत्त के लिए आसन [illegible]

लगाया गया। इस पर पुष्यमित्र ने मां की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि में देखा। मां ने कहा, "तुम लोग खाओ, वह मेरे साथ खायेगी।"

"यह आज क्या हुआ है ?" पुष्यमित्र का प्रश्न था।

अरुणदत्त खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने कहा, "मैं इस बात की चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहा था।"

"पिताजी ! किस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे आप ?"

"तुम्हारे मगधाधिपति होने की।"

"सत्य ? परन्तु मुझको तो इस पदवी के पाने की अभी भी न तो आशा है और न अभिलाषा।"

"अभिलाषा की बात तो मैं नहीं जानता, परन्तु आशा ही नहीं, अब तो विश्वास हो गया है कि हमारा शुंग परिवार भी भारत के सम्राटों की सूची में लिखा जायेगा और यह सब तुम्हारे प्रयास से ही हुआ है।"

"पिताजी ! एक ब्राह्मण परिवार के लिए यह पदवी क्या शोभनीय है ?"

"ब्राह्मण-पद निस्सन्देह सम्राट्-पद से ऊँचा है, परन्तु जब घर में किसी घटिया वस्तु का अभाव हो जाय तो बढ़िया वस्तु का प्रयोग उसके स्थान पर किया जा सकता है। देश में शौर्यवान क्षत्रियों का अभाव हो गया था। अतः एक ब्राह्मण को क्षत्रिय-वर्ण का कार्य करना पड़ा है।

"मित्र ! तुमने एक वर्ष में ही अपने क्षत्रिय मानस पुत्र इतनी संख्या में निर्माण किये हैं कि देश में जीवन तथा शौर्य का सागर ठाठें मारने लगा है। अब इस सागर के सामने दुष्ट और दुराचारी टिक नहीं सकते। सब नष्ट-भ्रष्ट होंगे।"

"पिताजी ! वात्सल्यता के प्रभाव में आप इस दुस्तर कार्य को सरल समझ रहे हैं। वास्तव में यदि यह कार्य जीवन-भर में भी समाप्त हो जाय तो भी मैं अपने-आपको धन्य मानूंगा।"

"कार्य को पूर्ण करने के लिए एक जीवन लगेगा अथवा कई, विचारणीय नहीं है। मैं तो यह कह रहा हूँ कि तुम्हारा मगध का सम्राट बनना

"ठीक है।" अरुणदत्त ने कह दिया, "हमको अपने गुप्तचर-विभाग के लिए अधिष्ठात्री की आवश्यकता है और हम इस पद पर अरुन्धति की नियुक्ति करते हैं।"

"परन्तु पिताजी ! वह तो इसको अस्वीकार कर चुकी है।"

"परन्तु गुप्तचर-विभाग तो महामात्य के अधीन है। बिना उसकी सहमति के उसकी नियुक्ति हो कैसे सकती थी ?"

पुष्यमित्र यह सुन विस्मय में अरुन्धति का मुख देखता रह गया। वह अभी भी आँखें मूँदे हुए बैठी थी।

पुष्यमित्र अब निश्चिन्त हो भोजन करने लगा। एकाएक उसके मन में एक बात आई। उसने पूछा, "पिताजी ! गुप्तचर-विभाग की अधिष्ठात्री के लिये वेतन कितना निश्चित हुआ है ?"

"वेतन जी भर कर दिया है। इस पर भी मैं समझता हूँ कि इतना हम दे सकेंगे। मैं इस कार्य के प्रतिकार में इसको जीवन-भर के लिए अपना एकलौता पुत्र सौंप रहा हूँ।"

इस पर भगवती हँस पड़ी।

: ८ :

बिगड़े राज्य को सुदृढ़ आधारों पर खड़ा करना एक अति कठिन समस्या थी। विशेष रूप में जब प्रजा का एक भाग उस राज्य के सुदृढ़ होने को ही गलत समझे। परन्तु पुष्यमित्र लौह-पुरुष था। उसकी पूर्ण राजनीति दृढ़ आधारों पर बनी थी। वह उन आधारभूत सिद्धान्तों को पकड़ कर दृढ़ता से कार्यसिद्धि में लग गया।

ज्यों ही अरुन्धति ने गुप्तचर-विभाग को अपने अधिकार में लिया और इसमें महर्षि पतंजलि ने अपने आश्रम के सब योग्य शिष्यों की सेवा दे दी, तो प्रजा के विरोधी अंशों का धीरे-धीरे उन्मूलन होने लगा।

पहले ही दिन अरुन्धति ने अपने गुप्तचरों का एक जाल पद्मा-विहार, जिसमें महाप्रभु बादरायण छिपा हुआ था, बिछा दिया। सैनिकों ने तो विहार में आने-जाने वालों पर निरीक्षण रखना आरम्भ कर दिया, परन्तु

भीतर क्या चर्चा होती थी और विहार के अधिकारी अब क्या करना चाहते थे, यह जानना गुप्तचर-विभाग का काम था।

गुप्तचरों के दो विभाग कर दिए गए थे। एक तुरन्त विदेशों में जाकर वहाँ के समाचार भेजने लग गया था और दूसरा देश-भर में फैल गया था और स्थान-स्थान के समाचारों से सूचित कर रहा था।

ये सब समाचार पाटलिपुत्र में द्रुतगामी घोड़ों पर, विभाग के कर्मचारी लाते थे। इन समाचारों को [illegible] पृथक्-पृथक् कर विषयानुसार उचित अधिकारियों के पास भेज [illegible] जाता था। वे इनका अर्थ निकाल, विषय से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्री [illegible] भेज देते थे। मन्त्री उन समाचारों को अथवा उनसे निकले [illegible] सम्राट-शासक के पास ले जाते थे। तत्पश्चात् उन पर [illegible] करता था और राज्य की नीति निर्धारित की जाती [illegible]।

"दुष्ट और असुर शब्दों के प्रयोग से ब्राह्मण मिथ्या भ्रम उत्पन्न करते रहते हैं। कौन श्रेष्ठ है, कौन दुष्ट कहना कठिन है। भगवान तथागत् का कथन है कि इसका निर्णय तुम मत करो। इसको प्रकृति अर्थात् भगवान की आत्मा के लिए छोड़ दो। वह उनको सन्मार्ग दिखाएगा।

"इस पर भी उपासकों को इससे समाधान नहीं हो रहा। एक उपासक ने यह आशंका प्रकट की थी कि जब दुष्ट की दुष्टता का निर्णय हम नहीं कर सकते तो यह हम कैसे कह सकते हैं कि यह ब्राह्मण-राज्य दुष्टों का राज्य है। हमको सबके साथ सहिष्णुता तथा सदाचारिता का व्यवहार अपनाना है। अतः हमको वर्तमान राज्य के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये। उसके भले-बुरे का निर्णय भगवान तथागत् की आत्मा के लिए छोड़ दें। वे ही इनके दोषों को दूर करेंगे।"

इस पर एक अन्य उपासक ने कहा कि जिसने हमारी बहू-बेटियों से बलात्कार किया है, जिसने हमारा धन-सम्पद् लूटा है, उसकी दुष्टता को तो क्षमा कर, उससे मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना आरम्भ कर दें और जो हमको धन-सम्पदा, सुख-सुविधा तथा मानयुक्त जीवन चलाने का अवसर दे रहा है, उसका हम विरोध करें और उसके विनाश के लिए षड्यंत्र करें ?

"इस प्रकार विहार में श्रावकों का प्रभाव कम होता जा रहा है और उपासकों की संख्या में भारी कमी हुई है।"

इस समाचार को सुन पुष्यमित्र ने कहा, "यह कार्य हमारे शिक्षा-विभाग का है। महर्षिजी ने इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया है और उनके शिष्य-मंडल का संन्यासी-वर्ग नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम घूमकर भगवद्गीता का उपदेश दे रहा है। उससे दी गई युक्तियों का बौद्धों के पास कोई उत्तर नहीं।

"अब स्थिति ऐसी आ गई है कि हम यह घोषणा कर दें कि राज्य की ओर से किसी भी सम्प्रदाय का विरोध अथवा सहायता नहीं होगी। इस राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता है कि वह अपने सम्प्रदाय की वृद्धि और उसमें सुधार का यत्न करे। राज्य इसमें आपत्ति नहीं

उठायेगा। साथ ही जो भी व्यक्ति जन-साधारण की शिक्षा पर जितना व्यय करेगा, उतने धन पर राज्य उससे कर नहीं लेगा।"

जब मंत्रिमंडल ने इस घोषणा की स्वीकृति दी तो इसके राज्य-भर में प्रसार का प्रबन्ध भी कर दिया गया।

अब पुष्यमित्र ने सेनापति से पूछ लिया, "समर की तैयारी में क्या त्रुटि रह गई है?"

"श्रीमान्! जहाँ तक सेना का सम्बन्ध है, हमने इसको अपने राज्य के तीन स्थानों पर एकत्रित कर लिया है। ये तीनों स्थान कौशाम्बी से तीन दिन की पैदल यात्रा की दूरी पर हैं। अर्थात् यहाँ से आज्ञा पाते ही चौथे दिन हम कौशाम्बी पर अधिकार कर, इसको यवनों से रिक्त कर देंगे।"

इस पर महामात्य ने बताया, "जहाँ तक देश की आन्तरिक स्थिति का सम्बन्ध है, श्रावकों का विरोध निस्तेज हो रहा है। पड़ोसी राज्यों में आन्ध्र, विदर्भ, साकेत तथा मल्ल से सन्धि की बातचीत हो रही है। इनमें केवल साकेत विपरीत दिखाई देता है। यह समाचार मिला है कि वह डेमिट्रियस से सन्धि करने का यत्न कर रहा है।"

पुष्यमित्र ने पूछा, "क्या यह ठीक नहीं कि साकेत तथा डेमिट्रियस की सन्धि होने से पूर्व ही आक्रमण कर दिया जावे?"

महामात्य का कहना था, "जब तक एक पराजय विदेशियों को नहीं दी जाती, तब तक देशीय राज्यों से सुदृढ़ संधि संभव नहीं। अभी तक कोई भी देशीय राज्य हमारे इस दावे को कि हममें यवनों को परास्त करने की सामर्थ्य है, स्वीकार नहीं करता। वे समझते हैं कि हमारा राज्य नवीन है और हमारा राज्याधिकारी ब्राह्मण है। इस कारण हम लोग बातें बहुत बनाते हैं, परन्तु युद्ध में प्रवीणता नहीं रख सकते। अतएव हमारा सहयोग करना तो दूर, ये राज्य हमारे साथ मैत्री करने में भी संकोच कर रहे हैं।

"डेमिट्रियस ने हमको अपना शत्रु घोषित कर दिया है और ... भारतीय राज्य डेमिट्रियस के शत्रु से तब तक संधि नहीं करेंगे, ज[illegible] उनको इस बात का विश्वास नहीं हो जाता कि हम डेमिट्रियस से

हैं। इस कारण यह अत्यावश्यक है कि हम एक वार तो डेमिट्रियस से मोर्चा गाड़, उसको कौशाम्बी से वाहर निकाल दें।"

सेनापति का कहना था, "श्रीमान् को यह बता देना चाहता हूँ कि साकेत एक समय मगध राज्य के अन्तर्गत था। गृहवर्मन् के काल में इसने स्वतंत्रता घोषित की थी। उस समय इसके स्वतंत्र होने में कारण यह था कि इस राज्य को मगध साम्राज्य में वौद्धों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं था। वौद्ध साकेत में अपने विहार बनाने लगे थे और साकेत की जनता यह पसन्द नहीं करती थी। अतः उस राज्य ने वौद्ध श्रावकों से वचने का सहज उपाय यह समझा कि मगध से पृथक् हो जाए।

"परन्तु अव परिस्थिति भिन्न है। साकेत को यह विश्वास ही नहीं आता कि मगध कभी वौद्धों के प्रभाव से स्वतंत्र हो सकता है। साथ ही वह समझता है कि विदेशियों को हम कभी भी देश से वाहर निकाल नहीं सकेंगे। अतएव वह पहले डेमिट्रियस से संधि कर हमारा विरोध करना चाहता है। हमको परास्त कर वह उससे निपटने का विचार करेगा।

"अभी तक डेमिट्रियस से सन्धि में मतभेद इस वात पर है कि मगध का बँटवारा साकेत और डेमिट्रियस में कैसे हो?"

इस पर यह निश्चय हो गया कि कौशाम्बी को शीघ्रातिशीघ्र यवनों स रिक्त करवाना चाहिये।

: ६ :

इस पर भी आक्रमण की आज्ञा जाने से पूर्व ही स्थिति बदल गई। मंत्रिमंडल की वैठक समाप्त हुई और मंत्रीगण अपने-अपने घरों को चले गये थे। युद्ध की आज्ञा अगले दिन दी जाने वाली थी।

पुष्यमित्र, महामात्य और सेनापति राज्यभवन में रहते थ। जहाँ अरुणदत्त और सेनापति के कक्ष सब प्रकार के सुख-प्रसाधनों से युक्त थे, पुष्यमित्र का आगार बिल्कुल साधारण-सा था। इसमें उसने अपने सोने के लिए एक लकड़ी का पलंग मात्र रखा हुआ था।

अरुन्धति भी राज्यप्रासाद में भगवती के साथ रहती थी और

पुष्यमित्र गंभीर विचार में पड़ गया। अरुन्धति शान्त उसके सम्मुख बैठी थी। जब पुष्यमित्र कुछ नहीं बोला तो अरुन्धति ने पूछा, "तो मुझको जाने की आज्ञा है ?"

"नहीं; मैं देवी से दो बातें जानना चाहता हूँ। एक तो यह कि देवी के गुप्तचर मंत्रिमंडल की कार्यवाई की सूचना जानने का यत्न करते रहते हैं क्या ? और दूसरा यह कि कौशाम्बी से साकेत के मार्ग पर भी गुप्तचर नियुक्त हैं क्या ?"

"दोनों प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में है।"

"यह क्यों ? मंत्रिमंडल को सुरक्षा से विचार-विनिमय करने क्यों नहीं दिया जाता ?"

"इस कारण कि मंत्रिमंडल अपने निर्णयों को स्वयं गुप्तचर-विभाग को नहीं भेजता ?"

"यह तो असम्भव है। मंत्रिमंडल अपने बहुत से निर्णय गुप्त रखना चाहता है।"

"तो वह एक बात कर सकता है। गुप्तचर-विभाग के अधिष्ठाता को मंत्रिमंडल के निर्णय सुनने का अधिकार दिया जाय।"

"यह भी असम्भव है। मंत्रिमंडल सब विभागों से ऊपर है।"

"इसमें संदेह नहीं श्रीमान् ! परन्तु गुप्तचर-विभाग सब विभागों का सहायक है। अतः इसकी सहायता से मंत्रिमंडल को वंचित नहीं रहना चाहिए।"

"इस समस्या पर विचार किया जायगा। परन्तु अब देवी मंत्रि-मंडल को क्या करने की सम्मति देती हैं ?"

"देवी मंत्रिमंडल की सदस्या नहीं है। इस कारण सम्मति देने से धृष्टता हो जायगी।"

"देश का शासक सम्मति मांगे तो भी ?"

"शासक अपने लिये सम्मति माँग सकता है, मंत्रिमंडल के लिये नहीं। यदि शासक उचित समझे तो उस सम्मति को मंत्रिमंडल के

समक्ष उपस्थित कर सकता है।"

पुष्यमित्र हँस पड़ा। हँस कर उसने कहा, "देवी! बहुत बाल की खाल निकालती हो।"

"तभी तो ढेरों समाचारों में से आवश्यक तथा अनावश्यक समाचारों का निर्णय कर सकती हूँ।"

"अच्छा बताओ। इस नवीन परिस्थिति में क्या होना चाहिये?"

"मगध द्वारा आक्रमण का समाचार अभी किसी को विदित नहीं होना चाहिये। यवनाधिपति मगध की ओर से निश्चिन्तता अनुभव करे, *जिससे वह साकेत पर आक्रमण करने में संकोच न करे।*

"जब यवन-सेना मगध के क्षेत्र से निकले, उसका विरोध न किया जाय। अर्थात् सुगमता से साकेत तक पहुंचने का विश्वास उसको हो। परन्तु ज्यों ही उसकी सेना मगध-राज्य पार कर साकेत में प्रवेश करे, उसकी वापसी का मार्ग हमारे सैनिकों से बंद कर दिया जाय और उसी समय कौशाम्बी पर आक्रमण कर दिया जाय।

"सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि हम अपनी योजना को कितना गुप्त रख सकते हैं और इसको कितनी सतर्कता से चला सकते हैं।"

अरुन्धति गई तो पुष्यमित्र ने सेनापति को बुला भेजा और उससे परामर्श कर उसी समय, उचित स्थानों पर संदेश भेजने का प्रबन्ध कर दिया।

चतुर्थ परिच्छेद

भारत की हरी-भरी भूमि सोना उगलती थी। सिन्धु नदी से पूर्व के खेतों में उपजा हुआ गेहूँ, बाजरा, मकई आदि अन्न विदेशों से स्वर्ण लाता था और देश के कृषकों की स्त्रियां स्वर्ण तथा रजत के भूषणों से लदी रहती थीं। कभी कोई विदेशी व्यापारी भारत के गांवों में से गुजरता, तो निःशुल्क भोजन तथा आतिथ्य पाकर देश की समृद्धता पर चकित रह जाता था। खेतों में काम करने वाली स्त्रियों की झांझरों तथा हथकंगनों की झंकार, कसी और हल चलने के स्वर में मिल परदेशी के मुख में लार टपकाने लगती थी। नगरों की उच्च अट्टालिकाएं, गगनभेदी मन्दिरों के कलश तथा विशाल राजपथ इत्यादि की तुलना कापिश तथा परुपपुर के छोटे-छोटे गृहों तथा मार्गों से करने पर विदेशियों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगती थी।

यह ईर्ष्या भारत पर विदेशी आक्रमणों का बीज बन जाती थी। भारत-भ्रमण के पश्चात् यात्री जब अपने देश के राजा के समक्ष उपस्थित हो, यहां की धन-सम्पदा तथा प्राकृत एवं मनुष्य-निर्मित सौन्दर्य का वर्णन करते, तो राजाओं के मन अपने देश से उचाट हो जाते और वे भारत में आकर रहने की लालसा करने लगते।

इस लोभ तथा लालसा का मर्दन करने के लिये देश के क्षत्रिय लम्बी सुदृढ़ भुजाओं में चमचमाते खड्ग लिये तैयार रहते थे। जब-जब भी सुख तथा आराम के वशीभूत, स्वार्थ तथा अज्ञानता के मोह में फंस कर अथवा मिथ्या त्याग और दया की भावना से प्रेरित हो, क्षत्रियों के भुजदंड ढीले पड़े, देश पर लोभी, लालची अथवा ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित

विदेशीय उमड़ पड़े और काली घटाओं की भाँति पूर्ण देश पर छा गये।

ऐसी ही परिस्थिति देववर्मन् के काल में उत्पन्न हुई थी।

गांधार की राजधानी पुरुषपुर के राजभवन में गांधार का यवन-अधिपति ऐन्मरीज अपने परामर्श-दाताओं से वार्तालाप कर रहा था। ऐन्मरीज को अपने नये विवाह के लिए दस सहस्र स्वर्णमुद्राओं की आवश्यकता थी।

दो-दिन पूर्व वह मयूर नदी के तट पर आखेट के लिये गया हुआ था कि उसकी दृष्टि एक अति सुन्दर युवती पर पड़ी। उसने उससे विवाह का प्रस्ताव कर दिया। उसने कहा, "सुन्दरी! तुम तो गान्धार के राजा के रणवास की शोभा के योग्य हो।"

सुन्दरी ने कनखियों से देखते हुए कहा, "ठीक है, परन्तु महाराज! आपके सिंहासन पर कितना मूल्य लगा है?"

"पाँच सहस्र रजत।"

"और आपके पलंग पर?"

"एक सहस्र रजत।"

"तो बताइये, जब आपने अपने भवन को शोभायमान करने वाली इन वस्तुओं पर इतना कुछ व्यय किया है, तो इन सुन्दर वस्तुओं को अपनी शोभा का वरदान देने वाली के लिये क्या देने का विचार रखते हैं?"

. "यह मूल्यांकन करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।"

"तो महाराज! मेरे पिता से मिलकर इसका मूल्य जान लें। यदि सामर्थ्य है तो आपको अपने रणवास की शोभा मिल जायगी।"

ऐन्मरीज ने उस सुन्दरी के घर का पता पूछा। उसका पिता एक समृद्ध भूमिपति था। उसने अपनी कन्या का मूल्य दस सहस्र स्व[illegible] माँगा। ऐन्मरीज ने एक सप्ताह में दस सहस्र स्वर्ण देने का वचन दि[illegible] और राज-भवन में आकर अपने परामर्शदाताओं से परामर्श ले[illegible] कि इतना धन कहाँ से उत्पन्न करे।

गान्धार में कर प्राप्त करने की रीति नहीं [illegible] प्रायः वस्तुओं के रूप में मिलता था। प्रत्येक व्य[illegible]

उपज का अथवा अपने परिश्रम से प्राप्त धन का दशांश राजा को देना पड़ता था। इस आय से बहुत ही कठिनाई से राज्य-परिवार का व्यय तथा राज्य की सेना का व्यय पूर्ण होता था।

जब परामर्शदाता दस सहस्र स्वर्ण का प्रबन्ध नहीं बता सके तो राजा निराश हो गया। इस समय अपोलो नाम के एक व्यक्ति ने खड़े होकर कहा, "महाराज ! स्वर्ण तो बहुत है। ढेर-के-ढेर सिन्धु नदी के उस पार पड़े हैं। केवल चलकर उठा लाने की बात है।"

"कहाँ है ?" ऐन्सरीज़ का प्रश्न था।

"महाराज ! मैं अभी-अभी भारत-भूमि का भ्रमण कर आ रहा हूँ। उस देश में मुझे एक भी स्त्री ऐसी दिखाई नहीं दी, जिसके शरीर पर सेर-आध सेर स्वर्ण न हो और वे स्त्रियाँ अरक्षित तथा स्वच्छंद अपने सौन्दर्य तथा धन का प्रदर्शन कर ऐसे भ्रमण करती हैं, मानो पूर्ण देश एक विशाल रणवास हो।"

"ओह ! तो उस देश में पुरुष नहीं बसते क्या ? मैंने तो सुना था कि उस देश के एक सम्राट् पाटलिपुत्र में रहते हैं और उनकी सेना जिस ओर जाती है, टिड्डी दल की भाँति सब कुछ साफ कर जाती है।"

"महाराज ! यह बात पुरानी हो गई। आज तो उस देश में एक नवीन प्रकार की सेना घूमती है। पीत वस्त्र धारण किए, सिर मुंडा, पाँव से नग्न, हाथों में कमंडल लिये सौ-सौ दो-दो सौ की मंडलियों में ये लोग ग्राम-ग्राम में ऐसे भ्रमण करते हैं, मानो कुँवारी कन्याएँ हों, जिनको संसार के प्रलोभन का ज्ञान तक नहीं।"

"क्या बात कर रहे हो ? अपोलो ! हमको मूर्ख बना रहे हो क्या ?"

अपोलो खिलखिलाकर हँस पड़ा। हँस कर उसने कहा, "आपका अभिप्राय उस योद्धा से है न, जिसने महारथी अलक्षेन्द्र के सेनापति सेल्यूकस को पराजित किया था और उसकी युवा कन्या से विवाह किया था ?"

"तो वहाँ कोई और भी चन्द्रगुप्त है क्या ?"

"महाराज ! उसको मरे हुए आज तीन सौ वर्ष हो चुके हैं। उसका

पौत्र एक अति क्रूर सम्राट् था, परन्तु उसके अत्याचारों की उसके मन पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि वह अति दयावान हो गया और अस्त्र-शस्त्रधारी सेना के स्थान उसने पीतवसनधारियों की सेना निर्माण करनी आरम्भ कर दी। ये पीतवसनधारी नपुंसकों की भाँति शत्रु अथवा मित्र, जिनसे भी मिलते हैं, उसके कल्याण का ही चिन्तन करते हैं। इनका कोई शत्रु नहीं।"

"वहाँ अब कौन राज्य करता है।"

"उस चन्द्रगुप्त के पौत्र का पौत्र सम्प्रति नाम का एक दुर्बल और भीरु राजा राजगद्दी पर बैठा है। वह उन पीतवसनधारियों की सेना द्वारा प्रजा में उत्पन्न सद्भावना के आधार पर, उससे कर प्राप्त कर, अपना कार्य चलाता है।"

"मैं विश्वास नहीं कर सकता। सहस्रों कोस लम्बा और चौड़ा राज्य केवल सद्भावना पर चले, यह असम्भव है।"

"महाराज! परीक्षा कर देख लीजिये। अपने साथ केवल एक सौ सैनिक लेकर एक दिन सिन्धु पार करने का साहस कीजिये और फिर दस सहस्र क्या, लक्ष-लक्ष स्वर्ण एकत्रित कर लीजिये।"

"कदाचित् जो कुछ तुमने बताया है, वह किसी पोस्ती के पीनक में कही कथा है। इस पर भी मुझको दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा चाहिएँ। मैं उस लड़की के वियोग में पागल हुआ जाता हूँ।"

"ऐन्तरीड ने चुने हुए एक सौ सैनिक लिए और एक दिन चुपचाप सिन्धु पार कर गया। केवल दो गाँव उसने लूटे और मनों स्वर्ण तथा रजत और सैंकड़ों युवतियों को रस्सों से बाँध कर अपने देश में ले आया।

वह समझता था कि यह राजाओं का समर नहीं, प्रत्युत दस्युओं का छापा है और इसका प्रतिकार लेने के लिए भारत जैसे सम्पन्न देश के सैनिक उसके देश पर प्रत्याक्रमण करेंगे। इस पर भी उस सुन्दरी पर मुग्ध, वह अपने कार्य की जघन्यता को भूल गया और उससे विवाह के लिए उसके पिता के पास जा पहुँचा।

विवाह हुआ और इस नवीन विवाह से एक सुन्दर बल

भी उत्पन्न हो गई, परन्तु भारत से लूटा धन तथा जन वापिस लेने कोई नहीं आया।

ऐन्सरीज़ ने तीन वर्ष तक प्रतिकार की प्रतीक्षा की और जब कुछ नहीं हुआ तो अपोलो के कथन का विश्वास कर, वह इस समृद्ध तथा सुन्दर देश पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा।

वह सीमा प्रदेशों पर छोटे-मोटे डाके डाल सेना तैयार करने क लिए स्वर्ण एकत्रित करने लगा और थोड़े ही काल में एक सेना लेकर तक्षशिला, शाकल, लवपुर पर एक ओर और श्रीनगर की सुन्दर वादी पर दूसरी ओर अधिकार जमा बैठा।

ऐन्सरीज़ कुछ आवश्यकता से अधिक समझदार था। इस कारण वह धीरे-धीरे अपने राज्य की वृद्धि कर रहा था। जब तक उसका अधिकार लवपुर पर हुआ, उसका देहान्त हो गया। इस समय सम्प्रति का पुत्र गृहवर्मन् मगध की राज्यगद्दी पर आरूढ़ हो चुका था।

ऐन्सरीज़ का पुत्र डेमिट्रियस गांधार का राजा बना और अपने पिता द्वारा प्रारम्भ किया हुआ कार्य पूरा करने लगा। उसने एक अत्यन्त बलशाली सेना निर्माण की और एक दिन स्थानेश्वर पर अधिकार कर लिया। इसके पाँच वर्ष पश्चात् इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर और फिर दस वर्ष पश्चात् कौशाम्बी पर उसका राज्य स्थापित हो गया।

: २ :

कौशाम्बी में एक विशाल हत्याकांड के पश्चात् भी एक भारी संख्या में भारतीय बच गये थे। गांधार से तो केवल सैनिक ही आये थे। सैनिक शासन तो कर सकते थे, परन्तु एक उन्नत समाज के व्यापार तथा व्यवसाय को समझ नहीं सकते थे।

जब कौशाम्बी के आयुक्तक सोमप्रभ की हत्या की गई और उसके पश्चात् नगर-भर में लूटमार मच गई तो कौशाम्बी के व्यापारी वहाँ से भागने लगे। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनों में कौशाम्बी के अन्न-भंडार रिक्त हो गये और डेमिट्रियस के सैनिक भूखे मरने लगे। अब

डेमिट्रियस को समझ आया कि राज्य करना शासन चलाने से एक भिन्न कला है। उसने अपने सैनिकों को समझाया कि इस प्रकार एक अनजान देश में कार्य नहीं चल सकेगा। नागरिकों से समझौता कर मैत्रीपूर्ण व्यवहार अपनाना होगा अन्यथा सब भूखे मर जायेंगे।

परिणाम यह हुआ कि नगर-भर में घोषणा कर दी गई कि गांधार-पति नगर में शान्ति चाहता है, सोमप्रभ की हत्या तो इस कारण की गई थी कि उसने सन्धि की शर्तों का पालन करने से इन्कार कर दिया था और फिर नगर के बहुत से लोग उसकी सहायता के लिये यवनाधिपति के विरोध में खड़े हो गए थे। अत उनको दंड देना अनिवार्य हो गया था।

अब प्रजा को विश्वास दिलाया जाता है कि यवनाधिपति उनके धन-धन की रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है और उनको अपना व्यवसाय पूर्ववत् आरम्भ कर देना चाहिये।

कदाचित् इस घोषणा का विशेष परिणाम न निकलता यदि अन्न-धनाज तथा वस्त्रादि के लिये व्यापारियों को दुगुना, तिगुना मूल्य न दिया जाता। कुछ व्यापारियों ने साहस कर अपनी दुकानें खोलीं और मालामाल होने लगे।

इस प्रकार डेमिट्रियस की सेना के चारों ओर लोभी तथा लालची व्यापारी एकत्रित होने लगे और वे अन्य भारतीयों के सम्मुख विजेताओं की भलमनसाहत, सरल हृदयता, दया तथा सहिष्णुता के गुण गाने लगे।

जब मगध का महामात्य चन्द्रभानु डेमिट्रियस से सन्धि करने आया, तब तक कौशाम्बी पुन एक सजीव नगरी दिखाई देने लगी थी। डेमिट्रियस की सेना के दो लक्ष सैनिकों में से पचास सहस्र के लगभग कौशाम्बी में ही बस चुके थे तथा उन्होंने वहीं अपने विवाह रचा लिये थे। शेष सैनिक अपने शिविरों में रहते थे। वे अपनी स्त्रियों को साथ नहीं लाये थे, इस कारण कौशाम्बी में वेश्या-वृत्ति प्रचलित हो गई थी।

जब चन्द्रभानु कौशाम्बी पहुँचा तो उसने अपना नाम-धाम तथा आने का प्रयोजन लिखकर डेमिट्रियस के पास भेज दिया। डेमिट्रियस ने

अपने परामर्शदाताओं से, जिनमें कुछ भारतीय भी सम्मिलित कर लिये गये थे, जो उसके गुणानुवाद प्रजा में गाते थे, सम्मति माँगी। वास्तव में डेमिट्रियस मगध-सम्राट् के विषय में इतनी हीन सम्मति रखता था कि वह उसके दूत से बात करना समय व्यर्थ गँवाना मानता था, परन्तु परामर्शदाताओं ने निवेदन कर दिया, "महाराज ! मिल कर बातचीत करने में कुछ भी हानि नहीं होगी। लाभ ही हो सकता है। मगध के महामात्य से उनके राज्य की स्थिति का ज्ञान हो सकता है। उसकी बात माननी अथवा न माननी आपके अपने अधिकार में है ही।"

इस पर डेमिट्रियस ने चन्द्रभानु से भेंट स्वीकार कर ली।

जब महामात्य कौशाम्बी में आया तो उसके साथ अंगरक्षकों के स्थान, पचास पीतवसन-धारी भिक्षु देख नगर के लोग, तथा डेमिट्रियस के सैनिक हँसने लगे। चन्द्रभानु उनकी हँसी कारण जानता था, परन्तु वह वहाँ एक प्रयोजन विशेष से आया था और उस प्रयोजन में वह इस रूप को पसन्द करता था।

भिक्षुओं के आने की सूचना डमिट्रियस के पास पहुँची तो वह भी हँसा, परन्तु उसके परामर्शदाताओं ने उससे कहा कि इन भिक्षुओं का मान करना चाहिये। डेमिट्रियस ने पूछा, "क्यों ?"

"इसलिए महाराज ! कि वे इस भारत देश में आपके सबसे बड़े हितैषी हैं।"

"कैसे ?"

"वे सदैव युद्ध के विरोधी होते हैं। जब भी कहीं युद्ध की संभावना होती है, वे पराजय स्वीकार करके भी युद्ध से बचना चाहते हैं। ऐसे लोग सदैव शत्रु का हितचिन्तन करते हैं।"

डेमिट्रियस को यह मीमांसा समझ नहीं आई। इस पर उसके परामर्शदाताओं ने बात को और व्याख्या से समझाने के लिए कहा, "महाराज ! भारत में एक बहुत बड़े सिद्ध पुरुष हुए हैं। उनका नाम गौतम बुद्ध है। उस सिद्ध पुरुष ने एक जीवन-मीमांसा को चलन दिया है,

जिसका नाम पंचशील है।

"इन पचशील में एक शील अहिंसामय होना है, अर्थात् मन से, वचन से तथा कर्म से सबके कल्याण का चिन्तन करना। यहाँ तक कि शत्रु का भी कल्याण चिन्तन किया जाता है।

"इसका अर्थ यह है कि यदि शत्रु विजय पा जाये तो उसको रोकने वाला कोई नहीं और यदि शत्रु परास्त होकर बंदी बना लिया जाय, तो ये सबका कल्याण चिन्तन करने वाले उसको क्षमा कर देते हैं।

"महाराज! मगध-सम्राट् इस समय इसी पचशील सिद्धान्त के मानने वाले हैं और इसी कारण महामात्य के साथ इन भिक्षुओं को भेजा गया है, जिससे ये आपका भी कल्याण-चिन्तन करेंगे।"

डेमिट्रियस ने पाँच दिन प्रतीक्षा कराने के पश्चात् चन्द्रभानु से भेंट की स्वीकृति दी। जब चन्द्रभानु आया तो पहला प्रश्न उसने किया, "मगध-सम्राट् की ओर से हमारे लिये क्या भेंट लाये हो?"

एक क्षण के लिए चन्द्रभानु इस माँग से विचलित हुआ, परन्तु तुरन्त ही अपने चित्त को स्थिर कर उसने कहा, "सिन्धु नदी से लेकर कौशाम्बी तक का पूर्ण प्रदेश मगध-सम्राट आपको भेंट में देते हैं।"

"वह तो हमने पहले ही विजय कर लिया है।"

"श्रीमान्! यदि मगध-सम्राट् की इच्छा इसको भेंट में देने की न होती तो वे आपसे युद्ध करते। उन्होंने युद्ध न कर, यह प्रदेश आपके लिये ही छोड़ दिया है।"

"ओह! तो क्या मगध-सम्राट की इच्छा युद्ध करने की भी हो सकती थी?"

"हाँ श्रीमान्! मगध-सम्राट् यह जानते हैं कि गान्धार देश कुछ अधिक समृद्ध नहीं है। इसी कारण गान्धार-नरेश ने भारत के इस भूभाग को अपने अधिकार में लेने का यत्न किया था। अपने एक भाई को आर्थिक कष्ट में देख मगध-सम्राट् ने उसके इस प्रयत्न पर कोई कारवाई न करने का ही निश्चय किया है। अब अपने महामात्य को भेज..."

प्रदेश वैधानिक ढंग से आपके अधीन करने की घोषणा करते हैं।"

"और यदि हम इस भेंट को स्वीकार न करें तो ?"

"तो श्रीमान्, इस सब को छोड़कर वापस गान्धार लौट जायँ।"

"और यदि हम न लौटना चाहें तो ?"

"तो मगध-सम्राट् विवश होकर आपसे युद्ध करेंगे।"

इस पर डेमिट्रियस ने हँसते हुए कहा, "हम समझते हैं कि यदि तुम्हारे महाराज को युद्ध करना था, तो तब करते, जब हम सिन्धु-तट के उस पार थे। अब यदि उन्होंने युद्ध किया तो वे निश्चित हार जाएँगे।

"इस पर भी हम मगध-सम्राट् का धन्यवाद करते हैं कि उन्होंने इतना बड़ा और सुन्दर देश हमें भेंट में दिया है। हम इस भेंट का प्रतिकार अवश्य देंगे।"

उस दिन भेंट समाप्त हुई। इस वार्त्तालाप से यह निश्चय हो गया कि मगध-सम्राट् डेमिट्रियस का विजित प्रदेश पर वैधानिक अधिकार मान बैठा है।

: २ :

अगले दिन डेमिट्रियस ने मगध-सम्राट् के लिये भेंट-स्वरूप गान्धार की बनी हुई दरियाँ, कम्बल, गुफ्फे इत्यादि बहुत सी वस्तुएँ भेजीं। महामात्य चन्द्रभानु को विवश वे स्वीकार करनी पड़ीं। अस्वीकार कर वह डेमिट्रियस का अपमान नहीं करना चाहता था।

कई दिन पश्चात् पुनः भेंट हुई। इस भेंट में चन्द्रभानु ने महात्मा बुद्ध तथा बौद्ध धर्म की प्रशंसा करनी आरम्भ कर दी। इस पर डेमिट्रियस ने पूछ लिया, "आप मुझे यह बताएँ कि यदि मैं इस धर्म को स्वीकार कर लूं तो मुझको क्या करना होगा ?"

"सबके कल्याण का चिन्तन करना होगा। यही इस धर्म की विशेषता है।"

"शत्रु के कल्याण का भी ?"

"इस धर्म को मानने वाले के लिये संसार में कोई शत्रु नहीं रह जाता।"

"अर्थात् सब मित्र हैं।"

"हाँ श्रीमान् !"

"तब तो मैं इस धर्म को स्वीकार करता हूँ।"

"अब आप संसार के सब प्राणियों को मित्र समझिये।"

"समझ लिया।"

"मित्र के साथ द्वेष नहीं किया जाता।"

"नहीं करूँगा।"

"इस पर कोई आपको अपना शत्रु नहीं समझेगा।"

"अर्थात् कोई भी मुझको अपना शत्रु नहीं मानेगा।"

"नहीं श्रीमान्।"

"यह तो विचित्र है। आप जाकर अपने सम्राट् से कह दें कि मैं उनके धर्म को मानने से उनका मित्र हो गया हूँ। अतः मेरा सब कुछ उनका है और उनका सब कुछ मेरा है।"

"हाँ श्रीमान् ! आप धर्म के तत्त्व को भली-भाँति समझे हैं।"

"परन्तु हमको यह दुःख देख होता है कि हमारे मित्र मगध-सम्राट् बृहद्रथ को राज्य-कार्य का भार निभाने में कष्ट हो रहा है। हम इसमें अपने मित्र की सहायता करना चाहते हैं।"

"इसी विषय पर विचार करने के लिए महाराज ने मुझको आपकी सेवा में भेजा है।"

"इसमें विचार करने की क्या बात है? अब हम परस्पर मित्र हैं। वे मेरी सम्मति मानें और शेष मगध-साम्राज्य मेरे अधिकार में दे दें। इससे उनको कष्ट कम हो जायगा और हम यह राज्य उनके नाम पर चलायेंगे।"

"परन्तु श्रीमान् तो भारतीयों के आचार-विचार से परिचित नहीं। इससे श्रीमान् को अधिक कठिनाई होगी।"

"इसकी चिन्ता मगध-सम्राट् को नहीं करनी चाहिये। करने का अभ्यास रखते हैं। मगध-सम्राट को अब गृहस्थ छो

ले लेना चाहिये।"

"नहीं श्रीमान् ! मगध-सम्राट् धर्म के विषय में आपसे अधिक ज्ञान रखते हैं। इस कारण धर्मयुक्त राज्य वे अधिक योग्यता से कर सकते हैं।"

"हमारा इसमें उनसे मतभेद है। इस मतभेद का निर्णय पंचशील के सिद्धान्त के अनुसार करना चाहिए।"

"क्या अभिप्राय है आपका इससे ?"

"अभिप्राय स्पष्ट है। आपके सम्राट् धर्म जानते हैं अथवा नहीं, मुझे इसका ज्ञान नहीं। वे राजनीति कदापि नहीं समझते। वे राज्य करने के अयोग्य हैं। उनका भला इसी में है कि वे मुझको भारत का सम्राट् मान लें।"

"देखिये महाराज ! यह आपका भ्रम है कि वे राजनीति नहीं समझते। हाँ, वे शिष्टाचार आपसे अधिक जानते हैं। शिष्टाचार पंचशील में से एक शील है।"

"तो आप मुझको अशिष्ट समझते हैं ?"

"नहीं श्रीमान् ! मैंने यह नहीं कहा। मेरा निवेदन केवल इतना है कि अब तक जितने प्रदेश पर आपने अधिकार किया है, वह आपको भेंट में दे दिया गया है। परन्तु मगध-सम्राट् चाहते हैं कि आप इससे एक पग भी आगे न बढ़ें, अन्यथा युद्ध अवश्यम्भावी है।"

"हम युद्ध से नहीं डरते। हमारे हाथों में भी खड्ग है और वह मगध-सम्राट् की खड्ग से अधिक लम्बी है।"

"तो श्रीमान् का अभिप्राय यह है कि जिस प्रयोजन के लिए मैं आया था, वह असफल रहा है।"

"निस्सन्देह ! परन्तु हम आपको असफल लौटने नहीं देंगे।"

"कैसे ?"

"आप हमारे बंदी हैं। आप यहाँ से वापस नहीं जा सकते।"

"श्रीमान् ! मैं राजदूत हूँ। राजदूत बंदी नहीं बनाया जा सकता।"

"हम राजदूत को गुप्तचर-मात्र समझते हैं। यहाँ की जानकारी हम

शत्रु के देश में नहीं जाने देंगे।"

"श्रीमान् ! मेरा निवेदन है कि इतना अभिमान उचित नहीं। मैं आप को मगध-सम्राट् की चेतावनी देना चाहता था। इस पर भी कार्य करने में आप स्वतंत्र हैं। यह निश्चित है कि अपने कर्मों का फल सब को मिलता है।"

"यह हम देख लेंगे। अभी तो आपको आपके कर्मों का फल हम देना चाहते हैं।" इतना कह डेमिट्रियस ने संकेत किया तो उसके अंग-रक्षक ने एक ही बार में महामात्य का सिर धड़ से पृथक् कर दिया। पश्चात् पाथागार में, जहाँ महामात्य भिक्षुओं के साथ ठहरा हुआ था, सैनिक भेज दिये गए, जिससे उन भिक्षुओं को भी बंदी बना लिया जावे। अगले दिन सब को सूली पर चढ़ा दिया गया।

यह तो घटना-मात्र थी कि एक भिक्षु उस समय पाथागार में नहीं था, जब सैनिक उनको बंदी बनाने के लिए गये थे। वह भ्रमणार्थ नगर में गया हुआ था। जब उसको सूचना मिली कि सभी भिक्षु बंदी बना लिये गये हैं तो उसने अपने पीत वस्त्र उतार कर फेंक दिये और छिप कर कौशाम्बी से भाग निकला।

डेमिट्रियस को आशा थी कि चन्द्रभानु की हत्या के समाचार को सुन कर पाटलिपुत्र की सेना कौशाम्बी पर आक्रमण कर देगी और पश्चात् उसको पाटलिपुत्र पर अधिकार करने का अवसर मिल जायगा। परन्तु लगातार प्रतीक्षा करने के पश्चात् भी जब कुछ प्रतिकार नहीं हुआ तो उसने सोचा कि मगध में युद्ध की सामर्थ्य नहीं है।"

इस पर भी वह स्वयं आक्रमण करने से डरता था। उसके दाहिनी ओर मल्ल देश, विदर्भ तथा आन्ध्रदेश थे। उत्तर में अवध, तुषार दौलत इत्यादि सुदृढ़ राज्य थे। ये सब मगध से स्वतंत्र हो, अपने अस्तित्व बनाये हुए थे। उसको भय था कि यदि उसने पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया तो उत्तर और दक्षिण के ये राज्य आगे बढ़, उसका मार्ग काट देंगे और उसका गान्धार से सम्बन्ध टूट जायगा।

इस कारण उसने पहले इन राज्यों से सन्धि करनी चाही। उसने अपने

दूत इन राज्यों में भेजे। कोई भी राज्य डेमिट्रियस से युद्ध नहीं चाहता था, परन्तु वे सन्धि कर मगध पर आक्रमण करना भी नहीं चाहते थे। इस पर भी सबने आश्वासन दिया कि वे तटस्थ रहेंगे, परन्तु डेमिट्रियस को भी यह आश्वासन देना पड़ा कि वह उन पर आक्रमण नहीं करेगा।

अवध, जिसकी राजधानी साकेत थी, की स्थिति कुछ भिन्न थी। अवध एक सुदृढ़ राज्य था और अनुभव करता था कि मगध राज्य के विघटित होने पर उसकी लूटमार में वह भी भागीदार है। अतः जब डेमिट्रियस के दूत सन्धि-वार्त्ता के लिए वहाँ पहुँचे, तो अवध-नरेश ने स्पष्ट कह दिया, "यदि मगध पर आक्रमण हुआ और डेमिट्रियस की विजय हुई तो मिथिला पर साकेत का राज्य होगा।"

डेमिट्रियस इस बात को मानने के लिए तब तैयार था, यदि अवध की सेनाएँ भी मगध पर आक्रमण में साथ दें।

इस प्रकार परस्पर बातचीत चलते एक वर्ष का काल व्यतीत हो गया। अभी अवध के साथ सन्धि पूर्ण नहीं हुई थी कि डेमिट्रियस को सूचना मिली कि मगध में क्रान्ति घट गई है और महाराज बृहद्रथ की हत्या हो गई है तथा उसके स्थान पर एक ब्राह्मण युवक शासक बन गया है। राज्य के अधिकांश नागरिक ब्राह्मण के साथ हैं। केवल बौद्ध-भिक्षु, जिनको राज्य की ओर से सहायता मिलनी बन्द हो गई है, इस ब्राह्मण का विरोध कर रहे हैं।

अभी साकेत से बातचीत चल रही थी कि बौद्ध महाप्रभु बादरायण से मौखिक वार्त्तालाप आरम्भ हो गया। बृहद्रथ के जीवन-काल में भी महाप्रभु से पत्र-व्यवहार हुआ था, परन्तु अब उसको सन्देश मिला था कि पत्र-व्यवहार पर राज्य की दृष्टि पड़ सकती है, इस कारण दूतों के द्वारा मौखिक वार्त्तालाप चला। ये सन्देश, श्रावकों के वस्त्र पहिने हुए, दूत ही ले जा सकते थे, क्योंकि पुष्यमित्र के प्रबन्ध में डेमिट्रियस के गुप्तचरों का प्रवेश मगध में रुक गया था।

बौद्ध महाप्रभु से वार्त्तालाप अभी चल रहा था कि साकेत से सन्धि की

वार्त्ता भंग हो गई। इससे डेमिट्रियस ने यह समझा कि मगध तथा साकेत में सन्धि की चर्चा आरम्भ हो गई है। इसके पूर्व कि उनमें कोई सन्धि हो, डेमिट्रियस ने साकेत पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी।

कौशाम्बी से साकेत में जाने के लिए एक-सौ कोस के लगभग यात्रा मगध राज्य में से करनी होती थी। डेमिट्रियस का विचार था कि साकेत पर आक्रमण की सूचना पाटलिपुत्र पहुँचने से पूर्व ही वह साकेत पर अधिकार कर लेगा, [illegible] पश्चात् वह मगध से आसानी से निपट सकेगा।

वह जानता था कि [illegible] समर की सफलता सेना की गति पर निर्भर करती है।

४

अरुन्धती [illegible] सम्मति से पुष्यमित्र ने सेना के तीनों दलों को तैयार रहने का आदेश [illegible] दिया। [illegible] को सूचना पाते ही कौशाम्बी पर आक्रमण करना [illegible] यवनों की सेना के साकेत में प्रवेश कर लेने पर [illegible] पर आक्रमण करना था।

अगले दिन पुष्यमित्र पूजा-पाठ आदि से निवृत्त हुआ ही था कि अरुन्धति उससे भेंट करने [illegible]। पुष्यमित्र ने उसको देखा तो पूछ लिया, "अब क्या सूचना [illegible]?"

"मैं समझती हूँ कि [illegible] कुछ दिन के लिए अपने विभाग का कार्यालय लक्ष्मणपुर में [illegible]।"

"वहाँ क्या है?"

"वहाँ से कौशाम्बी [illegible] सेना के शिविर समीप पड़ते हैं।"

"परन्तु इस प्रकार [illegible] का बहुत कष्ट होगा।"

"यहाँ का कार्य मैं [illegible] को सौंप रही हूँ। वह आपको पूर्ण सूचनाएँ देता रहेगा।"

"देवी! सुमित्र को लक्ष्मणपुर का कार्य नहीं सौंप सकती क्या?"

"मैं समझती हूँ कि मेरा [illegible] है। कुछ गुप्तचर तो रात्रि ही वहाँ के लि[illegible]। अब मेरे लिए भी [illegible]

तैयार है। कुछ अन्य लोग मध्याह्न तक यहाँ से प्रस्थान करेंगे। मेरे साथ पाँच अश्वारोही जा रहे हैं, जिससे यदि मार्ग में कोई सूचना भेजनी आवश्यक हुई, तो भेजी जा सके।"

"अच्छी बात है। मैं देवी के साथ पचास सुभद्र रक्षार्थ भेज रहा हूँ।"

इस पर अरुन्धति खिलखिलाकर हँस पड़ी। हँसकर उसने कहा, "जो मार्ग मैं एक दिन में तय करना चाहती हूँ, उसमें पाँच दिन लग जायँगे। बताइये, पचास सवार मेरे साथ होंगे तो उनके भोजन, निवास आदि का प्रबन्ध भी करना होगा। उनके अश्वों को विश्राम का समय देना होगा। इससे पाँच-छः दिन से कम समय में लक्ष्मणपुर पहुँचना असम्भव है।

"देखिये श्रीमान्! मैंने अपने रथ के अश्वों को प्रत्येक पाँच कोस के अन्तर पर बदलने का प्रबन्ध कर लिया है। यदि पचास अश्वारोही मेरे साथ गये तो सबके अश्वों को बदलने का प्रबन्ध नहीं हो सकेगा और यात्रा में विलम्ब होगा।"

पुष्यमित्र इस पर अवाक् अरुन्धति का मुख देखता रह गया। वह विचार करने लगा था कि अरुन्धति कितनी चतुर, दूरदर्शी स्त्री है! इस दूरदर्शिता का उसकी योजनाओं की सफलता में कितना भारी हाथ है?

अब पुनः अरुन्धति ने कहा, "जो सेना कौशाम्बी पर आक्रमण करने वाली है, आपका उसके साथ रहना आवश्यक है। मुझे विश्वास है कि डेमिट्रियस आक्रमण की सूचना पाते ही कौशाम्बी से भाग खड़ा होगा और दिन निकलते-निकलते हमारा अधिकार कौशाम्बी पर हो जायगा। इस कारण आशा है कि अब वहीं भेंट होगी।"

इतना कह, नमस्कार कर अरुन्धति आगार से बाहर निकल गई। पुष्यमित्र अवाक् उसको जाते देखता रह गया। वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु उसके मुख से शब्द नहीं निकले। वह विचार कर रहा था कि योजना उसकी है, परन्तु उसको चलाने वाले कहाँ-कहाँ हैं।

पूजागृह से निकल कर, वह अल्पाहार के लिये भोजनालय में जा पहुँचा। वहाँ भगवती तथा उसके पिता अरुणदत्त, पहले से ही उपस्थित

होती थी। पिता ने यह देखा तो पूछ लिया, "भगवती ! मुख मलिन क्यों हो रहा है ?"

"मलिन तो नहीं। केवल यह विचार कर रही थी कि समर का कार्य-क्रम ऐसा नपा-तुला है कि किंचित् मात्र विघ्न से कहीं सारा खेल न बिगड़ जाय।"

"ऐसा नहीं होगा माँ !" पुष्यमित्र ने कहा, "प्रत्येक प्रकार की सम्भावना पर विचार कर लिया गया है और प्रत्येक प्रकार की सम्भावित बाधा को दूर करने का उपाय भी कर लिया गया है।"

सायंकाल नहीं होने पाया। मध्याह्नोत्तर ही अवध-सीमा से समाचार आ गया कि यवन-सेना अवध-राज्य में प्रविष्ट हो चुकी है। साकेत के नागरिक सर्वथा असावधान थे और आक्रमण की सूचना पर गाँव के गाँव रिक्त होने आरम्भ हो गये हैं।

समाचार लाने वाले ने बताया, "हमको यह सूचना थी कि यवन-सेना का मार्ग नहीं रोकना है। जब उनका अन्तिम सैनिक सीमा पार कर गया तो मैं अश्व पर सवार हो इस ओर चल पड़ा। प्रातःकाल का चला हुआ अब पहुँचा हूँ।"

यह प्रबन्ध अवध-सीमा के पास के सैनिक-शिविर में ही था कि जब दूत पाटलिपुत्र के लिये सूचना लेकर रवाना हो तो इसका समाचार अन्य दोनों शिविरों को भी भेज दिया जाय। जिस समय अवध-सीमा पर, यवन-सेना पर पीछे से आक्रमण करने की योजना बन रही थी, उसी समय अन्य दोनों शिविरों में कौशाम्बी पर आक्रमण की तैयारी हो रही थी।

पुष्यमित्र सूचना पाते ही रवाना हो गया। पूर्व की ओर आक्रमण करने वाली सेना का नेतृत्व उसे करना था। सेनापति पिछली रात ही पश्चिम से आक्रमण करने वाली सेना का नेतृत्व करने के लिये जा चुका था।

: ५ :

डेमिट्रियस ने जब साकेत के राजदूतों को कौशाम्बी से बिना सूचना दिये भागते देखा तो वह समझा कि अवध और मगध में सन्धि हो गई

है। वह नहीं चाहता था कि साकेत तथा मगध की सेना एकत्रित होकर उस पर आक्रमण की योजना बनाये। इस कारण उसने उसी समय अवध पर आक्रमण की आज्ञा दे दी। पचास सहस्र सैनिक उसी समय मगध-राज्य में प्रवेश कर साकेत की ओर बढ़ चले। उसके शेष सैनिक इन्द्रप्रस्थ में शिविर लगाये बैठे थे। उनको बुलाने में समय व्यर्थ जाता, इस कारण उसने कौशाम्बी में जितने सैनिक थे, उनको ही जाने की आज्ञा दे दी। केवल दस सहस्र सैनिक कौशाम्बी में नागरिकों पर नियंत्रण रखने के लिए शेष बचे थे।

डेमिट्रियस उत्सुकता से साकेत-विजय के समाचार की प्रतीक्षा कर रहा था कि चौथे दिन सायंकाल उसको सूचना मिली कि नगर के पूर्वी और दक्षिणी द्वार पर दो विशाल सेनाएँ आ खड़ी हुई हैं।

"कहाँ की सेनाएँ हैं ?" उसने समाचार लाने वाले से पूछा।

"मगध की प्रतीत होती हैं।"

"इतनी जल्दी कहाँ से आ गईं ?" डेमिट्रियस कुछ समझ नहीं सका। उसने उसी समय नगर-द्वार बंद करने का आदेश दे दिया और एक भारतीय परामर्शदाता के हाथ में श्वेत पताका देकर भेज दिया कि वह जाकर समाचार लाये कि वे कौन हैं और क्या चाहते हैं ?

भारतीय परामर्शदाता का नाम कैवल्य था। कैवल्य जब हाथ में श्वेत पताका लिये द्वार से बाहर निकला तो मागधी सैनिकों ने उसको बंदी बनाकर पुष्यमित्र के सम्मुख उपस्थित कर दिया। उसने प्रश्न [illegible] का आशय बताते हुए कहा, "यवनाधिपति श्रीमान् निकोलाई डेमिट्रियस यह जानना चाहते हैं कि यह सेना कहाँ की है और क्या चाहते हैं।"

"तुम कौन हो ?" पुष्यमित्र का प्रश्न था।

"मैं कन्नौज का रहने वाला एक ब्राह्मण हूँ तथा यवनाधिपति की सेवा में एक परामर्शदाता हूँ। मेरा नाम कैवल्य है।"

"कब से यवनाधिपति की सेवा में हो ?"

"डेढ़ वर्ष से अधिक हो चुका है।"

"तब तो तुम यहाँ थे, जब मगध-महामात्य चन्द्रभानु डेमिट्रियस के पास पहुँचे थे।"

"जी हाँ।"

"महामात्य चन्द्रभानु कहाँ हैं ?"

"वे स्वर्ग सिधार गये हैं।"

"अपनी इच्छा से ?"

"नहीं श्रीमान् ! महाराज डेमिट्रियस से वार्तालाप करते हुए उन्होंने महाराज को कुछ अनुचित शब्द कहे, जिसके परिणामस्वरूप महाराज को क्रोध चढ़ आया और उनको प्राणदंड की आज्ञा हो गई।"

"तुम जानते हो कि दूत को प्राणदंड नहीं दिया जाता।"

"यह भारतवर्ष की रीति है।"

"तो क्या गान्धार की नहीं है।"

"ऐसा ही प्रतीत होता है।"

"तो ठीक है, हम आज गान्धार की नीति का उत्तर उन्हीं की नीति से देंगे। हम उनके दूत से वैसा ही व्यवहार करेंगे, जैसा हमारे राजदूत से किया गया था।"

कैवल्य इस बात को सुन घबरा उठा। उसके माथे पर पसीने की बूंदें चमकने लगीं। उसने हाथ जोड़ते हुए कहा, "श्रीमान् ! मैं तो डेमिट्रियस का महामात्य नहीं, एक तुच्छ सेवक मात्र हूँ। अतः मुझसे वैसा व्यवहार करना, जैसा मगध के महामात्य से किया गया था, अन्याय हो जायगा।"

"यह न्याय-अन्याय का निर्णय भगवान् के पास जाकर करना। हाँ, तुम्हारे साथ कुछ रियायत की जा सकती है। यदि तुम हमारे प्रश्नों का उत्तर सत्य-सत्य दोगे तो हम तुम्हें प्राणदंड नहीं देंगे।"

"महाराज ! आज्ञा करें।"

"अच्छा तो बताओ, कौशाम्बी में इस समय कितने सैनिक हैं ?"

"दस सहस्र।"

"उनके पास शस्त्रास्त्र कैसे हैं ?"

"धनुष-बाण, खड्ग, भाले तथा आग लगाने का सामान है।"

"नगर में प्रवेश के लिए कौन-सा मार्ग ठीक रहेगा?"

"यहाँ से दक्षिण की ओर प्राचीर में एक नाला है। नाला बहुत गंदा है, परन्तु विशेष रक्षित नहीं।"

"अच्छी बात है। यदि यह उत्तर सत्य हुआ तो तुम्हें एक माननीय बंदी के रूप में रखा जायगा और जब तुम्हारे स्वामी को, उसके कुकर्मों का दंड मिल जायगा, तो तुम्हें छोड़ दिया जायगा, अन्यथा तुम उस वृक्ष के साथ फाँसी पर लटका दिये जाओगे।"

डेमिट्रियस विचार कर रहा था कि दूत घूम-घाम कर सेना का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर वापस आयगा, परन्तु रात्रि समीप थी और वह नहीं आया। इस पर वह समझ गया कि उसको बंदी बना लिया गया है और कदाचित् उसका वही अन्त हुआ होगा, जो उसने महामात्य चन्द्रभानु का किया था। प्रत्यक्ष सेना देखकर तो वह अनुमान लगा रहा था कि इस युद्ध में उसकी विजय अनिश्चित है।

अब उसने अपना कार्यक्रम बनाना आरम्भ किया। वह चाहता था कि एक सप्ताह तक मागधी सेना को रोके रखा जाय, तब तक हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ से सेना लेकर वह मागधी सेना पर पीछे से आक्रमण कर देगा। अत: अपनी योजना, अपने उपसेनापति को समझाकर, वह नगर के उत्तरी द्वार से निकल इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान कर गया।

परन्तु किसी प्रकार से यह समाचार नगर भर में फैल गया कि डेमिट्रियस भाग गया है। इसके साथ ही रात्रि के गहन [illegible] पाँच सौ मागधी नाले में से नगर के अन्दर प्रविष्ट हो गये। वे [illegible] आये थे, इस कारण साधारण से युद्ध में ही उन्होंने दक्षिणी द्वार [illegible] मार्ग साफ कर लिया। द्वार पर घमासान युद्ध के पश्चात् वे द्वार [illegible] में समर्थ हो गये।

बस फिर क्या था? सूर्योदय होते-होते पूर्ण नगर पर [illegible] अधिकार हो गया। सेना ने दिन भर आराम किया और [illegible]

प्रात:काल ही इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान कर दिया।

डेमिट्रियम हस्तिनापुर पहुँच इन्द्रप्रस्थीय सेना को वहाँ आ, हस्तिनापुर की सेना के साथ मिलकर कौशाम्बी पर आक्रमण करने का आदेश भेज ही रहा था कि कौशाम्बी से भागकर आये सैनिकों ने सूचना दी कि कौशाम्बी मागधियों के अधीन हो चुका है। इस पर डेमिट्रियस हस्तिनापुर की सेना के साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर वहाँ संयुक्त मोर्चा लगाने के लिए चल पड़ा।

परन्तु उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब इन्द्रप्रस्थ के बाहर पहुँचकर उसको यह पता चला कि मागधी सेना पहले ही इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार कर चुकी है। अब उसके लिये स्थानेश्वर को लौट जाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा था। यहाँ अब उसके मार्ग में एक अन्य कठिनाई आ उपस्थित हुई। मार्ग में जितने गाँव पड़ते थे, वहाँ यह सूचना पहुँच चुकी थी कि गान्धारों को भारी पराजय मिली है और अब डेमिट्रियस अपनी सेना के साथ भाग रहा है। उन्होंने संगठित होकर भागते हुए गान्धार सैनिकों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। गान्धार-सेना पहले ही हतोत्साह हो चुकी थी, अब इस विपत्ति से घबरा उठी। भागती हुई जब वह स्थानेश्वर पहुँची तो नगर का द्वार उनको बंद मिला। स्थानेश्वर के नागरिकों ने, जिनको यवनों की पराजय का समाचार मिल चुका था, नगर के द्वार बन्द कर लिये थे और उनको भीतर प्रवेश नहीं करने दिया।

विवश डेमिट्रियस ने थकी हुई सेना को नगर के बाहर विश्राम करने की आज्ञा दे दी। इस पर भी रात्रि के समय आसपास के देहातों के लोगों ने उन पर छापे डालने आरम्भ कर दिये।

आधी रात के समय उनमें यह समाचार फैल गया कि मागधी सेना उनका पीछा करते हुए चली आ रही है और सवेरे तक उनके पास पहुँच जायगी। इस पर तो बचे-खुचे सैनिक उसी समय भाग खड़े हुए। इनमें से अधिकांश देहातियों के हाथ में पड़ कर मार डाले गये।

इससे डेमिट्रियस इतना हताश हुआ कि वह अपने शेष बचे तीन-चार

कारण अयोध्या की रक्षा हो सकी थी अन्यथा उनकी विजय अनिश्चित ही थी। उसने सेनापति को निमंत्रण देकर उससे मिलने की इच्छा प्रकट की। दोनों मिले और परस्पर मैत्री-भाव प्रकट कर विदा हुए। मगध-सेना के पड़ाव का पूर्ण-प्रबन्ध अवध-सेना ने अपने ऊपर ले लिया। इस पर भी अगले दिन प्रातः ही मगध सेना लक्ष्मणपुर को लौट गई।

पुष्यमित्र ने एक सहस्र सैनिक कौशाम्बी में छोड़, शेष सैनिकों के साथ अगले दिन ही इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान कर दिया था। परिणाम यह हुआ था कि अभी डेमिट्रियस हस्तिनापुर में अपनी सेना एकत्रित ही कर रहा था कि इन्द्रप्रस्थ पर मागधी सेना का अधिकार हो गया।

जब डेमिट्रियस अपने बचे हुए तीन-चार-सौ सैनिकों के साथ सिन्धु पार कर अपनी जान बचाने का यत्न कर रहा था, पुष्यमित्र ने कौशाम्बी में मंत्रिमंडल की बैठक बुला ली।

अरुन्धति को जब पता चला कि साकेत भेजी हुई यवन सेना पूर्ण विनाश को प्राप्त हुई है तो वह भी लक्ष्मणपुर से कौशाम्बी जा पहुँची। उसको यह जानकर विस्मय हुआ कि पुष्यमित्र उसकी गणना से भी शीघ्र युद्ध समाप्त करने के लिए कौशाम्बी से इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान कर चुका है।

एक दिन कौशाम्बी में विश्राम कर वह भी इन्द्रप्रस्थ की ओर चल पड़ी, परन्तु मार्ग में ही पुष्यमित्र वहाँ से लौटता हुआ मिल गया।

पुष्यमित्र ने इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार करने के पश्चात् सेना के दो विभाग कर दिये थे। एक विभाग को डेमिट्रियस का पीछा करते हुए स्थानेश्वर तथा वहाँ से सिन्धु तक अधिकार करने के लिये भेज दिया था तथा दूसरे को उसने काश्मीर पर अधिकार करने का आदेश दे दिया था। स्वयं वह मंत्रिमंडल की बैठक के लिये कौशाम्बी लौट रहा था।

मार्ग में अरुन्धति से भेंट हो गई और अरुन्धति भी पुष्यमित्र के साथ वापस लौट पड़ी। लौटते हुए इस इस बात पर विचार होने लगा कि पूर्ण मगध राज्य का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाय। अरुन्धति का कहना

था कि इस समर-विजय में जिन-जिन का हाथ है, उनको पुरस्कार मिलना चाहिये। पुष्यमित्र ने कहा, "यह तो होना ही चाहिये। मेरे विचार में सर्व-प्रथम पुरस्कार पर तो देवी अरुन्धति का ही अधिकार है।"

"यह कैसे ? ऐसा प्रतीत होता है कि मगध-शासक अपने कार्य में ऐसे व्यस्त रहे हैं कि उनको इस बात का ज्ञान ही नहीं रहा कि उनका कार्य कर कौन रहा है ?"

"इसकी जाँच के लिये हमने गुप्तचर विभाग का अधिकारी एक अति योग्य व्यक्ति नियुक्त किया है। वह जिन-जिन को पुरस्कार का भागी समझे उनकी सूची मन्त्रिमण्डल में उपस्थित कर दे। मंत्रिमंडल पुरस्कार का निश्चय कर देगा।"

"यही तो मेरा निवेदन है कि जिस विभाग का यह कार्य है, उससे पूछे बिना श्रीमान् अपने ही घर वालों को पुरस्कार देने का आयोजन कर रहे हैं।"

"ओह ! ठीक तो है।"

"हाँ, घर के प्राणियों के अतिरिक्त ऐसे सहस्रों प्राणी हैं, जिनको इस समर में किसी प्रकार का राजनीतिक लाभ नहीं प्राप्त होने वाला। उनका विचार भी तो करना ही होगा।"

"तो क्या इस देश में ऐसे लोग भी हैं, जिनको कोई राजनीतिक लाभ नहीं प्राप्त होने वाला ?"

"हाँ है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिन्हें राज्य में कोई पदवी अथवा अधिकार प्राप्त नहीं करना। सहस्रों ने दिन-रात अथक और अद्भुत परिश्रम किया। जिससे यह आयोजन सफल हो सके। सोने-चाँदी के टुकड़े अथवा झूठी मान-प्रतिष्ठा देने से उनको सन्तोष नहीं होगा।"

कौशाम्बी में पहुँच पहला कार्य जो सम्पन्न हुआ, वह अरुन्धति को मन्त्रिमंडल में लेना था। इसके पश्चात् एक घोषणा की गई, जिसमें इन सब व्यक्तियों के प्रति, जिन्होंने वैतनिक अथवा अवैतनिक रूप से इस

मर-कार्य में सहयोग दिया था, आभार प्रदर्शित किया गया। कठिनाई हाँ उपस्थित हुई, जब चुपचाप कार्य करने वालों की सूची तैयार की ाने लगी, जिससे उनको पुरस्कार दिया जा सके।

जाँच करने पर पता चला कि महर्षि पतंजलि के आश्रम के प्रत्येक ाक्ति—युवा अथवा वृद्ध—ने किसी-न-किसी भाँति आन्दोलन को सफल नाने का यत्न किया था। प्राय: युवक सेना में भरती हो गये थे। वृद्ध- न गाँव-गाँव में फैल गये थे और लोगों के मन में बौद्ध भिक्षुओं द्वारा ालाई भ्रान्तियों का निवारण करने लग गये थे। बौद्ध भिक्षु नवीन ना का विरोध करते थे तथा महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार बुलाते , जिससे नवीन सेना महाराज बृहद्रथ के विरुद्ध न हो सके। उनका ह भी प्रयत्न रहा था कि प्रजा के मन में यवनों और गान्धारों के ति मित्रता की भावना बनी रहे। यह महर्षि के आश्रम के वृद्धजनों के ी प्रयास का परिणाम था कि महाराज बृहद्रथ की हत्या होने पर भी जा ने शोक नहीं मनाया था और हर प्रकार से पुष्यमित्र की नवीन ाना का स्वागत किया था।

महर्षि जी को उनकी सेवाओं का पुरस्कार देना तो उनका अपमान रना था, परन्तु आश्रमवासियों की बात दूसरी थी। किस प्रकार नको पुरस्कृत किया जाये, इसका निश्चय महर्षि जी पर ही छोड़ दिया ाया और पंडित अरुणदत्त महामात्य को कहा गया कि वे महर्षि जी से इस विषय में परामर्श करें।

: ७ :

महर्षि पतंजलि का कहना था कि देश से विदेशियों को निकाल देने ात्र से ही देश तथा धर्म की समस्या सुलझ नहीं सकती। इसके लिए कुछ अन्य बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। उनका कहना था कि श तो भारत-खंड है। इसकी सीमाएँ सिन्धु नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र तक क ओर तथा काश्मीर और तुषार शैलभू से लेकर कन्या कुमारी तक सरी ओर हैं।

"इतने बड़े देश में एक ही राज्य हो, ऐसा नहीं हो सकता। इस दिशा में यत्न करने से वैमनस्य फैलने की ही संभावना है। इस पर भी भारत-खंड की एकता तो रहनी ही चाहिये। यह इस कारण कि भारतवासी एक राष्ट्र हैं। एक राष्ट्र की राजनैतिक अखंडता हम उसी ढंग से रख सकते हैं, जैसे प्राचीनकाल में हमारे इस भारत-खंड में रखी जाती थी।

"यहां पर एक चक्रवर्ती राज्य स्थापित होना चाहिये। इसके लिये मेरी सम्मति यह है कि भारत के सब मुख्य-मुख्य राजाओं की एक सभा देश के किसी केन्द्रीय स्थान पर बुलाई जाय और सब मिलकर स्वेच्छा से एक को यहाँ का चक्रवर्ती राजा चुन लें। वह राजा और उसका राज्य देश की सुरक्षा का प्रबन्ध करे। अन्य राजा लोग इसमें उसकी सहायता करें।"

महर्षि अपनी सम्मति मन्त्रिमंडल द्वारा नियुक्त एक समिति के सम्मुख रख रहे थे। इस समिति में अरुन्धति तथा पंडित अरुणदत्त थे। जब महर्षि ने अपनी योजना रखी तो अरुणदत्त ने पूछ लिया, "भगवन्! चक्रवर्ती राज्य तथा साम्राज्य में क्या अन्तर है?"

"साम्राज्य में भिन्न-भिन्न स्वतंत्र राज्यों के लिये स्थान नहीं होता। चक्रवर्ती राज्य में सब राज्य स्वतंत्र होते हैं। देश की रक्षा के अवसर पर सब राज्य चक्रवर्ती राजा की पताका के नीचे एकत्रित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न राज्यों के झगड़े भी चक्रवर्ती राजा न्याय और सहिष्णुता से निपटाता है।

"जहाँ साम्राज्य देश के भिन्न-भिन्न राज्यों के ऊपर एक शासक राज्य का प्रतीक है, वहाँ चक्रवर्ती राज्यान्तर्गत तो, समान राष्ट्र वाले राज्य ही समान भाव में आ सकते हैं।"

अरुन्धति का प्रश्न था, "परन्तु भगवन्! इन सबका क्या अर्थ होगा, यदि सब राज्य परस्पर एकमत न हो सकें कि कौन राजा चक्रवर्ती हो?"

"यह मैं जानता हूँ। कभी भी कोई राजा स्वेच्छा से किसी दूसरे को अपने से बड़ा मानने को तैयार नहीं होता। इस पर भी यदि अधिक संख्या में राज्य यह स्वीकार कर लें तो अन्य राज्यों को, जो चक्रवर्ती राज्य के

अन्तर्गत आने को तैयार न हों, इसके लिये विवश किया जा सकता है।

"सभा में यह बात तो होगी ही कि पहले सबको एकमत होने का अवसर मिलेगा।"

"तो भगवन्! इस सभा का आयोजन किया जाना चाहिये।"

"हाँ, परन्तु उससे पूर्व पहले मगध के शासक का राज्याभिषेक होना चाहिये। इससे शासक राजा की पदवी पा जायेगा। तदनन्तर और यदि हो सके तो राज्याभिषेक के समय पर ही, इस सभा का आयोजन कर दिया जाय।

"यह स्वाभाविक है कि कुछ राजा लोग मगध के चक्रवर्ती होने का विरोध करेंगे, परन्तु यह भी निश्चित है कि जिस कुशलता से मगध ने यवनों को परास्त कर, उन्हें सिन्धु के पार किया है, उससे कई राजा प्रभावित हुए होंगे और वे हमारे इस आयोजन में हमारा समर्थन करेंगे। अतः राज्याभिषेक पर निमंत्रण भेजने के लिए सूची बनाते समय अधिकांश ऐसे राजाओं को सम्मिलित करना चाहिये, जो हमारे पक्ष के हों।

"पश्चात् अश्वमेध यज्ञ किया जाये और जो राजा मगध-सम्राट् को चक्रवर्ती न मानें, उनको इसके लिये विवश कर दिया जाय।"

महामात्य और अरुन्धति महर्षि से विचार-विनिमय कर लौट आये। इस समय तक मगध सेना की टुकड़ियाँ न केवल मुख्य-मुख्य नगरों में नियुक्त हो चुकी थीं, प्रत्युत भारत की सीमा, सिन्धु नदी के तट पर दुर्ग बनाने लगी थीं।

मन्त्रिमंडल ने उस पूर्ण क्षेत्र को, जो यवनों से रिक्त कराया था, मगध-राज्य में सम्मिलित कर, पूर्ण राज्य को आठ विभागों में बाँट दिया था और प्रत्येक विभाग का एक-एक आयुक्तक नियुक्त कर दिया था। इन आयुक्तकों को अपने-अपने विभाग में सेना निर्माण करने की स्वीकृति दे दी गई थी। इन सब आयुक्तकों के ऊपर महामात्य तथा सेनापति की नियुक्ति कर दी गई थी।

जब पुष्यमित्र का पिता तथा अरुन्धति महर्षि से बातचीत कर वापिस

लौटे तो पुष्यमित्र ने एक के पश्चात् एक मन्त्रिमंडल की बैठकें आयोजित करनी आरम्भ कर दीं। इनमें राज्याभिषेक तथा उस सभा का, जिसका महर्षि जी ने प्रस्ताव रखा था, कार्यक्रम आदि बनने लगा। इसमें तो सब लोग सहमत थे कि ऐसी सभा का आयोजन होना चाहिए और भारतवर्ष में चक्रवर्ती महाराज की प्रथा पुन: चले, परन्तु इसकी सफलता पर सबको सन्देह था। इस पर भी इस विषय में प्रयत्न करने का निश्चय हो गया।

सब से पूर्व प्रजा-परिषद् में पुष्यमित्र के राज्याभिषेक करने का प्रश्न उपस्थित करने का निश्चय हुआ और प्रजा परिषद् की अध्यक्षता के लिये महर्षि जी से प्रार्थना कर दी गई।

प्रजा परिषद् में जहाँ प्रत्येक नगर और गाँव के प्रतिनिधि बुलाये गये, वहाँ प्रत्येक व्यवसाय और उद्योग के प्रतिनिधि भी आमन्त्रित किये गये। मन्त्रिमण्डल का यह विचार था कि इस प्रजा परिषद् में अभी चक्रवर्ती राज्य का प्रश्न उपस्थित न किया जाय। सबसे पूर्व पुष्यमित्र के राज्याभिषेक का निर्णय हो।

प्रजा-परिषद् में महर्षि जी ने पुष्यमित्र के कार्य-कलापों का विस्तार से वर्णन कर तथा उसकी देश सम्बन्धी योजनाओं पर प्रकाश डाल, उसका नाम मगध के राजा के रूप में प्रस्तुत कर दिया। पुष्यमित्र के पक्ष में इतना प्रबल मत था कि उसका नाम निर्विरोध स्वीकार हो गया।

इसके पश्चात् राज्याभिषेक की तिथि निश्चित की गई और प्रजा परिषद् विसर्जित कर दी गई।

परन्तु महर्षि राज्याभिषेक से पूर्व एक अन्य कार्य सम्पन्न करना चाहते थे। इस कारण प्रजा-परिषद् के विसर्जन के पश्चात् उन्होंने पंडित अरुणदत्त से भेंट की और कहा, "पंडित अरुणदत्त! पुष्यमित्र को बुलाओ। हम उसके राज्याभिषेक से पूर्व एक अन्य बात का निश्चय करना आवश्यक समझते हैं।"

अरुणदत्त महर्षि जी के इस आदेश से समझ गया कि यह पुष्यमित्र के विवाह की ही बात है, जिसका वे निश्चय करना चाहते हैं। उसने

पुष्यमित्र को बुला भेजा। पुष्यमित्र के आने पर महर्षि ने कहा, "मगध के शासक को मगध की राजगद्दी पर बैठाने का निर्णय प्रजा-परिषद् ने कर लिया है, परन्तु पत्नी के बिना कोई भी यज्ञ पूर्ण नहीं होता। अतएव हम चाहते हैं कि मगध शासक के विवाह का निर्णय भी हो जाना चाहिये।"

"भगवन् ! माँ ने मेरे लिए एक कन्या का चुनाव कर लिया है। मैं उस चुनाव को स्वीकार कर चुका हूँ। अतएव विवाह के विषय में माता जी से ही निश्चय होना चाहिये।"

भगवती और अरुन्धति को बुलाया गया। जब अरुन्धति आई तो महर्षि ने पुष्यमित्र तथा उसको आशीर्वाद दे दिया।

: ८ :

अब पाटलिपुत्र में उत्सवों की भरमार हो गई। सबसे पूर्व विजयोत्सव ही मनाया गया था। यह उत्सव पूर्ण राज्य में, प्रत्येक नगर में स्थान-स्थान पर मनाया गया। दूसरा उत्सव था पुष्यमित्र के विवाह का और उसके पश्चात् राज्याभिषेक उत्सव की तैयारी होनी थी।

पुष्यमित्र के विवाह पर उत्सव केवल पाटलिपुत्र तक ही सीमित रखा गया।

यद्यपि प्रजा-परिषद् ने सर्व सम्मति से पुष्यमित्र का नाम राजा के रूप में स्वीकार कर लिया था, इस पर भी प्रजा का एक अंश इससे असन्तुष्ट था। यह अंश बौद्धों से प्रभावित होने के कारण अपना असन्तोष प्रजा में फैला रहा था।

एक बात तो निश्चित थी कि राज्य में व्यवसाय सुचारु रूप से चल रहा था। सुख सम्पदा का विस्तार हो रहा था। अतएव राज्य की निन्दा का प्रभाव बिल्कुल नहीं पड़ सकता था। हाँ, पुष्यमित्र के ऊपर लाँछन लगाने का प्रयत्न किया जाने लगा।

एक सेठ्ठी की दुकान पर इसी विषय पर दो ग्राहक बातचीत कर रहे थे। एक ग्राहक ने कहा, "कलियुग आ गया है। तभी तो ब्राह्मण राजा होने लगे हैं।"

इस पर दूसरे ने कह दिया, "हाँ भाई! और शूद्र ब्राह्मण हो गये हैं?"

पहिले ने पूछ लिया, "कौन शूद्र ब्राह्मण हो गया है?"

"भिक्षु बादरायण।"

"वह शूद्र है क्या? किसका पुत्र है वह?"

"किसी अज्ञात माता-पिता का। तभी तो उसको शूद्र कहता हूँ।"

"वाह! जिसके माता-पिता का ज्ञान न हो, वह शूद्र कैसे हो गया?"

"जब माता-पिता का ज्ञान न हो और कर्म संदिग्ध हो, तब कहा ही क्या जा सकता है?"

"क्या बुरा कर्म किया है उसने?"

"एक दास प्रवृत्ति के व्यक्ति के कर्म, स्वार्थ, भय, तथा मूर्खता के आधार पर स्थिर होते हैं। ये सब महाप्रभु के कर्मों में ठीक बैठते हैं। इसी कारण उसको शूद्र की पदवी देता हूँ।"

"इस वाद-विवाद को सुन [illegible] जिसकी दुकान पर वे ग्राहक खड़े थे, खिलखिलाकर हँस पड़ा। इस पर दोनों ग्राहक उसका मुख देखने लगे। उस सेठी ने कहा, "[illegible] तो एक बात पूछूं? क्या आपके विवाह हो चुके हैं?"

दोनों ने बताया कि हाँ, हो गए हैं। इस पर सेठी ने पूछ लिया, "सन्तान भी होगी?"

इसका उत्तर भी 'हाँ' में मिला।

"कुछ काम-धंधा करके आप भी [illegible]?"

"हाँ, भगवान की कृपा है।"

"अच्छा, तो यह बताओ कि [illegible] आते और वही कुछ करते, जो उन्होंने कौशाम्बी में किया [illegible] आनन्द में रहते न?"

इस पर महाप्रभु की निन्दा करने वाले ने कह दिया, "आनन्द में तो अब हैं।"

दूसरे ने कहा, "परन्तु इस बात का [illegible]

को है ?"

"तो और किसको है ?" दूसरे ने कह दिया।

सेट्ठा ने पुनः वार्तालाप में भाग लेते हुए कहा, "देखो भाई ! राज्य-कार्य बड़ा विकट है। इसमें सहस्रों व्यक्ति मिल कर कार्य करते हैं। सब अपने-अपने भाग का कार्य सुचारु रूप से करते हैं तो राज्य में सुख-सम्पदा का विस्तार होता है। यदि कोई एक भी अपने कार्य में आलस्य, प्रमाद आदि करे तो काम बिगड़ जाता है।

"पुष्यमित्र ने राज्य के हित में कार्य करने वालों को एक सूत्र में बाँध दिया है।"

इस प्रकार की चर्चा स्थान-स्थान पर चलती थी और प्रजा के बीच में से ही निन्दा करने वालों का खंडन करने का प्रयत्न भी होता रहता था। पुष्यमित्र पर लांछन यह भी था कि उसने राज्य की उच्च पदवियाँ अपने घर वालों में ही वितरित कर दी हैं, वह अभी अल्पायु है, उसका सम्बन्ध अरुन्धति से है। अरुन्धति एक ब्राह्मण कन्या नहीं है—इत्यादि।

इस प्रकार की सूचनाएँ गुप्तचरों द्वारा मंत्रि-मंडल के पास पहुँचती थीं और गुप्तचरों का यह भी कहना था कि इनका स्रोत पद्मा-विहार है तथा वे सेवक हैं, जो पहले बृहद्रथ के काल में राज्य-भवन में सेवा-कार्य करते थे और अब वहाँ पर नहीं रहे थे।

विवाहोत्सव समीप आने पर अरुन्धति ने गुप्तचर-विभाग शंखपाद के अधीन कर दिया। अभी तक शंखपाद महाप्रभु के पास उपासक बन कर ही रहता था, परन्तु उसका इस प्रकार उनको छोड़कर गुप्तचर-विभाग में आना, सबको विस्मय में डालने वाला सिद्ध हुआ। केवल अरुन्धति और पुष्यमित्र ही जानते थे कि उनकी योजना की सफलता में उसका कितना हाथ है।

महाप्रभु तो शंखपाद की नियुक्ति पर अति क्रोधित हुआ। वह समझ गया कि उसी के कारण उसकी सभी योजनाएँ असफल हुई हैं।

शंखपाद पद्मा-विहार तथा अन्य षड्यंत्र के स्थलों एवं व्यक्तियों से

भली-भाँति परिचित था। इस कारण उसको सब पर दृष्टि रखने में कठिनाई नहीं हुई।

यह सूचना आई थी कि विवाह और राज्याभिषेक के बीच काल में किसी दिन पुष्यमित्र की हत्या का षड्यंत्र बनाया जा रहा है। यह बृहद्रथ की हत्या के प्रतिकार में था। शतधन्वन् का, एक दासी से, एक पुत्र महेन्द्र था। उसको कहीं से ढूंढ कर लाया गया और पुष्यमित्र के स्थान पर उसको राज्य पर बैठाने का विचार होने लगा।

यद्यपि इस षड्यंत्र को चलाने वाले बौद्ध भिक्षु थे, परन्तु इसके समर्थन के लिये बृहद्रथ के सम्बन्धियों को एकत्रित करने का यत्न किया गया। बृहद्रथ की द्वितीय रानी सौम्या इसमें सम्मिलित हुई तो महेन्द्र का विचार छोड़ना पड़ा और सौम्या को मगध की महारानी घोषित करना स्वीकार हो गया।

जब शंखपाद महाप्रभु के साथ था, तब ही षड्यंत्र का चिन्तन हो रहा था। शंखपाद इसको अभी दूर से ही देख रहा था कि उसको राज्य के गुप्तचर-विभाग में कार्य करने के लिये आना पड़ा। इस पर भी उसको इस षड्यंत्र की सम्भावना थी। इस कारण उसने गुप्तचर-विभाग में आते ही कुछ चुने हुए गुप्तचर उन व्यक्तियों के साथ लगा दिये, जिनकी इस षड्यंत्र में भाग लेने की सम्भावना थी।

बृहद्रथ की द्वितीय रानी सौम्या इस षड्यंत्र की धुरी बनी हुई थी। बृहद्रथ की मृत्यु के पश्चात् वह भिक्षुणी बन चुकी थी और पूर्ण रूप से बौद्ध महाप्रभु बादरायण के प्रभाव में थी। उसने, महाप्रभु की सम्मति से कुछ सैनिक इस षड्यंत्र में सम्मिलित करने के लिये, अपने पिता वीरभद्र को भी इस षड्यंत्र में सम्मिलित करने का विचार कर लिया।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक दिन वह अपने घर जा पहुँची और वीरभद्र के सम्मुख पुष्यमित्र की निन्दा करने लगी। उसने अ पिता से कहा, "पिताजी! मेरे हृदय को तब ही शान्ति मिलेगी, ज पुष्यमित्र का सिर वैसे ही मेरे चरणों में आकर गिरेगा, जैसे महा.

का उसके पाँव में गिरा था।"

वृहद्रथ की हत्या के समय वीरभद्र भी वहाँ उपस्थित था। उसने सेना में, अपनी पंक्ति में खड़े-खड़े वह पूर्ण दृश्य देखा था। इस कारण उसने कहा, "बेटी सौम्या! तुम्हारे दुःख को मैं अनुभव करता हूँ, परन्तु तुमने कभी उन स्त्रियों के दुःख का अनुमान लगाया है, जिनके पतियों को यवनों ने कौशाम्बी में अथवा अन्य स्थानों पर मृत्यु के घाट उतारा था?"

"परन्तु पिताजी! उनका महाराज के साथ क्या सम्बन्ध था?"

"तुम्हारा पति महाराज उन यवनों को दंड देने के लिये सेना भेजने में बाधा बना हुआ था। वह उन यवन आततायियों को दंड से बचाने में सदा यत्न-शील रहा है।"

"दंड तो प्रकृति देती है, मनुष्य इसमें क्यों अपना हाथ गंदा करे?"

"यही तो मैं कह रहा हूँ। तुम्हारा पति प्रकृति के मार्ग में बाधा बन रहा था। प्रकृति ने उसको मार्ग से एक ओर हटा दिया। अब तुम प्रकृति के मार्ग में बाधा बनने की इच्छा कर रही हो। स्मरण रखो, तुम्हारा भी वही परिणाम हो सकता है, जो उस भीरु वृहद्रथ का हुआ था।"

"नहीं पिताजी! आपके समझने में भूल है। देखिये, मैं आपके पास आई हूँ कि आप मेरे पति की हत्या का प्रतिकार लेंगे। यदि आप यह मेरा काम नहीं करेंगे तो फिर मेरे जीने का प्रयोजन ही क्या है? मैं इससे तो भूखी रह कर मर जाना पसन्द करूँगी।"

वीरभद्र इसको धमकी मात्र ही समझता था, परन्तु अगले ही दिन से सौम्या ने वीरभद्र के घर पर, भूखे रह कर प्राण त्याग करने का निश्चय कर लिया।

: ६ :

ज्यों-ज्यों विवाहोत्सव समीप आता गया, षड्यंत्र में गंभीरता आती गई और अनेक दिशाओं से इसकी सूचना आने लगी। इन सूचनाओं को शंखपाद एकत्रित कर, इनसे षड्यंत्र की रूपरेखा का अनुमान लगाता और तत्पश्चात् इसका परिचय मंत्रिमंडल को देता।

शंखपाद को यह सूचना मिल चुकी थी कि जब सौम्या भूख से मरणासन्न हो गई तो वीरभद्र अपनी लड़की के प्रति स्नेह के वशीभूत हो मान गया था। इस कारण वीरभद्र के ऊपर विशेष देख-रेख रखी जाने लगी।

अन्तिम समाचार इस विषय में यह आया कि हत्या का समय विवाहोत्सव के पश्चात् राज्याभिषेक के अवसर पर, ठीक उस समय निश्चित हुआ है, जब पुष्यमित्र तिलक के पश्चात् सिंहासनारूढ होने लगें। इस सूचना के मिलने पर भी वीरभद्र को बंदी बनाना उचित नहीं समझा गया। शंखपाद का कहना था कि पहले ही बंदी बना लेने पर प्रजा में असन्तोष फैलेगा, जिसका लाभ उठाकर षड्यन्त्रकारी प्रजा को भड़का सकेंगे। हत्यारे को अपराध करते समय पकड़ने का निश्चय किया गया। साथ ही वीरभद्र के साथियों का भी पता किया जा रहा था।

विवाह-संस्कार सायंकाल राज्य-भवन के प्रांगण में होना था। आँगन को पताका, तोरण, पुष्प-पत्र आदि से सुसज्जित किया गया था। पूर्ण प्रांगण पर एक सप्त रंग का कौशेय वितान लगाया गया था और उसके नीचे विवाह-वेदी रखी गई थी।

अरुन्धति अपने आगार में इस संस्कार के लिये तैयार हो रही थी। उसकी कुछ सखियाँ, जो आश्रम में उसकी सहपाठिनी थीं, उसका शृङ्गार कर रही थीं। इसी समय एक प्रतिहारिन ने आकर सूचना दी कि एक स्त्री राज्य-भवन-द्वार पर आई है और देवी से इसी समय भेंट करने की आज्ञा माँग रही है। उसने अपना नाम-धाम नहीं बताया।

अरुन्धति ने कुछ क्षण तक विचार किया और उसके पश्चात् कहा, "उसको सुरक्षा से ऊपर ले आओ।"

प्रतिहारिन गई और दो सुभटों के साथ वह स्त्री लाकर अरुन्धति के सम्मुख उपस्थित कर दी गई। इस समय तक अरुन्धति का शृङ्गार पूर्ण हो चुका था और वह वेदी पर जाकर बैठने के लिये तैयार हो चुकी थी।

उस स्त्री को सामने खड़े देख अरुन्धति ने पूछा, "हाँ, बात है?"

"एकान्त में निवेदन करना चाहती हूँ।" स्त्री की आवाज़ भर्राई हुई थी। अरुन्धति को ऐसा समझ आया कि वह रो पड़ेगी। स्त्री प्रौढ़ावस्था में थी, परन्तु बहुत ही दुर्बल प्रतीत हो रही थी। उसका मुख पीत वर्ण हो रहा था और होंठ काँप रहे थे।

अरुन्धति ने देखा कि वह किसी प्रकार की भी हानि करने के अयोग्य है। अतः उसको लेकर वह भीतर के आगार में चली गई। भीतर पहुँच उस स्त्री ने आगार का द्वार बंद कर लिया और भूमि पर बैठ विह्वल हो रोने लगी।

अरुन्धति ने उसको चुप कराते हुए कहा, "देवी! क्या बात है? निःशंक हो कर स्पष्ट कहो। तुम देखती हो, यह मेरे जीवन की अत्यन्त मधुर घड़ी है। बताओ क्या चाहती हो?"

उस स्त्री ने अभी भी रोते हुए कहा, "मैं अपने सुहाग का दान माँगती हूँ।"

अरुन्धति ने समझा कि कदाचित् इसका पति किसी अपराध में बंदी बना लिया गया है और उसके लिये यह क्षमा माँगना चाहती है। अतएव वह विचार में पड़ गई कि धर्म-व्यवस्था के अनुसार इसको कैसे वचन दे। कुछ विचार कर उसने कहा, "देवी! न्याय तो अपना मार्ग बनायेगा। हाँ, जब महाराज से दया की प्रार्थना की जायगी, तो तुम्हारी माँग पूरी कर दी जायगी। महाराज दया कर सकते हैं और यह तुम पर कर दी जायगी।"

इस पर उस स्त्री ने अरुन्धति के चरण-स्पर्श करके कहा, "मैं बृहद्रथ महाराज की दूसरी पत्नी सौम्या की माँ और सेनानायक वीरभद्र की पत्नी हूँ।

"मेरे पति ने सौम्या के कहने पर महाराज की हत्या करने का निश्चय किया है। हत्या करने के लिये वे एक झूठे प्रवेश-पत्र को लेकर आ रहे हैं और महाराज की हत्या के लिये कटिबद्ध हैं।

"जैसे मैं स्वयं विधवा होना नहीं चाहती, वैसे ही मैं किसी भी नारी का सुहाग लुटते नहीं देख सकती। इसी कारण मैं सूचना देने चली आई

जी ! यह क्या पहिरावा पहिना हुआ है आपने ?"

वीरभद्र ने कहा, "मैं लक्ष्मीचन्द्र हूँ। आप क्या कह रहे हैं ?"

"ओह ! भूल हो गई। क्षमा कीजिये, आपका प्रवेश-पत्र कहाँ है ?"

वीरभद्र ने लक्ष्मीचन्द्र के नाम का प्रवेश-पत्र शंखपाद को दिखा दिया। शंखपाद ने प्रवेश-पत्र देख, एक अश्वारोही को सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र के घर, उनके घर से किसी को बुला लाने के लिये भेज दिया, जो सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र की पहिचान कर भ्रम-निवारण कर सके।

कुछ देर तक वीरभद्र वहाँ बैठा रहा। उसके पश्चात् कहने लगा, "वहाँ विवाह-संस्कार आरम्भ हो गया है और मैं उसमें सम्मिलित होने के लिये आया हूँ।"

"विवाह अभी आधा प्रहर चलेगा और हम आपको आधी घड़ी में वहाँ ले जायँगे।"

"परन्तु बात क्या है ? कुछ पता भी तो चले ?"

"बात यह है कि आप भूतपूर्व महाराज वृहद्रथ के स्वसुर वीरभद्र हैं, परन्तु आप कह रहे हैं कि आप सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र हैं। आपने सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र को कहाँ रोक रखा है, यह जानना आवश्यक है। हमको उनके जीवन का भय लग गया है।"

"तो मैं हत्यारा हूँ ?"

"यह मैं अभी नहीं बता सकता।"

कुछ काल पश्चात् वह अश्वारोही एक युवक को अपने साथ लाया और कहने लगा, "सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र का यह सुपुत्र है।"

उस युवक ने वीरभद्र को देख विस्मय में पूछा, "क्या बात है पिता जी ! आप यहाँ कैसे बैठे हैं ?"

"देखो बेटा ! ये कहते हैं कि मैं तुम्हारा पिता नहीं हूँ और वीरभद्र हूँ।"

इस बातचीत को सुन शंखपाद विस्मय में उन दोनों का मुख देखता रह गया। इस समय युवक ने कहा, "ये मेरे पिता हैं और इनका ही नाम लक्ष्मीचन्द्र है।"

दंडपाद ने समझा कि वीरभद्र को पहिचानने में भूल हो गई है। इस कारण उसने पिता-पुत्र दोनों से क्षमा माँगी और सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र को विवाह उत्सव में जाने की स्वीकृति दे दी।

अब पुनः वीरभद्र की खोज होने लगी।

विवाह-संस्कार समाप्त हुआ तो सब उपस्थित अभ्यागत पुष्यमित्र और उसकी पत्नी को भेंट देने लगे। सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र भी भेंट में देने के लिये एक चाँदी की सदूकची लाया था। अपने स्थान से उठकर वह उपस्थित अभ्यागतों को सम्बोधित [illegible] लगा, "मगध के भद्र नागरिको! मैं महर्षि पतंजलि का [illegible] इस यज्ञ में सम्मिलित हो, वर-वधू को आशीर्वाद देना चाहते [illegible] किसी-कार्य विशेष से वे स्वयं नहीं आ सके और उन्होंने [illegible] अपना प्रतिनिधि बनाकर यहाँ भेजा है। मैं महर्षि की ओर से [illegible] मगध-शासक पंडित पुष्यमित्र शुंग तथा उसकी धर्मपत्नी [illegible] को यह भेंट देता हूँ।"

इतना कह उसने एक चाँदी [illegible] दोनों हाथों से पकड़ कर पुष्यमित्र को पकड़ाने के लिये [illegible] पुष्यमित्र ने आदर-भाव से कुछ झुक कर दोनों हाथों में [illegible] ली। इस समय सदूकची छोड़कर सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र ने [illegible] एक तीक्ष्ण कटार निकाली और पुष्यमित्र [illegible] दिया। परन्तु उसका हाथ अभी पसलियों से दूर ही था [illegible] पकड़ लिया।

जिस समय लक्ष्मीचन्द्र ने [illegible] किया था, अरुन्धति बड़े ध्यान से उसको देख रही थी [illegible] ने अपने-आपको महर्षि पतंजलि का शिष्य कहा था, [illegible] उसी समय उस पर संदेह हो गया था। उसने महर्षि जी के [illegible] का कोई शिष्य नहीं देखा था और न ही महर्षि जी [illegible] का नाम सुना था। वह विचार करती थी कि [illegible] उसके काल पहिले का कोई शिष्य हो। इस पर [illegible] सन्देह बना हुआ था।

जब लक्ष्मीचन्द्र ने सदूकची पुष्यमित्र के हाथ में पकड़ाकर सदूक

के नीचे कटार निकालने के लिये हाथ डाला, तो उसी समय अरुन्धति समझ गई कि क्या करने जा रहा है। जब लक्ष्मीचन्द्र ने वार करने के लिये हाथ उठाया तो वह आगे होकर उसका हाथ रोकने के लिये तैयार थी।

लक्ष्मीचन्द्र, जो वास्तव में वीरभद्र ही था, हृष्टपुष्ट था और अरुन्धति एक लड़की थी। इस कारण उसका वार तो हुआ, परन्तु अरुन्धति के हाथ पकड़ने के कारण निशाना चूक गया। कटार पुष्यमित्र को लगने के स्थान चौकी की पीठ पर लगी और उसके पतरे को चीरती हुई उसमें धँस गई। वीरभद्र कटार को खींचकर पुनः वार करना चाहता था। परन्तु इस समय सुरक्षा दल के लोगों ने आगे बढ़कर उसको पकड़ लिया।

: १० :

जब सौम्या की अवस्था अनशन से चिन्ताजनक हो गई तो वीरभद्र का मन डोल गया। उसकी पत्नी पद्मा यह तो जानती थी कि उसकी लड़की अपने पिता को किसी कार्य में सम्मिलित करने के लिये अनशन कर रही है, परन्तु उसको यह विदित नहीं था कि यह षड्यंत्र है और किसी के विरुद्ध है।

वीरभद्र ने पुनः सौम्या को समझाने का यत्न किया। उसने कहा, "देखो सौम्या ! वृहद्रथ महाराज की हत्या पुष्यमित्र ने नहीं की। वह तो अन्त तक महाराज से कहता रहा है कि वे नवीन सेना को भेंट स्वरूप स्वीकार कर लें और यवनों से युद्ध की घोषणा कर दें। वृहद्रथ ने न केवल भेंट स्वीकार की, प्रत्युत उसको बंदी बनाने की भी आज्ञा दे दी। इसी के परिणामस्वरूप एक सेना-नायक ने उसकी हत्या की थी। इसमें पुष्यमित्र का अपराध कैसे हो गया ?"

"नहीं पिताजी ! वह उन सबका नेता था। नवीन सेना का वह सेनापति था और उसी का यह षड्यंत्र था। उसको क्या अधिकार था कि महाराज को विवश करे। युद्ध करना अथवा न करना तो अपनी आत्मा और विश्वासों की बात है। कोई किसी को अपने विश्वासों के विरुद्ध कार्य करने पर विवश क्यों करे ?"

"यह कोई और किसी का प्रश्न नहीं है सौम्या ! यह एक राज्याधिकारी की बात थी। देश में रहने वाले नागरिकों के जीवन तथा उनकी धन-सम्पदा की रक्षा का प्रश्न था। यदि महाराज बृहद्रथ यह समझते थे कि उनकी आत्मा युद्ध करने से सहमत नहीं, तो उनको राज्य-गद्दी छोड़ देनी चाहिये थी। वह राजा बने रहे। प्रजा से कर प्राप्त कर अपने परिवार का पालन-पोषण करते रहे और अपने कर्तव्य-पालन से पीछे हटते रहे। पुष्यमित्र प्रजा का प्रतिनिधि था। उसने तो बृहद्रथ को राजगद्दी से उतार कर बंदी बनाने की आज्ञा दी थी, क्योंकि बृहद्रथ न तो कर्तव्य-पालन कर रहा था और न ही राजगद्दी छोड़ना चाहता था। यह सर्वथा अनुचित था। हत्या तो उसके भागने के प्रयत्न के पश्चात् हुई थी।"

"नहीं, पुष्यमित्र का कोई अधिकार नहीं था।"

यह कोई युक्ति नहीं थी, हठ था। जब वीरभद्र ने देखा कि सौम्या उसके सम्मुख मरणासन्न पड़ी है और जब तक वह इस षड्यन्त्र में सम्मिलित नहीं होता, वह हठ नहीं छोड़ेगी तो उसका स्नेह उमड़ आया। उसने षड्यंत्र में सम्मिलित होने का वचन दे दिया।

षड्यंत्र वृद्धि पाने लगा और इसमें कई सैनिक सम्मिलित हो गये। कुछ सेट्ठियों ने भी इसमें सहयोग देने का वचन दे दिया। वीरभद्र के कन्धों पर पुष्यमित्र की हत्या का भार डाला गया। महाप्रभु का कहना था कि वह पुष्यमित्र की हत्या के पश्चात् अपने आपको मगध का शासक घोषित कर दे।

परन्तु वीरभद्र जानता था कि यह सभव नहीं। हत्या के पश्चात् वह बंदी बना लिया जायगा और कदाचित उसी समय महाराज के सुरक्षा दल के लोग उसकी हत्या कर देंगे। राज्य हथियाना तो कदापि संभव नहीं था। लक्ष-लक्षसेना सेनापति विद्रुम के अधीन है और फिर महामात्य भद्रदत्त तथा मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य, कोई भी तो उसके पक्ष में नहीं। वह षड्यन्त्र में महाराज बनने के लिए सम्मिलित नहीं हो रहा था, प्रत्युत् केवल सौम्या के प्रति स्नेह के कारण वह अपना जीवन

निछावर करने को तैयार हो गया था।

हत्या का दिन ज्यों-ज्यों समीप आता गया, वीरभद्र के मन की चंचलता बढ़ती गई। इस कारण वीरभद्र ने यह निश्चय किया कि जो भी प्रथम अवसर उसको मिलेगा, वह हत्या कर देगा। उसका कहना था कि विलम्ब करने के साथ-साथ षड्यंत्र के प्रकट होने की संभावना बढ़ती जायगी।

वीरभद्र की पत्नी पद्मा अपने पति की चंचलता को अनुभव कर रही थी। उसको षड्यंत्र के विषय में पूरा ज्ञान नहीं था। वह यह देखती रहती थी कि पिता तथा पुत्री गुप्त वार्त्ता करते रहते हैं। अन्तिम रात्रि, हत्या से पूर्व उसने अपने पति को बहुत ही बेचैनी से रात व्यतीत करते देखा। उस रात वीरभद्र सो नहीं सका और सारी रात करवटें बदलता रहा इससे पद्मा को संदेह हो गया कि कदाचित कोई भयंकर घटना घटने वाली है। उसने निश्चय कर लिया कि वह अपने पति की गति-विधि के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करके रहेगी।

अगले दिन सौम्या विहार से आई और अपने पिता के आगार में उससे मिलने चली गई। वीरभद्र बाहर गया हुआ था। मध्याह्न के समय वह आया तो आगार को बंद कर सौम्या से वार्तालाप करने लगा। पद्मा द्वार के साथ कान लगाकर खड़ी हो गई।

सौम्या कह रही थी, "हमारे सब साथी यह मान गये हैं कि हत्या आज ही की जाय। विवाह के पश्चात् आप पुष्यमित्र को भेंट देने जायेंगे। उसी समय यह कार्य आपको करना है। वहाँ उपस्थित अभ्यागतों में कई हमारे साथी होंगे और हत्या के तुरन्त पश्चात् वे आपको सुरक्षा से उपासक महावीर के गृह पर ले जायेंगे और वहाँ इस बात की घोषणा कर दी जायगी कि आप मगध के शासक हैं। सारे राज्य में बौद्ध उपासक आपको राजा मान विप्लव कर देंगे।"

इस पर वीरभद्र ने कहा, "देखो सौम्या! हत्या के पश्चात् क्या होगा और कौन शासक बनेगा, यह देखना मेरा काम नहीं। मैं तो एक बात जानता हूँ कि तुम्हारा बृहद्रथ से विवाह मेरी बड़ी भारी भूल थी।

अब मैं तुम्हारे पति के हत्यारे की हत्या कर उस भूल का प्रायश्चित करूँगा। शीघ्रातिशीघ्र इस कार्य को सम्पन्न कर मैं अपने मन की शान्ति चाहता हूँ।"

"ठीक है पिता जी! आपको राजा बनाना हमारा काम है और वह हम करेंगे। विवाह के अवसर पर राज्य-भवन के भीतर जाने का प्रवेश-पत्र मैं ले आई हूँ। सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र बौद्ध उपासक तो है, परन्तु पुष्यमित्र के प्रशंसकों में से है। इसी कारण यह प्रवेश-पत्र उसी के नाम का है, जिससे संदेह न हो। उसको महाप्रभु ने कार्यवश विहार में बुलवा कर वहाँ बंदी बना लिया है और उसका प्रवेश-पत्र उससे छीनकर मुझे दे दिया है। आपने सेट्ठियों के से वस्त्र पहिन' सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र बनकर वहाँ जाना है।

"सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र के घर पर हमारा एक युवक कार्यकर्ता रहेगा, जिससे यदि कोई पूछताछ हुई तो वह उचित उत्तर दे सकेगा।"

वीरभद्र ने प्रवेश-पत्र ले लिया और विवाह पर जाने की तैयारी करने लगा।

पद्मा ने सारी बात सुन ली थी। इससे उसका हृदय बैठने लगा। एक तो वह भी नवीन राज्य के पक्ष में थी और नहीं चाहती थी कि पुष्यमित्र की हत्या हो। दूसरा उसको विश्वास हो गया था कि हत्या के पश्चात् वीरभद्र को सूली पर चढ़ा दिया जायगा और वह विधवा हो जायगी। इससे उसका मन डाँव डोल उठा और इस सम्पूर्ण घटना में उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया।

जब वीरभद्र सेट्ठियों के से वस्त्र पहन विवाहोत्सव पर गया तो यह अवसर था, देवी अरुन्धति से भेंट करने के लिए चल पड़ी।

: ११ :

वीरभद्र को बंदी बनाकर पुनः भवन के कार्यालय में लाया गया दूसरी ओर विवाह का शेष कार्यक्रम चलता रहा। विवाह के पश्चात् सब अभ्यागतों के लिये एक बृहत् भोज का प्रबन्ध था। भोज तीन घड़ी तक चला और उसके पश्चात् धीरे-धीरे सब अभ्यागत विदा हो गये।

इस समय अरुन्धति को अपराधी का स्मरण हो आया। वह अभी तक राज्य-भवन के कार्यालय में बंदी बना कर बैठाया हुआ था। अरुन्धति तथा पुष्यमित्र दोनों वहाँ पहुँचे। शंखपाद उनको देख अपनी असफलता पर लज्जा अनुभव कर रहा था। उसने उनको वीरभद्र के पकड़े जाने तथा लक्ष्मीचन्द्र के घर से एक युवक के आकर साक्षी देने की कि यह उसका पिता लक्ष्मीचन्द्र ही है, सारी बात बता दी। इसी कारण, उसने कहा, कि वीरभद्र को पुनः वेदी के समीप बैठने की स्वीकृति दे दी गई थी।

अरुन्धति ने अब अपराधी से पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"लक्ष्मीचन्द्र।"

इस पर अरुन्धति को पद्मा का ध्यान हो आया। उसने एक प्रतिहारिन को भेज उसको बुला भेजा। पद्मा आई और अपने पति को बँधे हुए देख कर समझ गई कि वह बंदी बना लिया गया है। अरुन्धति ने उससे पूछा, "देवी ! पहचानती हो इसको ?"

"हाँ यह मेरे पति हैं।" पद्मावती ने आँखें नीची किये हुए कहा।

"वीरभद्र ?"

"जी हाँ।"

"अच्छी बात है तुम जा सकती हो।"

"और ये ?" पद्मा ने पूछ लिया।

"इनके साथ न्याय होगा। उसके पश्चात् तुम दया के लिए महाराज से प्रार्थना करना। तब मैं वचन पालन करने का यत्न करूँगी। परन्तु इस व्यक्ति ने एक अन्य अपराध किया है। एक सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र का प्रवेश-पत्र इसके पास है और उस सेट्ठी को इसने कहीं छुपा रखा है। यदि उसके साथ भी कुछ किया गया है तो बात कठिन हो जायगी।"

इसके पश्चात् अरुन्धति ने शंखपाद से कहा, "इसको कारावास भेज दो और कल इसको न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित कर दो। इस समय तक लक्ष्मीचन्द्र का पता करो।"

पंचम् परिच्छेद

राज्याभिषेक का निमन्त्रण जहाँ मगध-राज्य के अन्दर विशेष अधिकारियों तथा प्रजा के प्रतिनिधियों को भेजा गया, वहाँ मगध से बाहर के राज्यों को भी भेजा गया।

जिस गति से यवनों को देश से निकाला गया था और जिस पूर्णता से यवनों को भारतीय समाज में विलीन किया गया था, वह भारत के अन्य नरेशों के लिये चमत्कार ही था। जहाँ यवन सेना को देश से ढकेल कर निकालने का श्रेय पुष्यमित्र की नवीन सेना को मिल रहा था, वहाँ विदेशियों को समाज में मिला लेने का श्रेय महर्षि पतंजलि के आश्रम-निवासियों के प्रचार को प्राप्त था।

यों तो बौद्ध-सम्प्रदाय के भिक्षु भी विदेशी और भारतीय समाज में एकीकरण का यत्न कर रहे थे, परन्तु उनके प्रयत्न का फल एक अन्तर्राष्ट्रीय समाज की स्थापना होती थी, जो भावों और विचारों में अभारतीय था। परन्तु इसका प्रभाव भारत से बाहर नहीं हो पा रहा था, अर्थात् भारत में रहने वाले तो अपने को अन्तर्राष्ट्रीय अर्थात् अभारतीय मानने लगे थे, लेकिन भारत से बाहर वाले उनको ऐसा नहीं मानते थे।

महर्षि पतंजलि के शिष्य वैदिक विचारधारा के अनुसार भारतीय समाज में विदेशियों को सम्मिलित करते जाते थे। इसका एक चमत्कारिक प्रभाव यह हुआ कि जहाँ बौद्ध प्रयास का फल भारतीयता को दुर्बल कर रहा था, वहाँ वैदिक प्रचार भारतीयता को पुष्ट कर रहा था।

दो वर्षों में ही, मौर्य राज्यकाल में भारत में आकर बसे विदेशी विदेशी न रहकर भारतीय समाज में ऐसे घुल-मिल गये थे कि

"एक चक्रवर्ती राजा के गुणों में उसकी न्याय-बुद्धि, पक्षपात रहित स्वभाव, दीर्घ दृष्टि और राष्ट्र की संस्कृति तथा धर्म पर दृढ़ निष्ठा, मुख्य है। साथ ही उस राजा में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह देश पर आई विपदा का निरोध कर सके।"

महर्षि की साम्राज्य और चक्रवर्ती राज्य में अन्तर पर विवेचना इतनी स्पष्ट थी कि किसी को आपत्ति नहीं हो सकी।

इस सभा में कुछ नरेशों ने पुनः मगध-साम्राज्य की स्थापना का प्रस्ताव रखा, परन्तु अधिकांश नरेश चक्रवर्ती राज्य की प्रथा के पक्ष में ही रहे।

महर्षि का प्रस्ताव बहुमत से स्वीकार हुआ और यह निश्चय हुआ कि मगध-राज्य को चक्रवर्ती राज्य की उपाधि देने के लिये पुष्यमित्र अश्वमेध यज्ञ करे, जिससे यह विदित हो जाय कि सब राजा इस उत्तर-दायित्व को पुष्यमित्र के कंधों पर डालने के लिये तैयार हैं अथवा नहीं।

राज्याभिषेक का उत्सव पुष्यमित्र की ओर से उपहार तथा पुरस्कार दे-दे कर, सबको विदा करने पर समाप्त हुआ।

: २ :

राज्याभिषेक उत्सव के समाप्त होते ही सब बंदियों को पाटलिपुत्र में लाकर न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया गया।

राज्य के सूचना विभाग ने उनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित किया। [illegible] यह [illegible] कि इन बन्दियों ने षड्यंत्र कर अकारण महाराज

इस प्रकार हमें उनको मरने से बचाना चाहिए।

"इस पर भी मेरे पति ने नहीं बताया कि लड़की क्या चाहती है। मेरे आग्रह पर और लड़की की शोचनीय दशा से प्रभावित हो, मेरे पति ने लड़की से कुछ बात की और उसने अन्न ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

"इसके पश्चात् लड़की और अन्य बहुत से लोग मेरे पति से मिलने के लिये आते रहे।

"महाराज के विवाहोत्सव के पूर्व मेरे पति अत्यन्त चंचल दिखाई देने लगे। वे रात-भर सोते नहीं थे और दिन-भर कहीं बाहर घूमते रहते थे। उनकी इस अवस्था पर मुझको बहुत चिन्ता लग गई। मुझको कुछ सन्देह हुआ कि लड़की उनसे वह कुछ करने को कह रही थी, जिसको करने के लिए उनकी आत्मा नहीं मानती थी।

"विवाह के दिन मैंने बाप-बेटी में हो रहे वार्तालाप को छिपकर सुना तो मेरे रोंगटे खड़े हो गये। उस दिन मेरे पतिदेव पुष्यमित्र की हत्या के लिये जाने वाले थे। मैं बहुत देर तक तो अपना कर्त्तव्य समझ नहीं सकी। मैं अपने पति के विरुद्ध कुछ भी करने के लिये अपने मन को तैयार नहीं कर सकी। विवाह-संस्कार के कुछ ही क्षण पूर्व मेरी समझ में आया कि किसी प्रकार इस हत्याकाण्ड को रोकने का यत्न करना चाहिए। उस समय मेरे पति घर से जा चुके थे। अतः उनको रोकने में स्वयं को असमर्थ पा, मैं महारानी जी की सेवा में पहुँची और उनको पूर्ण स्थिति से अवगत कराया।"

इस वक्तव्य के पश्चात् सूचना-विभाग के अधिकारी ने पूछा, "क्या तुम पहचान सकती हो कि उस समय तुम्हारे पति से कौन-कौन व्यक्ति मिलने के लिये आते थे?"

"कुछ को तो मैंने कई बार देखा था, अतः उनको मैं पहचान सकती हूँ।"

उसके सम्मुख कई सौ बन्दी लाये गये, जिनमें से उसने लगभग व्यक्तियों को पहचान लिया। उनमें सौम्या, महाप्रभु बादरायण

"एक चक्रवर्ती राजा के गुणों में उसकी न्याय-बुद्धि, पक्षपात रहित स्वभाव, दीर्घ दृष्टि और राष्ट्र की संस्कृति तथा धर्म पर दृढ़ निष्ठा, मुख्य हैं। साथ ही उस राजा में इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह देश पर आई विपदा का विरोध कर सके।"

महर्षि की साम्राज्य और चक्रवर्ती राज्य में अन्तर पर विवेचना इतनी स्पष्ट थी कि किसी को आपत्ति नहीं हो सकी।

इस सभा में कुछ नरेशों ने पुन: मगध-साम्राज्य की स्थापना का प्रस्ताव रखा, परन्तु अधिकांश नरेश चक्रवर्ती राज्य की प्रथा के पक्ष में ही रहे।

महर्षि का प्रस्ताव बहुमत से स्वीकार हुआ और यह निश्चय हुआ कि मगध-राज्य को चक्रवर्ती राज्य की उपाधि देने के लिये पुष्यमित्र अश्वमेध यज्ञ करे, जिससे यह विदित हो जाय कि सब राज्य इस उत्तर-दायित्व को पुष्यमित्र के कंधों पर डालने के लिये तैयार हैं अथवा नहीं।

राज्याभिषेक का उत्सव पुष्यमित्र की ओर से उपहार तथा पुरस्कार दे-दे कर, सबको विदा करने पर समाप्त हुआ।

: २ :

राज्याभिषेक उत्सव के समाप्त होते ही सब बंदियों को पाटलिपुत्र में लाकर न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया गया।

राज्य के सूचना विभाग ने उनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित किया। अभियोग यह था कि इन बन्दियों ने षड्यंत्र कर अकारण महाराज पुष्यमित्र की हत्या तथा राज्य को पलटने का यत्न किया।

इस अभियोग के प्रमाण में वीरभद्र की पत्नी पद्मा ने साक्षी दी। उसने बताया, "एक बार मेरी लड़की, अपने पिता से, किसी विषय पर मतभेद हो जाने के कारण, हमारे घर पर अनशन कर लेट गई। उस समय मैं इस अनशन का कारण स्पष्ट रूप से नहीं जानती थी। आठ-दस दिन के पश्चात् लड़की की अवस्था चिन्ताजनक हो गई। मेरे और मेरे पति के मन में उसकी अकाल मृत्यु का भय समा गया। मैंने अपने पति से कहा कि लड़की को समझा कर उसका अनशन तुड़वाना चाहिए और

इस प्रकार हमें उनको मरने से बचाना चाहिए।

"इस पर भी मेरे पति ने नहीं बताया कि लड़की क्या चाहती है। मेरे आग्रह पर और लड़की की शोचनीय दशा से प्रभावित हो, मेरे पति ने लड़की से कुछ बात की और उसने अन्न ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

"इसके पश्चात् लड़की और अन्य बहुत से लोग मेरे पति से मिलने के लिये आते रहे।

"महाराज के विवाहोत्सव के पूर्व मेरे पति अत्यन्त चंचल दिखाई देने लगे। वे रात-भर सोते नहीं थे और दिन-भर कहीं बाहर घूमते रहते थे। उनकी इस अवस्था पर मुझको बहुत चिन्ता लग गई। मुझको कुछ सन्देह हुआ कि लड़की उनसे वह कुछ करने को कह रही थी, जिसको करने के लिए उनकी आत्मा नहीं मानती थी।

"विवाह के दिन मैंने बाप-बेटी में हो रहे वार्तालाप को छिपकर सुना तो मेरे रोंगटे खड़े हो गये। उस दिन मेरे पतिदेव पुष्यमित्र की हत्या के लिये जाने वाले थे। मैं बहुत देर तक तो अपना कर्त्तव्य समझ नहीं सकी। मैं अपने पति के विरुद्ध कुछ भी करने के लिये अपने मन को तैयार नहीं कर सकी। विवाह-संस्कार के कुछ ही क्षण पूर्व मेरी समझ में आया कि किसी प्रकार इस हत्याकाण्ड को रोकने का यत्न करना चाहिए। उस समय मेरे पति घर से जा चुके थे। अतः उनको रोकने में स्वयं को असमर्थ पा, मैं महारानी जी की सेवा में पहुँची और उनको पूर्ण स्थिति से अवगत कराया।"

इस वक्तव्य के पश्चात् सूचना-विभाग के अधिकारी ने पूछा, "क्या तुम पहचान सकती हो कि उस समय तुम्हारे पति से कौन-कौन व्यक्ति मिलने के लिये आते थे?"

"कुछ को तो मैंने कई बार देखा था, अतः उनको मैं पहचान सकती हूँ।"

उसके सम्मुख कई सौ बन्दी लाये गये, जिनमें से उसने लगभग बीस व्यक्तियों को पहचान लिया। उनमें सौम्या, महाप्रभु बादरायण तथा कई

उपासक, सैनिक और भिक्षुक थे।

इसी प्रकार कई अन्य व्यक्तियों की साक्षी हुई। कुछ थे, जिन्होंने वीरभद्र का, महाराज पुष्यमित्र को चाँदी की सन्दूकची देते समय, सन्दूकची के नीचे से छिपी कटार निकाल कर, महाराज पर आक्रमण करने की घटना का आँखों देखा विवरण बताया। कई साक्षियों ने पद्मा-विहार में होने वाली षड्यंत्रकारियों की बैठकों का वर्णन सुनाया।

इन सब साक्षियों में मुख्य साक्षी लक्ष्मीचन्द्र की हुई। उनका कहना था, "मैं बौद्ध उपासक हूँ, इस पर भी मैं नये राज्य के प्रशंसकों में से हूँ। मैंने कई बार महाप्रभु बादरायण से कहा था कि उनको राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। अन्य कई बौद्ध उपासक और कुछ बौद्ध-भिक्षु भी इस विषय में मुझसे सहमत थे। इस पर भी महाप्रभु कुछ न कुछ जोड़-तोड़ करते रहते थे।

"एक कारण उनके हस्तक्षेप का यह भी था कि पहले राज्य की ओर से विहारों को बहुत सहायता मिलती थी। यह सहायता महाराज पुष्यमित्र के काल में बन्द हो गई थी। महाप्रभु इसको अपने अधिकारों की हत्या मानते थे। वे समझते थे कि मगध-राज्य से इस प्रकार की सहायता लेना उनका अधिकार है।

"मैंने कई बार समझाया भी था कि जब राज्य की ओर से शिव-मन्दिरों को अथवा जैन-मन्दिरों को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जाती तो फिर बौद्ध-विहारों को ही क्यों मिले? इस पर महाप्रभु कहा करते थे कि मगध-राज्य एक सौ वर्ष से भी अधिक काल से विहारों को धन देता आया है तो यह बौद्ध-विहारों का पैतृक अधिकार हो गया है, जिसको कोई तोड़ नहीं सकता।

"महाप्रभु की इस अनुचित युक्ति को, अनेक उपासक और भिक्षु उचित मानते थे और वे महाराज के राज्य से असन्तुष्ट हो रहे थे।

"मुझको महाराज की हत्या के षड्यंत्र का ज्ञान नहीं था। कदाचित् मेरे विचारों को जानकर ही मेरे साथ इस विषय में कभी बातचीत नहीं

की गई।

"विवाह का निमन्त्रण मुझको मिला था। मैं नगर मे एक प्रसिद्ध व्यापारी हूँ और अपनी आय का दशांश कर के रूप मे राज्य को नियमित रूप से देता हूँ। मेरा वार्षिक कर लगभग पन्द्रह-बीस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा मे होता है। कदाचित् यही कारण है कि मुझको विवाह का निमन्त्रण दिया गया था। विवाह के दिन प्रातःकाल ही मुझको महाप्रभु का, उपासना मे परिवार सहित सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। उपसना में मैं सम्मिलित होने गया तो मुझको विहार के उस कक्ष मे ले जाया गया, जिधर महारानी सौम्या, स्वर्गीय महाराज बृहद्रथ की विधवा पत्नी, रहती थीं। वहाँ महारानी सौम्या ने मुझे तथा मेरी पत्नी एवं बच्चों को अपने साथ भोजनादि में सम्मिलित किया और उसके पश्चात् मुझसे विवाहोत्सव पर न जाने का आग्रह किया। मैं मान गया। एक स्त्री का, इतनी-सी तुच्छ बात के लिये, आग्रह मैं टाल नही सका। इस पर मुझे वही विहार में ही रह जाने की सम्मति दी गई। मैंने इसमें भी कोई हानि नहीं समझी। दिन-भर मैं और मेरी पत्नी भगवान् तथागत के चरणों में बैठकर मन्त्र-जाप करते रहे और हमारे बच्चे वहाँ खेलते रहे। सायंकाल हम घर लौट आये। घर पहुँच कर हमे पता चला कि हमारे घर का ताला तोड़ा गया है और मेरी सन्दूकची, जिसमे विवाहोत्सव में सम्मिलित होने की निमन्त्रण-पत्र भी रखा था, खोली गई है।

"मेरी कोई अन्य वस्तु चोरी नही गई थी। अतः मैं नगरपालक के पास इस घटना की सूचना देने अथवा न देने के विषय पर विचार ही कर रहा था कि राज्य के सूचना-विभाग के कर्मचारी आये और मुझको राज्यभवन में ले गये। वहाँ मैंने यही वक्तव्य दिया। इस पर मुझे घर आने की स्वीकृति दी गई। यह बात तो मुझको बाद में विदित हुई कि महाराज की हत्या का यत्न किया गया है और हत्यारे के पास मेरा प्रवेश-पत्र था।"

पूर्ण अभियोग के उत्तर में सौम्या की ओर से यही कहा गया कि पुष्यमित्र हत्यारा है और इसकी हत्या कर देना अपराध नहीं था।

इस पर न्यायाधीश ने सौम्या से पूछा, "यदि देश के लिये किये गये युद्ध में कोई सैनिक शत्रुओं की हत्या करता है तो क्या वह भी हत्यारा है और उसकी हत्या करना क्या पाप माना जायगा ?"

"नहीं, देश के राजा की आज्ञा के अधीन शत्रु से लड़ते हुए जो हत्या करता है, उसका पाप उसको नहीं लगता।"

"तो क्या यह सिद्ध नहीं हो गया कि हत्या करना सदैव ही पाप नहीं होता। कभी यह पुण्य भी हो सकता है।"

"हाँ, श्रीमान् ! मैं यही कह रही हूँ। मेरे पिता जब हत्या करने गये थे, तो वे किसी प्रकार का पाप करने नहीं गये थे।"

"वह सैनिक, जो युद्ध में शत्रु से लड़ने के लिये जाता है, उस युद्ध से कुछ प्रयोजन सिद्ध करने जाता है। क्या मैं जान सकता हूँ कि वीरभद्र कौन सा प्रयोजन सिद्ध करने गया था ?"

"प्रयोजन तो स्पष्ट ही था कि वह पुष्यमित्र को समाप्त कर, पाटलिपुत्र में पुनः मौर्य अधिकारी को राज्य देना चाहता था।"

"मौर्यवंशीय ही राजा हो, यह कहाँ का पुण्य कार्य हो गया ? पुष्यमित्र ने हत्या की थी अथवा नहीं, यह आज का विचारणीय विषय नहीं है। यह प्रश्न उस समय उत्पन्न हो सकता था, जब प्रजा-परिषद् की बैठक में पुष्यमित्र के राजगद्दी पर बैठने का निश्चय हुआ था। प्रजा-परिषद् में पुष्यमित्र को हत्यारा नहीं माना गया। उसको वैसा ही वीर पुरुष माना गया था, जैसे शत्रु से लड़कर शत्रु की हत्या करने वाले सैनिक को समझा जाता है।

"अतः वीरभद्र का उस प्रजा-परिषद् के निर्णय के पश्चात् भी पुष्यमित्र को हत्यारा मानना, कैसे ठीक हो गया ? साथ ही विचारणीय बात यह है कि पुष्यमित्र की हत्या से कैसे मौर्यवंशीय को राज्य मिल जाता ? कौन मौर्यवंशीय है, जो राज्य का अधिकारी है ? क्या केवल मात्र मौर्यवंश में उत्पन्न होना ही किसी को राज्य पाने का अधिकारी बना देता है ?

"हत्या करने में समाज-कल्याण का विचार भी तो होना चाहिये।

यदि किसी देश का राजा अपने सैनिकों को आज्ञा देता है कि वे किसी सुन्दर स्त्री के पति को मार कर उसकी पत्नी को उठा लाएँ तो क्या उस राजाज्ञा को मानने वाला भी पुण्यकार्य करने वाला कहा जायगा? किसी हत्या में समाज का कौनसा हित निहित है, यह भी विचारणीय है। इस कारण हम यह जानना चाहते हैं कि किसी अज्ञात मौर्यवंशीय को गद्दी पर बैठाने मात्र के लिए उस राजा की हत्या से, जिसको प्रजा-परिषद् ने राजा स्वीकार किया है, कौन सा समाज का कल्याण होने वाला था?"

"श्रीमान्! मैं तो यह कह रही हूँ कि मेरे पति बृहद्रथ की हत्या में ही कौन-सा समाज का कल्याण निहित था?"

"तो देवी यवनों को देश से निकाल देना समाज-कल्याण की बात नहीं मानतीं? क्या इस कार्य को करने से बृहद्रथ ने इन्कार नहीं किया था और क्या यह कार्य पुष्यमित्र ने राज्य-भार सम्हालने के पश्चात् नहीं किया?"

सौम्या निरुत्तर हो गई। उसे चुप देख न्यायाधीश ने अपना निर्णय सुना दिया। उसने अपने निर्णय में लिखा, "पुष्यमित्र की हत्या का यत्न वीरभद्र ने किया। इस हत्या के लिए महाप्रभु बादरायण, सौम्या तथा अन्य एक सौ बीस व्यक्तियों ने, जिनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं, षड्-यन्त्र किया। इस हत्या में किसी प्रकार की लोक-कल्याण की भावना निहित नहीं थी। ईर्ष्या-द्वेष तथा प्रतिकार के विचार से यह षड्यन्त्र रचा गया था। अतः इन सब व्यक्तियों को अपराधी माना जाता है और सभी को मृत्यु-दण्ड दिया जाता है।

"शेष बन्दियों के विषय में निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता कि उनका कुछ भाग इस षड्यन्त्र में था अथवा नहीं। इस कारण उनको मुक्त किया जाता है।"

इसके पश्चात् पद्मा ने अपनी और अपनी लड़की सौम्या पर दया करने की प्रार्थना कर दी। इस प्रार्थना में युक्ति यह थी कि एक का पति और दूसरे का दामाद मारा गया था। अपनी लड़की से स्नेह होने के

इस पर न्यायाधीश ने सौम्या से पूछा, "यदि देश के लिये किये गये युद्ध में कोई सैनिक शत्रुओं की हत्या करता है तो क्या वह भी हत्यारा है और उसकी हत्या करना क्या पाप माना जायगा ?"

"नहीं, देश के राजा की आज्ञा के अधीन शत्रु से लड़ते हुए जो हत्या करता है, उसका पाप उसको नहीं लगता।"

"तो क्या यह सिद्ध नहीं हो गया कि हत्या करना सदैव ही पाप नहीं होता। कभी यह पुण्य भी हो सकता है।"

"हाँ, श्रीमान् ! मैं यही कह रही हूँ। मेरे पिता जब हत्या करने गये थे, तो वे किसी प्रकार का पाप करने नहीं गये थे।"

"वह सैनिक, जो युद्ध में शत्रु से लड़ने के लिये जाता है, उस युद्ध से कुछ प्रयोजन सिद्ध करने जाता है। क्या मैं जान सकता हूँ कि वीरभद्र कौन सा प्रयोजन सिद्ध करने गया था ?"

"प्रयोजन तो स्पष्ट ही था कि वह पुष्यमित्र को समाप्त कर, पाटलिपुत्र में पुनः मौर्य अधिकारी को राज्य देना चाहता था।"

"मौर्यवंशीय ही राजा हो, यह कहाँ का पुण्य कार्य हो गया ? पुष्यमित्र ने हत्या की थी अथवा नहीं, यह आज का विचारणीय विषय नहीं है। यह प्रश्न उस समय उत्पन्न हो सकता था, जब प्रजा-परिषद् की बैठक में पुष्यमित्र के राजगद्दी पर बैठने का निश्चय हुआ था। प्रजा-परिषद् में पुष्यमित्र को हत्यारा नहीं माना गया। उसको वैसा ही वीर पुरुष माना गया था, जैसे शत्रु से लड़कर शत्रु की हत्या करने वाले सैनिक को समझा जाता है।

"अतः वीरभद्र का उस प्रजा-परिषद् के निर्णय के पश्चात् भी पुष्यमित्र को हत्यारा मानना, कैसे ठीक हो गया ? साथ ही विचारणीय बात यह है कि पुष्यमित्र की हत्या से कैसे मौर्यवंशीय को राज्य मिल जाता ? कौन मौर्यवंशीय है, जो राज्य का अधिकारी है ? क्या केवल मात्र मौर्यवंश में उत्पन्न होना ही किसी को राज्य पाने का अधिकारी बना देता है ?

"हत्या करने में समाज-कल्याण का विचार भी तो होना चाहिये।

यदि किसी देश का राजा अपने सैनिकों को आज्ञा देता है कि वे किसी सुन्दर स्त्री के पति को मार कर उसकी पत्नी को उठा लाएँ तो क्या उस राजाज्ञा को मानने वाला भी पुण्यकार्य करने वाला कहा जायगा ? किसी हत्या में समाज का कौनसा हित निहित है, यह भी विचारणीय है। इस कारण हम यह जानना चाहते हैं कि किसी अज्ञात मौर्यवंशीय को गद्दी पर बैठाने मात्र के लिए उस राजा की हत्या से, जिसको प्रजा-परिषद् ने राजा स्वीकार किया है, कौन सा समाज का कल्याण होने वाला था ?"

"श्रीमान् ! मैं तो यह कह रही हूँ कि मेरे पति बृहद्रथ की हत्या में ही कौन-सा समाज का कल्याण निहित था ?"

"तो देवी यवनों का देश से निकाल देना समाज-कल्याण की बात नहीं मानती ? क्या इस कार्य को करने से बृहद्रथ ने इन्कार नहीं किया था और क्या यह कार्य पुष्यमित्र ने राज्य-भार सम्हालने के पश्चात् नहीं किया ?"

सौम्या निरुत्तर हो गई। उसे चुप देख न्यायाधीश ने अपना निर्णय सुना दिया। उसने अपने निर्णय में लिखा, "पुष्यमित्र की हत्या का यत्न वीरभद्र ने किया। इस हत्या के लिए महाप्रभु बादरायण, सौम्या तथा अन्य एक सौ बीस व्यक्तियों ने, जिनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं, षड्-यन्त्र किया। इस हत्या में किसी प्रकार की लोक-कल्याण की भावना निहित नहीं थी। ईर्ष्या-द्वेष तथा प्रतिकार के विचार से यह षड्यन्त्र रचा गया था। अतः इन सब व्यक्तियों को अपराधी माना जाता है और सभी को मृत्यु-दण्ड दिया जाता है।

"शेष बन्दियों के विषय में निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता कि उनका कुछ भाग इस षड्यन्त्र में था अथवा नहीं। इस कारण उनको मुक्त किया जाता है।"

इसके पश्चात् पद्मा ने अपनी और अपनी लड़की सौम्या पर दया करने की प्रार्थना कर दी। इस प्रार्थना में युक्ति यह थी कि एक का पति और दूसरे का दामाद मारा गया था। अपनी लड़की से स्नेह होने के

कारण वीरभद्र को लड़की के विधवा हो जाने का दुःख इतना हुआ कि वह ठीक ढंग पर विचार नहीं कर सकता था। अतः उनको क्षमा कर दिया जाय और अब वे यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने भूल की थी।

पुष्यमित्र ने अरुन्धति के कहने पर दोनों को मृत्यु-दण्ड से तो मुक्त कर दिया और दो में से एक विकल्प स्वीकार करने का प्रस्ताव कर दिया। प्रस्ताव यह था कि या तो वे मगध-राज्य छोड़कर चले जावें अथवा वे जीवन भर राज्य के वन्दी रहना स्वीकार कर लें।

दोनों ने प्रथम विकल्प स्वीकार किया और दोनों वन्दीगृह से छूटते ही मगध-राज्य छोड़ कर विदर्भ में चले गये।

: ३ :

जब से पुष्यमित्र मगध का शासक बना था, विदर्भ का राजा यज्ञसेन बहुत परेशानी अनुभव कर रहा था। यज्ञसेन वृहद्रथ के पिता शतधन्वन् का सम्बन्धी था। शतधन्वन् के जीवन-काल में ही वह विदर्भ का आयुक्तक नियुक्त होकर विदर्भ की राजधानी नीरा में चला गया था। वह एक योग्य शासक था और उसने विदर्भ-राज्य की बहुत उन्नति की। उसके छः वर्ष के राज्य-काल में विदर्भ धन-धान्य से भरपूर हो गया था। यज्ञसेन के शासन में जनता सुखी और सम्पन्न हुई थी।

यज्ञसेन शतधन्वन् के जीवन-काल तक तो पाटलिपुत्र को कर देता रहा, परन्तु शतधन्वन् की मृत्यु के पश्चात् उसने कर देना बन्द कर दिया।

एक बार वृहद्रथ ने यज्ञसेन से कर माँगा था और उसके उत्तर में यज्ञसेन ने कहा था, "मैं आपकी अपेक्षा अधिक चतुर और योग्य शासक हूँ, इस कारण मेरी आपको अधिक आवश्यकता है और आपकी मुझे किसी प्रकार की आवश्यकता नहीं। यदि आज विदर्भ पर दक्षिण के आन्ध्र राज्य वाले आक्रमण करें तो आप मेरी कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। परन्तु आप पर आक्रमण होने पर, मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ। अतः यदि कर देने की ही बात हो, तो पाटलिपुत्र विदर्भ को कर दे। यही युक्तियुक्त होगा।"

राक्षस से पुष्यमित्र मिला और सहृदयतापूर्ण वार्तालाप हुआ। महर्षि पतंजलि से मिला तो देश में एक संगठन बनाने की बात होने लगी। राज्यारोहण के अवसर पर विदर्भ-प्रतिनिधि को बैठने के लिए मानयुक्त स्थान दिया गया और अन्त में जब महर्षि के सभापतित्व में भारत के नरेशों तथा उनके प्रतिनिधियों का सम्मेलन हुआ तो साम्राज्य और चक्रवर्ती राज्य के अन्तर पर विवेचना सुनने को मिली।

इस सभा के पश्चात् तो राक्षस स्वयं महर्षि जी से मिलने के लिए गया। उसने अपने मन के संशय व्यक्त कर दिये। उसने कहा, "भगवन्! चक्रवर्ती ढाँचा तो इतना ढीला होगा कि देश पर विपत्ति के समय वह टूट जायगा।"

"वह तो साम्राज्य में भी हो सकता है। साम्राज्य देश के विभिन्न भागों के लिए दासता का प्रतीक है और चक्रवर्ती ढाँचा सबके लिये मान तथा प्रतिष्ठा का प्रतीक है। स्वेच्छा से बनाये मानयुक्त स्थान में अधिक स्थिरता की सम्भावना होती है और एक के स्वामित्व और दूसरे के दासत्व का सम्बन्ध कभी भी विश्वास योग्य नहीं होता।

"मैं तो यह समझता हूँ कि राजनीतिक बन्धन कृत्रिम होते है। उनका कठिनाई के समय कुछ भी मूल्य नहीं होता। सम्बन्ध, जिनका आधार, विचार, धर्म और संस्कृति हों, वे अधिक स्थिर और स्थायी होते हैं।

"चक्रवर्ती ढाँचे में देश के सब नरेश धर्म और विचार-सामान्य में आस्था रखने से परस्पर अधिक समीप होते हैं और साम्राज्य में केवल राजनीतिक बंधन होने से वे स्वार्थ और लाभ-हानि पर निर्भर होते हैं। उनमें दृढ़ता कम होती है।"

राक्षस जब लौटकर आया तो यज्ञसेन के साथ वहाँ के प्रस्ताव पर विचार होने लगा। यज्ञसेन समझता था कि यह भी मगध वालों की चाल है और अन्त में वे पुनः अपना साम्राज्य बनाना चाहेंगे।

राक्षस इससे भिन्न मत रखता था। उसका कहना था कि साम्राज्य हो अथवा चक्रवर्ती राज्य, उद्देश्य देश को एक सूत्र में बाँधना है। देश से

ड़े-बड़े राज्य निर्मित हो रहे हैं। वे भारत की उर्वरा-भूमि पर रखते हैं। अतएव भारत को उनकी कुदृष्टि से सुरक्षित रखने के हाँ के सब नरेशों में ऐक्य होना आवश्यक है। किस प्रकार का अधिक मानयुक्त होगा, यह विचारणीय बात है।"

"तो क्या ऐसा सगठन अत्यावश्यक है ?"

"निस्सन्देह महाराज!"

"जब विदेशी आक्रमण हो, तब सीमा के समीप के राज्यों को संग-न होना आवश्यक होता है। हम तो देश के मध्यभाग में हैं। हम पनी भौगोलिक स्थिति से स्वय ही सुरक्षित हैं।"

राक्षस हँस पड़ा। उसने कहा, "जो लोग हिमालय लाँघकर सहस्रों कोस की यात्राकर कौशाम्बी में आ सकते हैं, क्या वे एक सौ कोस और यात्रा कर नीरा में नहीं पहुँच सकते ? हमारा लाभ तो इसी में है कि विदेशियों को सीमा पार ही रोक दिया जाय और इसके लिये सीमावर्ती राज्यों को धन तथा जन की सहायता यहाँ से जानी ही चाहिये। हमारा स्वार्थ भी इस बात में है कि युद्ध हमारे देश से दूर रहे। ऐसा तब ही हो सकता है, जब देश के प्रत्येक भाग से देश की सीमाओं की रक्षा हो।

"परन्तु महाराज! महर्षि जी ने एक अन्य प्रकार के समर का उल्लेख किया है। वह समर है संस्कृति का। विदेशों से लोग राज्य-ार के लिये नहीं, प्रत्युत विचार-प्रसार के लिये भी आ सकते हैं। र विचारों को हम, विना उनकी उपयोगिता का विचार किये अपनी जा में प्रचलित नहीं होने देंगे। एतदर्थ देश के विद्वान धर्मशास्त्रियों को एकसूत्र बद्ध होना अत्यावश्यक है।

"महर्षि जी का कथन है कि राजनीतिक समर से सांस्कृतिक पराजय सम्भव है और सांस्कृतिक पराजय से राजनीतिक समर भी सम्भव है। अतः उनका कहना था कि दोनों प्रकार के विदेशी समर से रक्षा आवश्यकता है। इस कारण वे चक्रवर्ती राज्य का समर्थन करते थे।

देश के नरेशों में अभी महर्षि पतंजलि के प्रस्ताव की चर्चा चल

रही थी कि पुष्यमित्र की हत्या करने वालों पर अभियोग चल पड़ा।

न्यायाधीश का निर्णय हुआ और पश्चात् दया भी हो गई। इस पर सौम्या और वीरभद्र तथा उसकी पत्नी पद्मा विदर्भ की राजधानी नीरा में आ पहुँचे।

: ४ :

विदर्भ की राजधानी में पहुँच एक साधारण-सा गृह बना, वीरभद्र रहने लगा। वीरभद्र यज्ञसेन से मिल, कुछ भूमि लेकर उस पर कृषि करने लगा और इस प्रकार निर्वाह होने लगा। सौम्या को कुछ काम नहीं था और वह पर्याप्त अवकाश रहने के कारण अपनी वर्तमान अवस्था से सदा असन्तुष्ट रहती थी। इस असन्तोष की अवस्था में वह मन-ही-मन कुढ़ा करती थी और मन के असन्तोष को दूर करने के उपाय सोचा करती थी।

एक दिन वीरभद्र खेत में बीजारोपण कर घर आया, तो हताश सा खाट पर लेट गया। पद्मा ने उसको इस प्रकार निस्तेज देखकर पूछा, "क्यों! स्वास्थ्य तो ठीक है न ?"

"मैं भीतर ही भीतर मन में अपने जीवन पर ग्लानि अनुभव कर रहा हूँ। मैं क्षत्रिय-सन्तान होकर, वैश्य का कर्म करने लगा हूँ। इस पतन से तो मैं समझता हूँ, मर जाना ही उचित था।"

"आप सेना में तो थे। उसको छोड़ने के लिए अपने ही कर्मों को धन्यवाद दे सकते हैं।"

"मैंने सेना को छोड़ा नहीं, प्रत्युत छोड़ने पर विवश हो गया था।"

"विवशता थी लड़की से अत्यधिक स्नेह की।"

"मैंने एक भूल की थी। सौम्या का विवाह वृहद्रथ से एक भूल थी और सौम्या का कहा मान एक हत्यारा बन मैं अपनी भूल का प्रायश्चित कर रहा था।"

"बहुत खूब! एक भूल का प्रायश्चित करने के लिये एक महान् पाप करने पर उतारु हो गये थे। देखिये देवता! क्षत्रिय का यह अर्थ

कि वह अपनी बुद्धि ही खो बैठे।"

सौम्या अभी तक चुपचाप बैठी माता-पिता में चल रहे विवाद को
रही थी। माँ को पिता की भर्त्सना करते देख, उससे चुप नहीं रहा
ा। उसने कहा, "माँ! एक हत्यारे की हत्या करना अनुचित अथवा
र्खता कैसे हो गई?"

"न्यायाधीश ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया था। उस समय तुम
निरुत्तर हो गई थी। अब मेरे साथ यह व्यर्थ की युक्ति क्यों कर रही हो?"

"माँ! मैं जब अपनी दुर्दशा देखती हूँ तो पागल हो जाती हूँ। मैं
जब पुष्यमित्र की देश में मान-प्रतिष्ठा बढ़ते देखती हूँ तो ईर्ष्या से जल-
भुन जाती हूँ।"

"यह ईर्ष्या और द्वेष महा पतनकारक है। इसे किसी प्रकार
श्लाघनीय नहीं कह सकते।"

"पर माँ! मैं मानव हूँ। मानव होने के नाते ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि
भावों से रहित नहीं हो सकती।"

"देखो सौम्या! तुमने जो कुछ किया, वह तो मृत्युदण्ड के योग्य ही
था। तुम बच गईं तो केवल इसलिये कि ग्रहपति ने हम पर दया की
परन्तु तुम सदा उसकी दया की पात्र नहीं बन सकोगी। यदि तुम य
सरल सी बात, कि हत्या केवल तभी क्षम्य होती है जब वह लोक-हि
में हो, नहीं समझ सकती, तो भगवान् ही तुम्हारा रक्षक है।"

वीरभद्र अपनी भूल को समझ गया था। उसने कहा, "पद्मा त
कहती है। ईर्ष्या, द्वेष कुछ अच्छी भावनायें नहीं हैं। मैंने जो
किया, अब पुनः वैसा ही करने का साहस नहीं कर सकता।

"इस पर भी मैं यह समझता हूँ कि यदि वहाँ मृत्यु-दण्ड पा
तो इस पतन के कार्य को करने पर विवश तो नहीं होता।"

"यह तो एक सरल सी बात है आर्य! यदि आप अपनी ध
में अभी भी क्षत्रिय रक्त का प्रवाह मानते हैं, तो आज यहाँ के
के पास जाकर अपने वर्ण के अनुकूल कोई सेवा क्यों नहीं

आपने भूमि माँगी, वह मिल गई। आप कुछ और मांगते, तो कदाचित् वह भी पा जाते।"

वीरभद्र अगले दिन विदर्भ के महामात्य राक्षस के सम्मुख जा उपस्थित हुआ। उसने अपनी पूर्ण कथा बताकर किसी क्षत्रियोचित सेवा-कार्य के लिये याचना की।

"तो तुम बृहद्रथ के श्वशुर हो ?"

"जी हाँ, उसकी तीन रानियाँ थीं, जिनमें से मँझली रानी सौम्या मेरी कन्या थी।"

"और तुमने पुष्यमित्र की हत्या करने का षड्यंत्र किया था ?"

"हाँ श्रीमान् ! मुझे अपनी कन्या के विधवा हो जाने का बहुत दुःख था और उस दुःख में यह घृणित कार्य करने पर उद्यत हो गया था।"

"अब तुम पर दया कर तुम्हें देश निश्कासन की आज्ञा हो गई है ?"

"यह मुझ पर दया तो नहीं कही जा सकती। मेरी पत्नि पर महारानी अरुन्धति ने उसके सौभाग्य को अटूट रखने के लिये दया कर मेरे प्राण बचाये हैं।"

"तुम क्या कर सकते हो ?"

"मुझे बीस-वर्ष का सेना-कार्य का अनुभव है।"

राक्षस ने कुछ विचार कर कहा, "तुम एक सप्ताह के पश्चात् मिलना। तब तुमको कोई कार्य दिया जायेगा।"

राक्षस एक अति चतुर और सूझ-बूझ वाला व्यक्ति था। उसने वीरभद्र जैसे व्यक्ति को नौकर रखने का निश्चय तो उसकी कथा सुनकर ही कर लिया था। इस पर भी वह विचार करना चाहता था कि उसको किस कार्य पर नियुक्त किया जाय।

एक सप्ताह पश्चात् जब वीरभद्र पुनः राक्षस के सम्मुख उपस्थित हुआ तो उसको बिना किसी प्रकार का कार्य-भार सौंपे राज्य का सेवक नियुक्त कर दिया गया और एक सौ स्वर्ण मुद्रा उसका वार्षिक वेतन निर्धारित कर दिया गया ?

उद्देश्य तो तभी सिद्ध होगा, जब पुष्यमित्र चक्रवर्ती महाराज बन जायेगा। अतः अश्वमेध-यज्ञ ही शुभ समझा गया।

बौद्धों ने इस यज्ञ के होने का समाचार सुना तो वे इसका प्रबल विरोध करने के लिये कटिबद्ध हो गये। महाप्रभु बादरायण तो मृत्युदण्ड के ग्रास हो चुके थे। पद्मा-विहार गिरा कर सर्वथा मिटा दिया गया था। बहुत से भिक्षु वहाँ से अन्यत्र विहारों में चले गये थे।

अश्वमेध-यज्ञ की बात का पता चलते ही सब भिक्षु इसका विरोध करने के लिये देश भर में फैल गये। उनका कहना था कि घोड़े की बलि होगी और उसका माँस पका कर खाया जायगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पूर्ण देश में हिंसा और अहिंसा पर विवाद चल पड़ा।

मगध के मन्त्रिमण्डल ने यज्ञ के विषय में यह घोषणा कर दी— "मगध-राज्य ने यवनों की सेना को देश से निकालकर और लाखों यवनों को वैदिक धर्म में सम्मिलित कर यह सिद्ध कर दिया है कि यह राज्य देश, राष्ट्र और धर्म का नेता है। इस अश्वमेध-यज्ञ से हम इसी बात की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं।

"जो लोग यह समझते हैं कि मगध-राज्य ने देश, राष्ट्र तथा धर्म की सेवा की है, उनको इस यज्ञ में हमारा समर्थन करने के लिये तैयार रहना चाहिये।"

इस विज्ञप्ति ने बौद्धों का मुख बन्द कर दिया। जिनको वे यह कहने जाते थे कि यज्ञ में हिंसा होगी, उनको लोग कहते थे कि उनकी अहिंसा का वे क्या करें, जो दुष्ट, विधर्मी, विदेशियों को देश में अनाचार फैलाने से रोक नहीं सकती।

बौद्धों के सिद्धान्त को स्वीकार न करते हुए भी कुछ शुंग-परिवार के विरोधी नरेश बौद्धों की बात को मान, इस यज्ञ का बहिष्कार करने पर उद्यत हो गये।

इन विरोधियों में आन्ध्र, विदर्भ और कलिंग मुख्य थ। प्रायः सब स्थानों से पुष्यमित्र को यज्ञ करने के निश्चय पर बधाई-पत्र आये, परन्तु

कण्व और अनेक अन्य वेदवेत्ता-विद्वान यज्ञ कराने के लिये आ बैठे।

दो-दिन तक हवन होता रहा। मनों घी, सामग्री, समिधा तथा अन्य सुगन्धित द्रव्य होम किये गये। तीसरे दिन पूर्णिमा थी। उस दिन एक श्वेत निष्कलंक अश्व का, यज्ञ-वेदी में खड़ा कर, पूजन किया गया। तत्पश्चात् अश्व को स्वर्ण, रजत तथा मणि-माणिक्यादि रत्नों से सुशोभित कर मध्याह्न के समय छोड़ दिया गया। अश्व के साथ दस वीर सैनिक अश्वों पर सवार, साथ-साथ चल पड़े।

अश्व उत्तर दिशा को भेजा गया। भारत देश के प्रायः सब राज्यों के प्रतिनिधि यज्ञ में उपस्थित थे। केवल विदर्भ, आन्ध्र और कलिंग राज्यों ने अपने प्रतिनिधि नहीं भेजे थे।

नीरा में जब सूचना मिली कि अश्व उत्तर की ओर गया है, तब यज्ञसेन ने राक्षस को बुलाकर इस परिस्थिति में अपना व्यवहार निश्चित करने का यत्न किया।

"महामात्य !" यज्ञसेन का प्रश्न था, "हमको क्या करना चाहिये?"

"देखिये महाराज ! अश्व को पकड़ना और उसको अपने राज्य में रोकने का अर्थ होगा कि हम, मगध से स्वयं को अधिक बलशाली मान, चक्रवर्ती पद पाने के अधिकारी हैं। इस चुनौती को स्वीकार कर मगध प्रबल सेना यहाँ भेज देगा। तदन्तर युद्ध होगा। यदि मगध की विजय हुई तो मगध आपको राजगद्दी से उतार कर किसी अपने अनुकूल व्यक्ति को राज्य पर बैठा देगा और यदि हमारी विजय हुई तो मगध का राजा चक्रवर्ती महाराज नहीं होगा। इस पर भी हम चक्रवर्ती पद तभी प्राप्त कर सकेंगे, जब हम अश्वमेध-यज्ञ कर भारत के अन्य राज्यों का समर्थन प्राप्त कर लेंगे।"

"तुम क्या समझते हो कि हम मगध को परास्त नहीं कर सकते ?"

"महाराज ! हमारे पास कितनी सेना है ?"

"साठ सहस्र के लगभग है।"

"मगध के पास इस समय पांच लक्ष चतुरंगिणी सेना है।"

हमने सुना है कि आन्ध्र और कलिंग भी मगध की श्रेष्ठता को मान रहे।"

"यह बात सत्य है।"

"तो क्या हम तीनों राज्य मिलकर मगध का विरोध नहीं कर सकते?"

"कर सकते हैं, परन्तु मगध के साथ पच्चीस राज्य हैं। इस अवस्था मगध भी अपने साथियों को लेकर युद्ध में उतर आयगा।"

"और यदि हम अश्व को न रोकें तो क्या होगा?"

"इसका अभिप्राय यह होगा कि मगधराज का चक्रवर्ती होना हमे स्वीकार है। उस अवस्था में हम धर्म में तीन बातों में मगध से बँध जायेंगे। एक तो यह कि हमें अपनी सेना किसी भी समय-कुसमय मगध की सहायता के लिये भेजनी पड़ेगी। दूसरे विदेशी आक्रमण के समय हमारी सेना मगध की सेना के साथ मिल कर शत्रु से लड़ेगी और तीसरे हम स्वयं को भारतवर्ष के राष्ट्र का अंग मानेंगे, जिसके नेता होंगे मगधराज पुष्यमित्र।"

"देखो महामात्य! कुछ ऐसी बात करो, जिससे साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।"

राक्षस यह बालकों की सी ईर्ष्या और द्वेष-भाव देखकर विस्मय में डूब गया।

६ :

विदर्भ के महामात्य राक्षस इस बात को समझ चुके थे कि देश में एक राष्ट्र का होना अत्यावश्यक है। एक राष्ट्र स्थिर रखने के लिये दो उपाय थे। एक था भारत में साम्राज्य स्थापित करना। इस अवस्था में सम्राट् की न केवल राष्ट्रसम्बन्धी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता, प्रत्युत राज्य-सम्बन्धी आज्ञाओं का भी पालन करना पड़ता। दूसरा उपाय महर्षि पतंजलि ने सम्मुख रखा था। चक्रवर्ती राज्य में राज्यान्तर्गत विषयों में चक्रवर्ती महाराज हस्तक्षेप नहीं करता। देश की सुरक्षा, प्रजा की सुरक्षा और राष्ट्र की सुरक्षा ही चक्रवर्ती राज्य के अधी

होती है। यह ढंग राक्षस को पसन्द था।

परन्तु यज्ञसेन हठी राजा था। वह मनोद्गारों से प्रभावित होकर ही अपने विचारों और कार्य का निश्चय करता था। जब से वह मगध राज्य से स्वतन्त्र हुआ था, वह अपने राज्य-कार्य में बहुत सीमा तक सफल हो चुका था। उसके राज्य पर किसी पड़ोसी राज्य से आक्रमण नहीं हुआ था और न विदेशी यवन ही उसके राज्य तक पहुँच सके थे। इससे वह यह समझने लगा था कि उसके राज्य की भौगोलिक स्थिति और उसके अपने प्रबन्ध की कुशलता ही इसका कारण है। इससे उसके मस्तिष्क में कुछ सीमा तक अभिमान की मात्रा भी बढ़ गई थी।

एक दिन उसने राक्षस को बुला कर कहा, "कोई ऐसा व्यक्ति बताओ जो पुष्यमित्र के यज्ञ के अश्व को पकड़ कर छिपा सके और यह विदित न हो कि हमने उसे छिपा रखा है।"

"इससे क्या होगा?"

"इससे यह होगा कि यदि हमारी सेना दुर्बल सिद्ध हुई, तो हम कह देंगे कि हमारी जानकारी के बिना किसी अज्ञात व्यक्ति ने अश्व पकड़ लिया है और यदि हम मगध-सेना को अपने से दुर्बल पायेंगे तो उसको परास्त कर स्वयं चक्रवर्ती महाराज बनने का यत्न करेंगे।"

राक्षस इस महत्वाकांक्षा को सुन और उसकी पूर्ति का उपाय जान हँस पड़ा। उसने कहा, "ऐसा प्रबन्ध हो सकता है। आपको एक विकट युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिये। कदाचित् वर्तमान मगध-सम्राट् गृह-वर्मन और वृहद्रथ की भाँति सरलचित्त नहीं है। वह अश्व के आपके राज्य में रुक जाने का उत्तरदायित्व आप पर डालेगा।"

"यह तो बाद में देखा जायगा।"

छः मास इधर-उधर भ्रमण के पश्चात् उस अश्व ने विदर्भ में प्रवेश किया। विदर्भ से उसे आन्ध्र और तत्पश्चात् कलिंग जाना था।

कावेरी के दक्षिण राज्यों को अभी छोड़ दिया गया था। महर्षि पतंजलि का विचार था कि उत्तरी भारत में संगठन की आवश्यकता

तो हमारी सेना उसे मृत्यु के घाट उतार देगी।"

राज्याधिकारी को इस सूचना के मिलने के दूसरे दिन तीन ओर से आक्रमण आरम्भ कर दिया। गाँव-गाँव और नगर-नगर में खोज की गई।

आक्रमण से पूर्व सूचना आने पर यज्ञसेन ने अपने सेनाध्यक्ष और महामात्य को बुलाकर उक्त सूचना उनके सम्मुख रख दी। सेनाध्यक्ष का कहना था, "महाराज! वह यज्ञ का अश्व वापस कर दिया जाय और युद्ध होने से रोका जाय।"

"क्यों, युद्ध से भय लगता है सेनापति!"

"यह बात नहीं महाराज! युद्ध की भयंकरता को जानकर यह अश्व की चोरी एक अति तुच्छ वस्तु है।"

"तो सेनापति यह समझते हैं कि हमने अश्व की चोरी केवल एक घोड़ा प्राप्त करने के लिये की है?"

"तो किस लिए की है महाराज?"

"यह प्रकट करने के लिये कि हम मगध वालों से छोटे नहीं हैं।"

"छोटे तो हम हैं ही। विदर्भ, मगध राज्य का, जो आज पुन अंग-देश से लेकर सिन्धु नदी तक विस्तार पा गया है, बीसवाँ भाग भी नहीं है। मगध की जन-संख्या, जो राज्य की शक्ति होती है, विदर्भ की जन-संख्या से चालीस गुना अधिक है। दो वर्ष के राज्य में पुष्यमित्र ने मगध की प्रजा में एक नव-जीवन का संचार कर दिया है। ऐसे महा-पुरुषों से ईर्ष्या करने से हानि होने की ही सम्भावना है।"

"हम समझते हैं कि सेनापति को विदर्भ की सेवा छोड़, मगध की सेवा स्वीकार कर लेनी चाहिये।"

"यह बात नहीं है महाराज! आप युद्ध की घोषणा कर दें और फिर देखें कि आपकी सेना और सेनापति क्या करते हैं।"

"आप बताइये महामात्य?"

"मगध की एक लक्ष पचास सहस्र सेना कल विदर्भ में प्रवेश करने जा रही है। विदर्भराज आज विचार कर रहे हैं कि क्या करना

मागधी सैनिकों पर आक्रमण कर दे ।"

सेनापति गम्भीर विचारों में निमग्न था। महामात्य ने प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा तो उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और उठ कर चलते हुए बोला, "महाराज की आज्ञा का यथावत् पालन किया जायेगा।"

: ६ :

मागधी सैनिक पग-पग पर विदर्भ की सेना की ओर से विरोध की आशा करते थे। परन्तु उनके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उनको किसी स्थान पर भी विरोध होता दिखाई नहीं दिया।

सेनापति विद्रुम इस समर का संचालन कर रहा था। वह स्वयं उत्तर की ओर से आने वाली सेना के साथ था। इस पर भी वह तीनों ओर की सेना के समाचार प्राप्त कर, उसकी गतिविधि पर नियन्त्रण रख रहा था।

तीन दिन की यात्रा में तीनों सेनाएँ पचास कोस के लगभग राज्य में घुस आई थीं। अभी तक एक भी सैनिक उनके विरोध के लिये सम्मुख नहीं आया था। मागधी सैनिक भी उस गति से नहीं चल रहे थे, जिस गति से किसी समर के लिये सेनाएँ चला करती हैं। इसमें कारण यह था कि मगध की सेना विदर्भ को विजय करने नहीं, प्रत्युत यज्ञ के अश्व को ढूंढने आई थी। इसमें समय लग रहा था।

विद्रुम दिन भर की खोज के पश्चात् सैनिक शिविर में विश्राम कर रहा था। अन्य दो दिशाओं से सेना के बढ़ने के समाचार आ रहे थे। इस समय एक सैनिक ने उसके सम्मुख उपस्थित होकर कहा, "श्रीमान्! एक युवक भेंट करना चाहता है।"

"उसकी तलाशी ले कर, उसको भीतर आने दो।"

एक स्वस्थ, सुन्दर युवक विद्रुम के सम्मुख खड़ा हो बोला, "मैं सेनापति महोदय से एकान्त में बात करना चाहता हूँ।"

"ठीक है, बैठ जाओ।"

इसके पश्चात् सुरक्षा में नियुक्त सैनिक खेमे से बाहर हो गये। एकान्त पा युवक ने कहा, "मैं महाराज यज्ञसेन के भाई का लड़का हूँ। मेरा नाम

कार्य देखकर ही निश्चित की जा सकती है।"

"ठीक है, मैं आपकी बहुत सहायता कर सकता हूँ। अभी तक भी जो आपका विरोध नहीं हुआ, वह भी योजनाबद्ध ही है। मैं इसमें आपकी वह सहायता करूँगा, जो विभीषण ने राम की भी नहीं की थी।

"सुनिये, यज्ञसेन की योजना है कि जब आपकी तीनों सेनाएँ राजधानी पर आकर एकत्रित हों, तब विदर्भ की सेना पीछे से आप पर आक्रमण कर देगी। इस प्रकार आपको पराजित कर दिया जायेगा।"

विद्रुम कुछ इसी प्रकार की योजना की सम्भावना करता था और इसका उपाय उसने अपने मन में विचार भी कर लिया था। माधवसेन ने इसके पश्चात् कहा, "अपने चाचा के इस जाल को छिन्न-भिन्न करने का उपाय मैंने सोचा है। यदि आप मेरा विश्वास करें तो मैं आपको राजधानी पर, पीछे से आने वाली सेना के आक्रमण से पूर्व ही, अधिकार करा दूंगा। तब आपके लिये सेना को परास्त करना अति सुगम होगा।"

"क्या उपाय सोचा है इसका तुमने ?"

"मैं चाहता हूँ कि अन्तिम दो पड़ाव आप एक ही दिन में पूरे करें इस प्रकार आप चाचा के अनुमान से एक दिन पूर्व राजधानी में पहुँच जायेंगे। पीछे आने वाली सेना का, एक दिन की यात्रा का मार्ग पीछे रह जायेगा। मैं आपको राजधानी का पूर्वी द्वार, एक नियत समय पर खुलवा दूंगा। उस समय आप अपनी सेना का एक सुदृढ़ भाग द्वार के समीप तैयार रखें और द्वार खुलते ही भीतर घुस आयें। इससे द्वार आपके अधिकार में आ जायगा और प्रातःकाल तक आप पूर्ण नगर पर अधिकार कर सकेंगे। वहीं आपको यज्ञ का अश्व भी मिल जायगा।"

"अच्छी बात है, यदि तुम ऐसा कर सको तो मगध राज्य तुम्हारा राज्यारोहण स्वीकार कर लेगा।"

विद्रुम शत्रु के किसी भी व्यक्ति पर विश्वास नहीं कर सकता था इस पर भी माधवसेन की बात की परीक्षा आवश्यक थी।

विद्रुम ने पूर्ण सेना मार्ग में ही छोड़ दी। सेना के दो विभाग

: ७ :

यज्ञ के अश्व को वीरभद्र ने चुराया था और महामात्य की आज्ञा से राज्यप्रासाद के नीचे, एक गुफा में छिपा कर रखा हुआ था। साथ ही वह उस अश्व की देखभाल भी कर रहा था।

राक्षस की आज्ञा थी कि वीरभद्र अश्व को मगध सेना के हाथ में तब तक न दे, जब तक कि उसको इसके लिये स्वीकृति न दी जाय।

यदि वीरभद्र को, मागधी सेनाओं के नीरा पहुँचने से पूर्व, अश्व को नीरा से निकाल ले जाने की स्वीकृति दे दी जाती, तो मगधवालों को उसका ढूंढ निकालना कठिन हो जाता। कदाचित् राक्षस के मन में यह विचार भी था, परन्तु मगध-सेना के निर्धारित समय से पूर्व वहाँ पहुँच जाने पर, इस योजना में बाधा खड़ी हो गई और फिर उसी रात एक रहस्यमय ढंग से पूर्वी द्वार खुल जाने और मागधी सेना के नगर के भीतर घुस आने से राक्षस की योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी।

नगर पर अधिकार होते ही नगर के द्वार बन्द कर लिये गये और माधवसेन तथा यज्ञ के अश्व की खोज होने लगी।

पूरे एक दिन तक बहुत ही गड़बड़ रही। माधवसेन, जो नगर के पूर्वी द्वार पर बंदी बना लिया गया था, अपना नाम बताये बिना बंदीगृह के संरक्षकों से कहता रहा कि उसको सेनापति विद्रुम से कार्य है और संरक्षक उसकी बात पर विश्वास न कर उसे बन्दी बनाये रहे।

जब विदर्भ की सेना ने शस्त्र डाल दिये और सेना को विघटित कर दिया गया तो राज्य-भर में घोषणा कर दी गई कि यज्ञ के अश्व का पता देने वाले को दस सहस्र स्वर्ण पुरस्कार में दिया जायेगा।

पूर्ण राज्य में अश्व की खोज आरम्भ हो गई। दूसरे दिन माधवसेन ने बंदीगृह के संरक्षक से कहा, "मुझको सेनापति विद्रुम से मिला दो। मैं उनको एक विशेष सूचना देना चाहता हूँ।"

संरक्षक एक साधारण सैनिक था और उसकी बुद्धि बहुत ही मोटी थी। उसने कहा, "तुम पर विश्वास नहीं किया जा सकता।"

"क्यों ?"

"तुम सन्देहात्मक परिस्थिति में पकड़े गये हो। तुमको न्यायाधीश सम्मुख उपस्थित किया जायेगा।"

"तो कर दो, किसी के पास तो ले चलो। मैं एक अत्यावश्यक समाचार देना चाहता हूँ।"

"मेरी निन्दा करोगे न ? और क्या समाचार हो सकता है तुम्हारे पास ?"

"सेनापति विद्रुम से पता तो करो कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं अथवा नहीं ? तुम स्वयं ही न्यायाधीश क्यों बन रहे हो ?"

"तो तुम अपना नाम क्यों नहीं बताते ?'

"यदि मैं बता दूँ तो वह नाम तुम सेनापति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को तो नहीं बताओगे ?"

"तुम क्या यज्ञसेन के पुत्र हो, जो अपना नाम इतना छिपाकर रख रहे हो ?"

माधवसेन को उस पर क्रोध आ रहा था। उसने कहा, "यज्ञसेन के पुत्र से भी अधिक।"

"ओह !" संरक्षक ने हँसते हुए कहा, "तो यज्ञसेन स्वय हो। ठीक है न ?"

"हाँ, अब तुम ठीक समझ गये हो।"

"पर मैं तो यह जानता हूँ कि यज्ञसेन की, पहली रात ही ल... लड़ते, मृत्यु हो गई थी। उसका तो कल दाह-संस्कार भी हो चुका... दाह-संस्कार के समय उसकी रानियाँ भी उपस्थित थी।"

"यही तो भूल हो रही है। देखो, तुम अपने सेनापति तक एक... भेज दो कि एक बन्दी कहता है कि विदर्भ के राजा की अभी मृ... हुई है। वह बन्दी-गृह में है और तुरन्त उनसे मिलना चाहता है।"

वह संरक्षक यह सुनकर खिलखिला कर हँस पड़ा और बो... तुमको पागलखाने भिजवाने का प्रबन्ध किये देता हूँ।" इतना

हँसता हुआ बन्दीगृह से बाहर चला गया। उसके मन में यह विश्वास बैठ गया था कि यह बन्दी पागल हो गया है।

वह बन्दीगृह से बाहर निकला ही था कि सेनापति विद्रुम सेना-शिविर में आ पहुँचा। बन्दीगृह के संरक्षक ने विचार किया कि वह सेनापति को सूचना दे दे कि एक बन्दी का मस्तिष्क खराब हो गया है, जो अपने को विदर्भ का राजा कहता है। आते ही सेनापति के पास पहुँचा और नमस्कार करके बोला, "श्रीमान्! मेरे बन्दीगृह में आक्रमण की रात्रि में एक युवक को पकड़कर लाया गया था। वह कहता है कि विदर्भ का महाराज यज्ञसेन वह ही है। श्रीमान् मेरा अनुमान है कि वह पागल हो गया है।"

विद्रुम भी उस बंदी के स्वयं को यज्ञसेन घोषित करने पर मुस्कराया और बोला, "उसके हाथ-पाँव बाँधकर मेरे पास ले आओ। भला हम भी तो देखें कि यह नया यज्ञसेन कौन उत्पन्न हो गया है।"

जब माधवसेन को विद्रुम के सम्मुख उपस्थित किया गया तो वह खिलखिला कर हँस पड़ा। उसने कहा, "हम दो दिन से तुम्हारी खोज कर रहे हैं। तुम्हें यहाँ कौन ले आया है?"

"मैंने उस रात द्वार खोलने के लिये एक षड्यन्त्र किया था। महाराज के हस्ताक्षरों से एक आज्ञा-पत्र तैयार कर मैं द्वारपाल के पास लाया। उस आज्ञा-पत्र में लिखा था, पत्र-वाहक विश्वस्त गुप्तचर है। इसको हम मगधी-सेना का समाचार जानने के लिये भेज रहे हैं। इसको जाने दिया जाय।

"यह आज्ञा पा द्वारपाल ने खिड़की खोल दी, परन्तु मैं अपने साथ अश्व लाया था। वह अश्व खिड़की में से नहीं निकल सका। अतः पूर्ण द्वार खोलना पड़ा। ज्योंही द्वार खुला मागधी सेना भीतर घुस आई। मैं बाहर नहीं निकल सका। आपकी सेना द्वारा ढकेला हुआ मैं पुनः नगर में पहुँच गया। तत्पश्चात् मुझे विदर्भ का सैनिक समझ बन्दी बना लिया गया। मैं तभी से यत्न कर रहा हूँ कि आपसे मिलने का अवसर मिले, परन्तु यह संरक्षक तो न्यायाधीश ही बन बैठा। मैं सत्य बोलता हूँ अथवा

उसने कहा तुम बूढ़े हो गये हो, सेना में कार्य नहीं कर सकोगे। इस पर भी राज्य तुमसे कुछ न कुछ कार्य लेगा और अभी तुमको एक सौ स्वर्ण वार्षिक वेतन मिलेगा। जब कोई कार्य करने के लिए दिया जायगा तो उसके लिये विशेष पुरस्कार भी मिलेगा।"

"देखिये आर्य! आप एक क्षत्रिय का कार्य माँगने के लिये गये थे, किन्तु यह तो एक प्रतिहार का कार्य मिल गया है?"

"कैसे?"

"अब आप विदर्भ राज्य के सेवक हैं। कार्य कुछ निश्चित नहीं। जब भी, जो कुछ भी महाराज के मन में आयेगा, वह करने के लिए आपसे कह दिया जायगा। कार्य होने पर पुरस्कार मिल जाया करेगा।"

"तो क्या यह प्रतिहारों का कार्य है? खैर, जो कुछ भी है, थोड़े ही दिनों में सब ठीक हो जायेगा।"

परन्तु ठीक नहीं हुआ। एक दिन महामात्य राक्षस ने वीरभद्र को बुलाकर कहा, "वीर सैनिक! महाराज तुमसे एक कार्य कराना चाहते हैं?"

"आज्ञा कीजिये श्रीमान्!"

"पुष्यमित्र ने अश्वमेध-यज्ञ रचाया है। यज्ञ का अश्व देश-देशान्तर का भ्रमण करता हुआ हमारे राज्य में आ पहुँचा है। महाराज का विचार है कि अश्व को चुरा कर छिपा लिया जाय।

"इस कारण हमारा विचार है कि तुम पचास सैनिकों को साथ लेकर यह कार्य करो। अश्व को छिपाने के लिए स्थान हम बता देंगे। उन पचास सैनिकों की सहायता से तुम उस स्थान की रक्षा करना। इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए तुम्हें भारी पुरस्कार दिया जायेगा।"

वीरभद्र इसको राजनीति समझता था और अपने स्वामी के कार्य का उद्देश्य जाने बिना, वह कार्य करने के लिए तैयार हो गया।

एक बात उसके मन में संशय उत्पन्न कर रही थी। वह थी अश्व का चोरी करना और उसको छिपा कर रखना। यज्ञ के अश्व को रोकने की सामर्थ्य हो तो फिर लुकाव-छिपाव की आवश्यकता नहीं और यदि

हो तो फिर यज्ञ के अश्व को चुराना अधर्म हो जायेगा।
तु यह विचार कर कि एक सैनिक को अपने अधिकारी की आज्ञा
न करना चाहिये, उसमे मीन-मेख निकालना उसका कर्तव्य नही
धर्म का उत्तरदायित्व आज्ञा देने वाले पर है, वह एक सैनिक पर
सकता।

तः जब अश्व राजधानी से कुछ अन्तर पर रह गया तो रात के
उसे वीरभद्र के साथी पकड कर ले गये। अश्व के सरक्षक इतने
-चौड़े भ्रमण में सतत् विरोध के अभाव मे निश्चिन्त हो गये थे।
र्भ में भी जब किसी प्रकार का विरोध नही दिखाई दिया तो संरक्षक
व को खुला छोड़ आनन्द मे सो रहे थे।

वीरभद्र और विदर्भ के सैनिक अश्व को रात ही रात मे राजधानी
ले आये और उसको राज्यप्रासाद के नीचे एक गुफा मे, जिसका द्वार
गुप्त स्थान पर था, ले जाकर रख दिया गया।

यह सब कार्य इतनी चतुराई से किया गया कि सरक्षक यज्ञ के अश्व
के खुर-चिह्न भी नही पा सके। साथ ही यह कार्य विदर्भ की जनता से
भी गुप्त रखा गया।

अश्व की चोरी करने के अगले दिन जब वीरभद्र घर पर आया तो
पद्मा ने उसके पहली रात घर से बाहर रहने का कारण पूछा। वीरभद्र
अपना कार्य किसी को भी बताना नही चाहता था। इस कारण उसने
कह दिया, "राज्य-कार्य से गया था।"

"तो राज्य ने कुछ कार्य आपके योग्य समझा है ?"

"हाँ, तभी तो करने के लिए दिया है। कार्य के समाप्त होने पर
भारी पुरस्कार की आशा दिलाई है।"

"तब तो हमारा भाग्य-चक्र घूम गया समझना चाहिये ?"

"हाँ, कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है।"

पद्मा तो चुप कर रही, परन्तु उसकी लडकी सौम्या, जो इस वार्ता
लाप को सुन रही थी, इस समय मुस्करा रही थी। वीरभद्र को उस

मुस्कराने पर विस्मय हुआ था। उस दिन विश्राम कर वीरभद्र जब अश्व की रक्षा का प्रबन्ध देखने के लिए जाने लगा तो सौम्या ने उसको अकेले देख पूछ लिया, "पिताजी ! कब तक इस पर चौकीदारी करते रहेंगे?"

"किस पर बेटी ?"

"यज्ञ के अश्व पर।"

वीरभद्र इस गुप्त रहस्य का उद्घाटन सौम्या के मुख से सुन, भौचक्का हो उसका मुख देखता रह गया। इस पर सौम्या ने हँसते हुए कहा, "मुझको विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि महाराज आपको अश्व चुराने और सुरक्षा से छिपाकर रखने का दस सहस्र पुरस्कार देंगे।"

"मैं भी तो यही जानना चाहता हूँ कि वह विश्वस्त सूत्र कहाँ है ? यह बात इतनी गुप्त रखी गई है कि इसका तुमको ज्ञान हो जाना आश्चर्य की बात है।"

"आपको आज्ञा देने वाले को और आपको तथा आपके साथियों को तो इस बात का ज्ञान है ही। जब कोई रहस्य की बात इतने व्यक्तियों को विदित हो जाती है तो फिर वह छिपी नहीं रह सकती। इसीलिये कह रही हूँ कि इसको समाप्त कर दो। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।"

"क्या मतलब है तुम्हारा ? किसको समाप्त कर दूँ ?"

"देखिये पिताजी ! यह अश्व लापता हो गया है। इसके लापता होने की सूचना पाटलिपुत्र पहुँची तो दल के दल सैनिक विदर्भ पर उमड़ आयेंगे। सम्भव तो यह है कि यज्ञसेन वहाँ की टिड्डी-दल के समान सेना को देखकर अपनी पराजय स्वीकार कर ले और अश्व वापस कर दे। यह भी हो सकता है कि यज्ञसेन युद्ध करे और परास्त हो मारा जाय। दोनों अवस्थाओं में आपका पुरस्कार एक कल्पना-मात्र रह जायगा।

"मेरी सम्मति यह है कि अश्व की हत्या कर दी जाय। इसकी सूचना विदर्भराज को पहुँचा कर पुरस्कार प्राप्त कर लिया जाय। पीछे विदर्भ का यज्ञसेन चक्रवर्ती राजा हो अथवा मगध का पुष्यमित्र, हमें इससे क्या ? हम तो पुरस्कार पा ही जायेंगे।"

"देखो सौम्या ! यज्ञ का अश्व मैंने निजी लाभ के लिए नहीं पकड़ा है। मैं विदर्भ का सेवक हूँ और उसकी आज्ञा से अश्व को पकड़ कर लाया हूँ। यह उसका कार्य है कि वह उसको रखे अथवा मरवा डाले।"

"यह ठीक है पिताजी ! मैं आपकी बात समझती हूँ। परन्तु आपको यह विदित होना चाहिए कि वह कार्य किसी अन्य सैनिक को न देकर आपको ही क्यों दिया गया है ? क्या इसमें कुछ भी कारण नहीं ? मैं समझती हूँ कि हमारा मगध-राज्य से पूर्व सम्बन्ध जानकर ही हमको यह कार्य करने के लिए कहा गया है। महाराज यज्ञसेन और महामात्य राक्षस जानते हैं कि हम इस विषय में स्वयं अपने मन की अवस्था के कारण भी रुचि रखते हैं।"

"यह तुम कैसे जानती हो ?"

"कैसे भी सही, किन्तु यह ठीक नहीं है क्या ?"

"मैं नहीं जानता। मुझको आज्ञा मिली है कि मैं अश्व को चुराकर ले आऊँ। मैं ले आया। मुझको आज्ञा हुई कि मैं उसकी रक्षा करूँ, वह कर रहा हूँ। जब मुझको आज्ञा मिलेगी कि उसको हत्या कर दी जाय, तो कर दूँगा।"

"तो आज्ञा मिलनी चाहिये ? ठीक है, एक व्यक्ति, जो जीवन भर दूसरों की सेवा करता रहा है, वह सेवा-कार्य से आगे नहीं देख सकता।"

"पर मैं तो देख सकता हूँ। यदि मैं सेवक न होता और स्वतन्त्र होने पर भी अश्व को रोक रखने की शक्ति रखता, तो यज्ञ के इस अश्व को कभी न रोकता।"

"क्यों, पुष्यमित्र जैसे हत्यारे को चक्रवर्ती बनते देख, आपको दुःख नहीं होता क्या ?"

"यदि वह चक्रवर्ती न बन सके तो क्या मैं चक्रवर्ती बन जाऊँगा ? देखो सौम्या ! मैं इस अश्व को पकड़ना और वह भी चोरी से, पसन्द नहीं करता। यह पाप है। किसी यज्ञ में विघ्न डालना हमारा काम ?"

"महाराज यज्ञसेन का भी नहीं ?"

"यज्ञसेन का कार्य हो सकता है, यदि वह स्वयं चक्रवर्ती राजा बनने की अभिलाषा, सामर्थ्य और अवसर रखता हो। अन्यथा नहीं।"

: ६ :

वीरभद्र के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उसको विदित हुआ कि महाराज यज्ञसेन ने उसको बुलाया है। अभी तक तो महाराज की आज्ञा महामन्त्री राक्षस के द्वारा ही मिलती थी। आज जब वह गुफाद्वार पर अश्व की सुरक्षा का प्रबन्ध देख रहा था तो महाराज के प्रासाद का एक प्रतिहार उसको बुलाने पहुँच गया और पूछने लगा, "वीरभद्र कौन है?"

"मैं हूँ। क्या बात है?"

"महाराज बुलाते हैं।"

"कौन महाराज?"

"विदर्भ के महाराज यज्ञसेन।"

"चलो।"

वीरभद्र उसके साथ राज्यप्रासाद के मुख्य द्वार में से होता हुआ, महाराज के सम्मुख जा उपस्थित हुआ। यज्ञसेन ने उसको सिर से पाँव तक देखकर पूछा, "तुम वीरभद्र हो?"

"जी महाराज! सेवक का यही नाम है।"

"तुम बृहद्रथ के श्वसुर हो?"

"हाँ महाराज! दुर्भाग्य से मैं उसका श्वसुर था। अब मेरी लड़की विधवा है और मेरे पास ही रहती है।"

"तुमने पुष्यमित्र की हत्या का यत्न किया था?"

"हाँ, श्रीमान्!"

"देखो, हमने तुम्हें एक काम सौंपा है। तुमको पुष्यमित्र के यज्ञ के अश्व की रक्षा और उसको छिपाकर रखने का कार्य दिया गया है।"

"अपनी पूर्ण सामर्थ्य से उस आज्ञा का पालन कर रहा हूँ, महाराज!"

"उसके विषय में हमारी यह आज्ञा है कि यदि युद्ध में हमारी पराजय हुई तो अश्व उनके हाथ में नहीं जाना चाहिये।"

"श्रीमान् की पराजय की अवस्था में सेवक का शव भी रणभूमि में ही मिलेगा, महाराज !"

"परन्तु हम यह नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि जब तुमको विश्वास हो जाय कि हमारी पराजय होगी ही, तो अश्व को उसी गुफा मे निर्बन्ध्या नदी के किनारे ले जाकर, उसके टुकड़े-टुकड़े कर तुम नदी में बहा देना।"

वीरभद्र इस आज्ञा को सुन अवाक् खड़ा रह गया। यज्ञसेन ने उसे चुप देख समझा कि वह यह कार्य कर देगा। इस पर उसने पुनः कहा, "दस सहस्र स्वर्ण इस कार्य के पुरस्कारस्वरूप तुम्हें महामात्य की ओर से यथा समय मिल जायेगा।"

इतना कहकर महाराज यज्ञसेन उठ खड़े हुए और वीरभद्र अपने मन मे एक विशेष प्रकार की चंचलता अनुभव करता हुआ वहाँ से चला आया। वह इस कार्य को धर्मविपरीत समझता था। यज्ञ का अश्व तो किसी का भी शत्रु नहीं था। शत्रु तो पुष्यमित्र था। यदि पुष्यमित्र को परास्त नहीं किया जाता तो यज्ञ के अश्व की हत्या से वह कैसे परास्त हो जायेगा। अश्व तो एक संकेत मात्र था।

वह वहाँ से अपने घर पहुँचा तो पद्मा और सौम्या मे विवाद चल रहा था। सौम्या ने, वीरभद्र को मिले कार्य का विवरण बताया था और पद्मा को यह कार्य पसन्द नहीं आया था। वह समझती थी यह कार्य क्षत्रियोचित नहीं है। सौम्या अपनी माँ को समझा रही थी कि कार्य भले ही अच्छा न हो, परन्तु इससे पिताजी को बहुत बड़ा पुरस्कार मिलेगा।

"उस पुरस्कार का क्या करेंगे ? यदि हम अपने क्षत्रिय धर्म से ही पतित हो गये तो ?

"इस कार्य से हम पतित क्यों होंगे ?"

"एक वीर क्षत्रिय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह चोरी करे और फिर उस चोरी के माल को छिपाकर रखे।"

"परन्तु यह तो महाराज की ओर से हो रहा है। चोर हैं तो वे हैं, हम तो वेतन-भोगी सैनिक होने के कारण उनकी आज्ञा का पालन करें

रहे हैं, जो हमारा कर्तव्य है।"

इस समय वीरभद्र आ गया। उसके आते ही पद्मा ने कहा, "मैंने आपको पहले ही कह दिया था कि आपको एक प्रतिहार का कार्य मिला है। अब आपकी समझ में आया है न?"

"हाँ पद्मा! तुम सत्य ही कहती थीं। मुझे चोरी करने के लिए कहा गया। पश्चात् चोरी के माल की रक्षा करने के लिये और अब एक विशेष परिस्थिति में चोरी के माल को नष्ट कर देने का आदेश मिल गया है।"

इस पर वीरभद्र ने वह आदेश, जो यज्ञसेन ने उसको दिया था, सुना दिया। यह सुनकर तो पद्मा भी अवाक् बैठी रह गई। किन्तु सौम्या यह सुन प्रसन्नता से भर कर बोली, "तो आप पुरस्कार ले आइये। आज ही महामात्य से मिल लीजिये।"

"मैं इस कार्य का पुरस्कार लेने नहीं जाऊँगा। देखो सौम्या! मैं अभी इस कार्य के लिए मन को तैयार भी नहीं कर सका। जब अश्व की हत्या करने का निश्चय कर लूंगा, तब पुरस्कार के विषय में भी विचार कर लूंगा।"

"परन्तु आप यह क्यों नहीं करेंगे?"

"यह तो एक बन्दी को बंदीगृह में डाल कर, उसको मार डालने के समान है। यह कार्य एक क्षत्रिय का नहीं। यह तो एक हत्यारे का काम है। मैं हत्यारा नहीं हूँ।"

"एक समय तो आप पुष्यमित्र की हत्या करने के लिए तैयार हो गये थे?"

"हाँ; परन्तु पुष्यमित्र बन्दी नहीं था। वह असावधान अवश्य था और उसको सावधान करना मेरा काम नहीं था। अश्व की हत्या तो भीरुता है, जो कदाचित् मैं नहीं कर सकूंगा।"

"परन्तु इस आज्ञा-उल्लंघन से तो आपकी हत्या हो सकती है।"

"मैंने अभी निश्चय नहीं किया। जब निश्चय करूँगा तो इस दण्ड पर भी विचार कर लूंगा।"

"कब तक निश्चय कर लेंगे आप?"

"सौम्या !" वीरभद्र के मन में एक सन्देह उत्पन्न हो गया था, "तुम ऐसी बातें कर रही हो, जैसे यह आज्ञा देने वाली तुम ही हो।"

"नहीं पिताजी ! मैं तो नहीं हूँ, इस पर भी मैं उस व्यक्ति के मन की बात जानती हूँ, जिसने यह आज्ञा दी है।"

"और तुम्हारा उस व्यक्ति से क्या सम्बन्ध है ?" वीरभद्र का हाथ अनायास ही अपनी खड्ग के मूठ पर चला गया।

"मैं मगध-राज्य की उत्तराधिकारिणी हूँ। मेरी और यज्ञसेन की सन्धि हो चुकी है। हम दोनों पुष्यमित्र को नीचा दिखाने की योजना बना रहे हैं।"

"परन्तु सौम्या !" वीरभद्र के मन में जिस बात का सन्देह हुआ था, वह मिट गया और अपना हाथ खड्ग की मूठ से हटाकर उसने कहा, "यह तो सरासर हारने की योजना है।"

"नहीं पिताजी ! हमने पूर्ण योजना के प्रत्येक पग पर विचार कर लिया है। देखिये, मगध-सेना बढ़ती हुई चली आ रही है। बिना विरोध यह राजधानी के द्वार तक आने दी जायेगी और वहाँ नगर के बाहर खाई में दाब मर दी जायेगी।"

"ओह ! अब तो हमारी सौम्या सेनापति की नीति बातें करने लगी है। देखो सौम्या, यदि यह करना है और ऐसा करने की सामर्थ्य है तो अश्व को चोरी कर छिपाने की आवश्यकता नहीं थी और फिर उसको अभी मार देने की बात भी व्यर्थ है।"

"जहाँ तक चोरी रखने की बात है, वह नीति है। हम मगध-सेना को परेशान करना चाहते हैं। जहाँ तक अश्व की हत्या का प्रश्न है, वह तो पराजय के समय ही होगा। हम अपने पराजित होने के पश्चात् भी मगध को परेशान करना अपना धर्म समझते हैं।"

वीरभद्र कुछ बोला नहीं। उसने अपने मन में विचार किया कि अश्व को छिपाकर रखना तो किसी प्रकार की अनीति नहीं कही . . .
हाँ, हत्या की बात उसके मन में नहीं बैठी। इस पर भी वह

रहे हैं, जो हमारा कर्तव्य है।"

इस समय वीरभद्र आ गया। उसके आते ही पद्मा ने कहा, "मैंने आपको पहले ही कह दिया था कि आपको एक प्रतिहार का कार्य मिला है। अब आपकी समझ में आया है न?"

"हाँ पद्मा! तुम सत्य ही कहती थीं। मुझे चोरी करने के लिए कहा गया। पश्चात् चोरी के माल की रक्षा करने के लिये और अब एक विशेष परिस्थिति में चोरी के माल को नष्ट कर देने का आदेश मिल गया है।"

इस पर वीरभद्र ने वह आदेश, जो यज्ञसेन ने उसको दिया था, सुना दिया। यह सुनकर तो पद्मा भी अवाक् बैठी रह गई। किन्तु सौम्या यह सुन प्रसन्नता से भर कर बोली, "तो आप पुरस्कार ले आइये। आज ही महामात्य से मिल लीजिये।"

"मैं इस कार्य का पुरस्कार लेने नहीं जाऊँगा। देखो सौम्या! मैं अभी इस कार्य के लिए मन को तैयार भी नहीं कर सका। जब अश्व की हत्या करने का निश्चय कर लूंगा, तब पुरस्कार के विषय में भी विचार कर लूंगा।"

"परन्तु आप यह क्यों नहीं करेंगे?"

"यह तो एक वन्दी को बंदीगृह में डाल कर, उसको मार डालने के समान है। यह कार्य एक क्षत्रिय का नहीं। यह तो एक हत्यारे का काम है। मैं हत्यारा नहीं हूं।"

"एक समय तो आप पुष्यमित्र की हत्या करने के लिए तैयार हो गये थे?"

"हाँ; परन्तु पुष्यमित्र वन्दी नहीं था। वह असावधान अवश्य था और उसको सावधान करना मेरा काम नहीं था। अश्व की हत्या तो भीरुता है, जो कदाचित् मैं नहीं कर सकूंगा।"

"परन्तु इस आज्ञा-उल्लंघन से तो आपकी हत्या हो सकती है।"

"मैंने अभी निश्चय नहीं किया। जब निश्चय करूँगा तो इस दण्ड पर भी विचार कर लूंगा।"

"कब तक निश्चय कर लेंगे आप?"

"सौम्या !" वीरभद्र के मन में एक सन्देह उत्पन्न हो गया था, "तुम ऐसी बातें कर रही हो, जैसे यह आज्ञा देने वाली तुम ही हो।"

"नही पिताजी ! मैं तो नही हूँ, इस पर भी मैं उस व्यक्ति के मन की बात जानती हूँ, जिसने यह आज्ञा दी है।"

"और तुम्हारा उस व्यक्ति से क्या सम्बन्ध है ?" वीरभद्र का हाथ अनायास ही अपनी खड्ग के मूठ पर चला गया।

"मैं मगध-राज्य की उत्तराधिकारिणी हूँ। मेरी और यज्ञसेन की सन्धि हो चुकी है। हम दोनों पुष्यमित्र को नीचा दिखाने की योजना बना रहे हैं।"

"परन्तु सौम्या !" वीरभद्र के मन मे जिस बात का सन्देह हुआ था, वह मिट गया और अपना हाथ खड्ग की मूठ से हटाकर उसने कहा, 'यह तो सरासर हारने की योजना है।"

"नहीं पिताजी ! हमने पूर्ण योजना के प्रत्येक पग पर विचार कर लिया है। देखिये, मगध-सेना बढ़ती हुई चली आ रही है। बिना विरोध यह राजधानी के द्वार तक आने दी जायेगी और वहाँ नगर के बाहर खाई में दाब भर दी जायेगी।"

"ओह ! अब तो हमारी सौम्या सेनापति की भाँति बातें करने लगी है। देखो सौम्या, यदि यह करना है और [illegible] करने की सामर्थ्य है तो अश्व को चोरी कर छिपाने की आवश्यकता नहीं थी और फिर उसको अभी मार देने की बात भी व्यर्थ है।"

"जहाँ तक चोरी रखने की बात है वह ठीक है। हम [illegible] को परेशान करना चाहते हैं। जहाँ तक [illegible] का प्रश्न है, वह तो पराजय के समय ही होगा। हम उसके [illegible] होने के [illegible] भी मगध को परेशान करना अपना धर्म समझते हैं।"

वीरभद्र कुछ बोला नहीं। उसने अपने मन में [illegible] कि अश्व को छिपाकर रखना तो किसी प्रकार की आपत्ति नहीं [illegible]। हाँ, हत्या की बात उसके मन में नहीं बैठी। [illegible]

एक दिन वह महामात्य राक्षस से मिलने के लिए गया। वह चाहता था कि अश्व की रक्षा के विषय में अपने प्रबन्ध का उल्लेख कर दे। प्रबन्ध इतना सुरक्षापूर्ण था कि पूर्ण नगर के आग में भस्म हो जाने पर भी अश्व को आँच नहीं आ सकती थी।

राक्षस ने वीरभद्र को आया देखा तो उसको पृथक् आगार में ले जाकर पूछ लिया, "पुरस्कार लेने आये हो क्या ?"

"पुरस्कार तो मिलेगा ही; परन्तु अभी कार्य समाप्त नहीं हुआ।"

"हम तुम्हारे प्रबन्ध से सर्वथा सन्तुष्ट हैं। इस कारण तुम्हारा पुरस्कार तुमको देते हैं। इस विषय में इतनी आज्ञा और है कि यह अश्व तुमको उसके हाथ में देना होगा, जिसके पास उसे प्राप्त करने के लिए हमारे हस्ताक्षरों से अंकित आदेश-पत्र होगा।"

इस आज्ञा को सुन, वीरभद्र का चित्त कुछ हल्का हो गया। वह समझ गया कि अब अश्व का हत्यारा, वह नहीं होगा। कौन उसकी हत्या करेगा, यह उसके जानने की बात नहीं है।

: १० :

इसके पश्चात् जब भी सौम्या और वीरभद्र का साक्षात्कार होता, सौम्या मुस्करा देती थी। यह मुस्कराहट वीरभद्र को तनिक भी पसन्द नहीं थी, परन्तु वह शान्त रहता था। सौम्या ने उसको बताया था कि उसकी यज्ञसेन से संधि हो गई है। अतः अब वह उसके स्वामी के समान ही पदवी वाली थी। इस कारण वह चुप था।

समय व्यतीत होता गया। मागधी सेनाएँ विदर्भ में राजधानी की ओर बढ़ती चली आ रही थीं। राजधानी में इससे हलचल मच रही थी। जहाँ जन-साधारण दूसरे देश की सेनाओं को वे रोक-टोक चले आते देख भयभीत था, वहाँ सैनिकों का राजधानी में जमाव बढ़ता जा रहा था। लोग इससे भी सुख का अनुभव नहीं कर रहे थे। नित्य अनेक स्थानों पर नागरिकों एवं सैनिकों में झगड़े होते थे।

इस दुर्व्यवस्था को राज्य-परिवार के अन्य लोग भी देख रहे थे।

यज्ञसेन का बड़ा भाई था, भद्रसेन। वह रहता तो छोटे भाई के साथ ही था; परन्तु राज्य कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था। उससे परिचित लोग जानते थे कि वह साधु स्वभाव का व्यक्ति है।

जब नागरिकों की चपलता बढ़ने लगी तो उसने भी इन समाचारों को सुना और उनका कारण जानकर तो वह विक्षुब्ध हो उठा। एक दिन यज्ञसेन के सम्मुख जा, उसने पूछा, 'यज्ञसेन! यह क्या हो रहा है?'

'क्या हो रहा है?"

"सुना है तुमने मगध-राज्य से आया हुआ यज्ञ का अश्व पकड़ लिया है?'

"नहीं भैया! मैंने नहीं पकड़ा है। सुना है कि वह हमारे राज्य में पकड़ा गया है। अभी तक पता नहीं चला है कि किसने उसे पकड़ा है।"

"यह तुम कहते हो! क्या यह तुम्हारा कर्तव्य नहीं था कि तुम उसकी रक्षा करते?"

"मेरा कर्तव्य कैसे हो गया?"

'वह अश्व एक प्रकार की चुनौती थी। उसका अभिप्राय था कि मगधराज पुष्यमित्र चक्रवर्ती सम्राट् की पदवी प्राप्त कर रहा है और तुमको इसमें आपत्ति है अथवा नहीं? अब तो यह समझा जायेगा कि तुम्हारे ज्ञान के बिना, तुम्हारी प्रजा ने मगध को चुनौती दी है। यह प्रजा वीर, मगधराज के चक्रवर्ती होने में आपत्ति करता है, परन्तु उसमें साहस नहीं कि वह डट कर मगध का विरोध कर सके। मगध के कोप का फल तुमको सहन करना पड़ेगा।"

"भैया! मैं मगध-राज्य का चौकीदार नहीं कि उनके घोड़े, कुत्तों की देखभाल करता फिरूँ। उनके अंगरक्षकों को मैंने यहाँ आने से रोका नहीं। इस पर भी यदि उन्होंने अपना कर्तव्य-पालन नहीं किया तो मैं दोषी नहीं हो सकता। हाँ, यदि सेना ने मेरे एक भी नागरिक पर अत्याचार किया तो लोहे से लोहा बजेगा और फिर ब्राह्मण कुमार को पता चलेगा कि राज्य-कार्य क्षत्रियों का कार्य है, ब्राह्मणों का नहीं।"

"तुम कुछ मूर्ख होते जाते हो।" भद्रसेन ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "यदि तुम इस अश्व को ढूंढकर उनको वापस नहीं करते तो उनकी सेना को तुम्हारे राज्य में आकर अश्व ढूंढने का अधिकार हो जाता है। जब उनकी सेनाएँ यहाँ आयेंगी तो युद्ध होगा। यह अकारण ही तुम युद्ध मोल ले रहे हो। तुम्हारे अपने सैनिक भी तुम्हारी प्रजा पर अत्याचार कर रहे हैं, तो दूसरे राज्य के सैनिक क्या कुछ नहीं करेंगे?"

"मैं इस विषय में कुछ नहीं कर सकता।"

"यज्ञसेन! तुम भूल कर रहे हो। इसमें तुमको लज्जित होना पड़ेगा।"

"भैया! आप भगवत्भजन कीजिये। राजनीति आपका कार्य नहीं है।"

भद्रसेन का पुत्र माधवसेन भी यह वार्त्तालाप सुन रहा था। जब पिता-पुत्र अपने आगार में पहुँचे तो माधवसेन ने अपनी सूचना सुना दी। उसने कहा, "पिता जी! वास्तविक बात यह है कि अश्व की चोरी महाराज की अनुमति से ही हुई है। जिस व्यक्ति ने उस अश्व को चुराया है वह मगधाधिपति से द्वेष रखता है। इस कारण ही वह इस प्रकार का घृणित कार्य करने के लिए तैयार हो गया है। न केवल यही कि अश्व को चुराकर छिपा दिया गया है, प्रत्युत उसको यह आदेश भी है कि विदर्भ की पराजय हुई, तो अश्व को मार कर निर्वन्ध्या नदी में बहा दिया जाय।"

"तो यज्ञसेन इतना दुष्ट हो गया है?"

"पिताजी वृहद्रथ की विधवा रानी सौम्या नित्य महाराज से मिलने आती है और इस पूर्ण योजना में उसकी सम्मति है। वह यह कह रही है कि यदि एक बार मगध की सेना को यहाँ पराजय मिल गई, तो वह मगध-राज की पूर्ण बौद्ध-जनता को विद्रोह के लिए तैयार कर लेगी।

"केवल यही नहीं, प्रत्युत् आन्ध्र और कलिंग राज्यों ने भी यह वचन दिया है कि यदि मगध को पहली पराजय विदर्भ दे सका तो पीछे वे भी उससे युद्ध करने के लिये तैयार हो जायेंगे।"

"इससे क्या होगा?"

"होगा यह कि पहले मगध का राज्य बृहद्रथ की विधवा को दिलवा दिया जायेगा और तत्पश्चात् यज्ञसेन अश्वमेध-यज्ञ कर चक्रवर्ती राजा बन जायेगा।"

"योजना तो सुन्दर है, परन्तु है अव्यवहारिक।"

"मैंने महाराज से कहा था। मैं जब महाराज पुष्यमित्र के राज्याभिषेक के समय मगध में गया था तो वहाँ के सेठियों और शूद्रों के विचार जान आया था। दोनों पुष्यमित्र को भगवान का अवतार मान, पूजा करते हैं। ऐसी अवस्था में छल-बल से यदि बृहद्रथ की विधवा को वहाँ की रानी बनाया गया, तो पूर्ण राज्य की जनता विद्रोह कर देगी।

"इसके अतिरिक्त पुष्यमित्र राज्य की रक्षा के लिए सेना की आवश्यकता को समझता है और उसने पाँच लाख चतुरंगिणी सेना तैयार कर रखी है। कदाचित् इस यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए सेना में और भी वृद्धि हुई हो। ऐसी अवस्था में विदर्भ, आन्ध्र और कलिंग मिलकर भी मगध को परास्त नहीं कर सकेंगे।"

"यह तो विदर्भ का दुर्भाग्य है कि यज्ञसेन जैसा अभिमानी व्यक्ति यहाँ का शासक है।"

पिता-पुत्र का वार्तालाप तो यहीं समाप्त हो गया, परन्तु माधवसेन का मन शान्त नहीं था। उसके मन में दो विचार काम कर रहे थे। एक तो यह कि राज्य स्वतन्त्र बना रहे और दूसरा कम से कम जन-रक्तपात हो।

उसके मन में एक विचार आया और मगध सेनापति विद्रुम से मिल, कुछ निश्चय कर आया। उसने मगध की सेना से विदर्भ की रक्षा के लिए यत्न और संधि कर ली।

परिणाम यह हुआ कि समय पर माधवसेन की सहायता से मगध-सेना ने राजधानी पर अधिकार कर लिया और पूर्व इसके कि विदर्भ की सेना पीछे से आक्रमण करती, यज्ञसेन और उसका सेनापति मारे जा चुके थे। इनके मर जाने पर विदर्भ सेना ने निरुत्साहित हो शस्त्र डाल दिये।

माधवसेन बन्दी बना लिया गया था। अतः वह सेनापति विद्रुम

से मिल नहीं सका। सेनापति ने महामात्य राक्षस को बुलाकर अश्व के विषय में पूछा। राक्षस ने कहा, "सेनापति! मैंने अभी मगध की सेवा स्वीकार नहीं की है।"

"तो महामात्य् जानते हैं कि अश्व कहाँ है, इस पर भी वताना स्वीकार नहीं करते?"

"अश्व का पता वताने का तात्पर्य हुआ कि मैं अपने मृत स्वामी के साथ विश्वासघात करता हूँ।"

इस उत्तर से विद्रुम वहुत ही परेशान था। इस कारण उसने राक्षस को भी वन्दीगृह में डालने की आज्ञा दे दी।

अश्व की खोज निरन्तर जारी रही। राजधानी के सव द्वारों पर देख-भाल के लिए सैनिकों का पहरा विठा दिया गया। साथ ही एक घोषणा कर दी गई कि यदि दो दिन के भीतर यज्ञ का अश्व नहीं मिला तो नागरिकों के घर-घर में घुसकर उसकी खोज की जायेगी। इस खोज में वाधा उपस्थित करने वाले को मौत के घाट उतार दिया जायेगा। इस घोपणा को वीरभद्र ने भी सुना। उसके सहायक सैनिक, जो अश्व-पालक के रूप में अश्वशाला में पहरा देते थे, राज्य पर मगध-सेना का अधिकार होने पर भाग चुके थे और वीरभद्र अकेला ही अश्व की सुरक्षा का भार लिए बैठा था। सेनापति की घोपणा सुन, उसने निश्चय कर लिया कि चूंकि यज्ञसेन मारा जा चुका है, अतः अश्व को वंदी वनाये रखने का कोई लाभ नहीं। व्यर्थ में सारी प्रजा पर अत्याचार होगा, इस-लिए अश्व का पता सेनापति विद्रुम को दे देना चाहिये। अतः ऐसा निश्चय कर वह घर से निकला तो सौम्या भी उसके साथ चल पड़ी।

"किधर चल रही हो?" वीरभद्र ने पूछा।

"आप वताइये, आप किधर जा रहे हैं?"

वीरभद्र ने उसके मुख को देखते हुए कहा, तुम अव मगध की रानी तो वनने से रहीं। मैं समझता हूँ कि इस स्थिति में अश्व अव मगध सेनापति को वापिस कर दिया जाय।"

"परन्तु पिताजी ! अश्व तो घुड़साल में है न ?"

"परन्तु मैं वहाँ बिना सैनिकों को साथ लिये नहीं जाऊँगा।"

"अच्छी बात है" यह कहकर सौम्या वहीं खड़ी रह गई। वीरभद्र ने उसके मुख पर देखा, परन्तु वहाँ उसके विचारों का किसी प्रकार का भी संकेत न था, वह राज्यप्रासाद की ओर चल पड़ा।

सौम्या ने जब यह जाना कि उसका पिता अश्व को मगध-सेनापति को सौंपने जा रहा है, तो वह स्वयं अश्वशाला की ओर चल पड़ी। उसको विदित था कि अश्व कहाँ रखा गया है। वह स्वयं उसकी हत्या करना चाहती थी। राज्यप्रासाद की घुड़साल के प्रायः सब अश्व विदर्भ सैनिक अपने-अपने लिए खोज कर ले गये थे और अश्वपालक तो पहले ही निकाल दिये गए थे। अश्वपालकों के स्थान पर उनके वेश में सैनिक रहते थे। वे भी अश्वशाला छोड़कर चले गये थे।

जब सौम्या वहाँ पहुँची तो घुड़साल खाली पड़ी थी। सौम्या ने गुफा का द्वार खोला। इस गुफा के विषय में उसने सुन रखा था, परन्तु वह वहाँ आज प्रथम बार ही आई थी। इस कारण अँधेरा देख, भीतर जाने से वह डर रही थी। कुछ देर वहाँ ठहरने पर उसको वहाँ कुछ-कुछ दिखाई देने लगा। इस समय उसे गुफा के एक कोने में दीपक, तैल और दीपक को जलाने के लिए चकमक पत्थर रखा हुआ दिखाई दिया।

सौम्या ने दीपक जलाया और मार्ग खोजती हुई गुफा के भीतर घुस गई। गुफा बहुत लम्बी थी और उसके दूसरे किनारे से स्वच्छ वायु आ रही थी। इससे वह अनुमान लगा रही थी कि गुफा का दूसरा किनारा किसी खुले स्थान की ओर है।

थोड़ी दूर जाने पर गुफा में सीढ़ियाँ आती थीं। उन सीढ़ियों पर उतरने के पश्चात् फिर सीधी गुफा आ जाती थी। लगभग चौथाई कोस जाने पर गुफा खुली हो गई। वहाँ एक खूँटे से, जो दीवार में गढ़ा था, अश्व बँधा हुआ था। अश्व के भूषण तथा अन्य श्रृङ्गार की वस्तुएँ उतार कर एक कोने में रखी हुई थीं। अश्व बहुत ही बेचैनी से अपने

पाँव से भूमि कुरेद रहा था।

सौम्या ने दीपक एक ओर रख दिया और विचार करने लगी कि अब क्या करे। एक तो यज्ञसेन का आदेश था कि पराजय की अवस्था में अश्व को गुफा के दूसरे द्वार से ले जाकर टुकड़े-टुकड़े कर, निर्विन्ध्या नदी में बहा दिया जाय। वह स्वयं को ऐसा करने में असमर्थ पा रही थी। सैनिक तो यह कार्य कर सकते थे। वह उसको खुले स्थान पर ले जाकर किस प्रकार टुकड़े-टुकड़े करेगी, यह समझ नहीं सकी।

उसके अपने मन में यह विचार आया कि जब मारना ही है तो नदी-तट पर ले जाने की क्या आवश्यकता है? यहीं गुफा में ही उसे मार डालने में सुविधा होगी।

अतः वह कोई खड्ग ढूंढने लगी। किन्तु वहाँ इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं थी। उसका विचार था कि कदाचित् किसी सैनिक का कोई शस्त्र वहाँ भूल से रह गया हो। इससे उसका कार्य सिद्ध हो जाता। वह दीपक लेकर गुफा में इधर-उधर ढूंढने का प्रयत्न करने लगी।

ढूंढती-ढूंढती वह गुफा के उस द्वार तक पहुँच गई, जो घुड़साल की ओर खुलता था। वहाँ घोड़े के लिए घास के ढेर में, उसको एक लोहे का छड़ मिला, जो एक ओर से तीखा था। इसका यह किनारा इसलिए तीखा किया गया था, जिससे वह भूमि में सुगमता से गाड़ा जा सके।

उसने उसका परीक्षण किया और उससे अच्छी अन्य कोई वस्तु न देख, उसी को लेकर चल पड़ी। अश्व के समीप पहुँच, उसने दीपक को एक ओर रख दिया और नेजे की भाँति छड़ को हाथ में ले, विचार करने लगी कि किस स्थान पर वार करे, जहाँ कम-से-कम परिश्रम से अधिक-से-अधिक आघात पहुँचाया जा सके। वह इसी निश्चय पर पहुँची कि पेट ही इस कार्य के लिए सर्वोत्तम स्थान है।

वह उस छड़ को तान, अपने पूरे बल स अश्व के पेट पर वार करने वाली थी कि किसी ने पीछे से उसके कंधे पर हाथ रख, उसको वार करने से रोक दिया। यह माधवसेन था।

सौम्या माधवसेन को पहचानती नहीं थी। अतः उसने क्रोध से पूछा, "कौन हो तुम ?"

माधवसेन ने केवल यह कहा, "ठहरो !" उसी क्षण उसके साथ आये सैनिकों ने सौम्या को घेर लिया। अपने को इस प्रकार घिरी देख, वह सामने खड़े एक सैनिक पर लोहे के छड़ से झपटी। एक अन्य सैनिक ने एक ही वार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

अश्व को सब सामान सहित तथा सौम्या का शव, गुफा से बाहर लाया गया। इस समय वीरभद्र तथा सेनापति विद्रुम अपने अंगरक्षकों के साथ वहाँ आ पहुँचा। अश्व को हानिरहित पाकर सेनापति ने भारी प्रसन्नता प्रकट की। परन्तु माधवसेन ने सौम्या का धड़ और सिर सामने रख स्थित कर बताया कि यह स्त्री अश्व को मार डालने के लिए वहाँ पहुँच गई थी और यदि वे दो-तीन क्षण विलम्ब से पहुँचते तो अवश्य ही अश्व घायल हो चुका होता।

वीरभद्र ने सौम्या को पहचाना तो उसका मुख विवर्ण हो गया। माधवसेन ने बताया, "यही बृहद्रथ की विधवा स्त्री तथा इस वीरभद्र की पुत्री सौम्या है।"

इससे वीरभद्र को भी बन्दी बना लिया गया। सौम्या का दाह-संस्कार कर दिया गया। पद्मा को जब विदित हुआ कि उसका पति और पुत्री दोनों अश्व को मार डालने के षड्यन्त्र में पकड़े गये हैं, तो वह अपने भाग्य को कोसती हुई, अनशन कर अपना प्राणान्त कर बैठी।

विदर्भ के पराजित होने का समाचार जब कलिंग और आन्ध्र देशों को मिला तो उन्होंने अश्व को अपने-अपने देशों में सुरक्षित निकल जाने देने में, किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं की।

इस प्रकार सफलता से अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ। इसकी पूर्णाहुति देने के लिए पुन: सब उत्तरी भारत के नरेशों को आमन्त्रित किया गया और यज्ञ को बहुत ही धूम-धाम से समाप्त किया गया। यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने की प्रसन्नता में सब बन्दी मुक्त कर दिये गए। इस प्रकार

वीरभद्र और राक्षस भी मुक्त हो गये।

पूर्णाहुति देते समय महर्षि पतंजलि ने यजमान को आशीर्वाद दिय और भारत के नरेशों को इस यज्ञ में सम्मिलित होने तथा इसके सफल होने में, सहयोग देने के लिये धन्यवाद दिया।

महर्षि पतंजलि ने धन्यवाद करते हुए कहा, "भारत-नरेशों को मैं इस नवयुग के आगमन पर बधाई देता हूँ। पिछले एक सौ वर्ष से भी अधिक काल से देश पर अज्ञानता की काली घटाएँ छाई रही हैं। ये काली घटाएँ बौद्धमत की नहीं थीं। हम बौद्धमत को भी भारत में चल रही अनेक जीवन-मीमांसाओं में से एक मानते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन चलाने के लिए अपना-अपना मार्ग स्वीकार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। परन्तु महाराज अशोक के काल से तो बौद्ध जीवन-मीमांसा को, पूर्ण संसार की जीवन-मीमांसा बनाने का बलपूर्वक यत्न किया जाता रहा है। दुर्भाग्य से उस जीवन-मीमांसा को राज्य-संचालन में भी प्रयोग किया गया। उसका परिणाम, देश में घोर अन्यायाचरण और उत्साह हीनता का प्रसार होना हुआ।

"हम पुनः अपनी थाह पा गये हैं। नदी में डूब रहे व्यक्ति की भाँति जैसे उसके पाँव भूमि पर लग जाते हैं, वैसे ही हम आश्रय पा गये अनुभव करते हैं।

"हम पुनः यज्ञमय जीवन पर विश्वास रखने लगे हैं। इस सब परिवर्तन को लाने में महाराज पुष्यमित्र का अथक प्रयास ही कारण हुआ है। भारत के सब सम्राट् पुष्यमित्र को चक्रवर्ती राजा का पद देकर, इस नवीन युग के स्वागत में सम्मिलित हुए हैं।

"हमारी भगवान से प्रार्थना है कि वह हम भारतवासियों को सुमति और शक्ति दे जिससे हम देश और राष्ट्र को स्वतन्त्र, सबल और सत्य-मार्ग का पथिक रख सकें।"

इसके पश्चात् पुष्यमित्र ने छत्तीस वर्ष तक चक्रवर्ती राज्य का भोग किया और देश ने इस राज्य में अभूतपूर्व उन्नति की।